# योग उपनिषदः

(20 योग उपनिषदों का मूल, विद्यालंकृता हिन्दी व्याख्या एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित)

सुभाष विद्यालंकार

वैदिक साहित्य में उपनिषदों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी उपनिषदें ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करती हैं। इनमें वेद मन्त्रों के गूढ़ अर्थों की व्याख्या की गई है। प्रत्येक उपनिषद किसी न किसी वेद से सम्बद्ध है। इसी प्रकार पृथक्-पृथक् योगोपनिषदें भी पृथक्-पृथक् वेदों से सम्बद्ध हैं। जिनका पूरा विवरण इस ग्रन्थ की भूमिका में दिया गया है।

प्रस्तुतग्रन्थ में योगविषयक 20 उपनिषदों को संस्कृत मूल श्लोक तथा उनका हिन्दी अनुवाद अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा में यथावश्यक टिप्पणियों के साथ दो खण्डों में प्रस्तुत किया गया है। अन्त में विस्तृत शब्दानुक्रमणिका से समलंकृत यह ग्रन्थ शोधार्थियों के लिए विशेष महत्त्व का है।

आशा है कि यह ग्रन्थ-रत्न योगियों, सामान्य पाठकों सहित योग पर शोध करने वाले गवेषकों के लिये भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

23cm.; 780pp.; (2 भाग) ; 2018 ₹ 2495 (set)

# योग उपनिषदः

( 20 योग उपनिषदों का संस्कृत मूल एवं विद्यालंकृता हिन्दी व्याख्या तथा श्लोकानुक्रमणिका सहित )

## प्रथम भाग

सुभाष विद्यालंकार

प्रतिभा प्रकाशन

दिल्ली भारत

प्रथम संस्करण : 2018

ISBN : 978-81-7702-441-8 (सेट)
978-81-7702-442-5 (प्रथम भाग)



मूल्य : ₹2495 (सेट)

प्रकाशक :
डॉ० राधेश्याम शुक्ल
एम.ए., एम. फ़िल्., पी-एच.डी.
प्रतिभा प्रकाशन
(प्राच्यविद्या-प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता)
7259/23, अजेन्द्र मार्केट, प्रेमनगर
शक्तिनगर, दिल्ली-110007
दूरभाष : (O) 011-47084852, 09350884227
*e-mail* : pratibhabooks@ymail.com

टाईप सेटिंग : एस० के० ग्राफिक्स
दिल्ली-84

मुद्रक : एस० के० ऑफसेट, दिल्ली

# YOGA UPANIṢADS

**(Sanskrit Text of 20 Yoga upaniṣads, Vidyālaṅkritā Hindi Commentary with Ślokānukramaṇikā)**

## Volume - 1

**Subhash Vidyalankar**
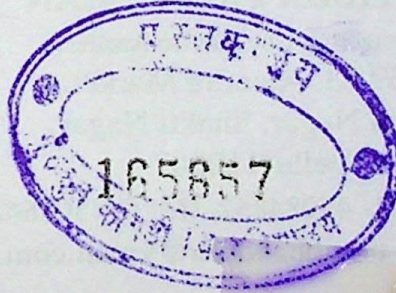
# PRATIBHA PRAKASHAN

**DELHI-110007**

First Edition : 2018



ISBN : 978-81-7702-441-8 (Set)
978-81-7702-442-5 (Part - I)

Price : ₹ 2495

Published by :
**Dr. Radhey Shyam Shukla**
M.A., Ph.D.
**PRATIBHA PRAKASHAN**
(Oriental Publishers & Booksellers)
7259/23, Ajendra Market,
Prem Nagar, Shakti Nagar
Delhi-110007
Ph. : (O) 011- 47084852, (M) 09350884227
e-mail : pratibhabooks@ymail.com

*Laser Type Setting* :
**S.K. Graphics,** Delhi-84

*Printed at* : **S.K. Offset,** Delhi

जीवन सङ्गिनी
प्रोफेसर (डॉ०) इन्दुलेखा
को

**धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानाम्**
**स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।**
**अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि संव्यमाना**
**नैवाप्त भावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्।।**

महाभारत आदि पर्व २/३९१

आप सब सांसारिक आसक्तियों से ऊंचे उठें और आपका मन धर्म में सदा लगा रहे क्योंकि परलोक में गये हुए जीव का सहायक एकमात्र धर्म ही है। चतुर मनुष्य भी स्त्रियों और धन का सेवन तो करते हैं, किन्तु वे इनकी श्रेष्ठता पर विश्वास नहीं करते और न इन्हें स्थायी मानते हैं।

**ब्रह्मविद्या सम्प्रदायकर्तृभ्यो**
**वंशऋषिभ्यो नमो गुरुभ्यः!**

# भूमिका

वैदिक साहित्य में उपनिषदों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपनिषदें ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करती हैं। इनमें वेद मन्त्रों के गूढ़ अर्थों की व्याख्या की गई है। प्रत्येक उपनिषद् किसी न किसी वेद से सम्बद्ध है। योग उपनिषदें जिस वेद से सम्बद्ध हैं उनकी सूची इस प्रकार है—

**ऋग्वेद** - नादबिन्दु उपनिषद्।

**सामवेद** - योग चूड़ामणि और दर्शन उपनिषदें।

**अथर्ववेद** - पाशुपत ब्रह्म, महावाक्य और शाण्डिल्य उपनिषदें।

**शुक्लयजुर्वेद** - अद्वयतारक, मण्डल ब्राह्मण और हंस उपनिषदें।

**कृष्णायजुर्वेद** - अमृतबिन्दु, अमृत नाद, क्षुरिका, तेजोबिन्दु, ध्यानबिन्दु, ब्रह्मविद्या, योगतत्त्व, त्रिशिखिब्राह्मण, योगशिखा, योग कुण्डली और वराह उपनिषदें।

भारतीय दर्शन और धर्मशास्त्र के इतिहास में उपनिषद् किसी एक काल खण्ड में नहीं लिखी गईं। अनेक उपनिषदे वैदिक काल से परवर्ती काल की हैं। ये शैव, वैष्णव, संन्यास आदि विभिन्न पन्थों, सम्प्रदायों को प्रतिपादित करती हैं। मुक्तिकोपनिषद् (३० से ३९ वें श्लोकों तक) में १०८ उपनिषदों की परिगणना की गई है। ईश, केन, कठ आदि ग्यारह उपनिषदों की व्याख्या शंकराचार्य ने की है। इन उपनिषदों की वेदान्त परक व्याख्या समझने के लिये शांकर भाष्य उपयोगी है। इन मुख्य उपनिषदों की अनेक व्याख्याएँ हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में और अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में समय-समय पर होती रहती हैं। किन्तु कांची अद्वैत मठ के उपनिषद् ब्रह्म योगी ने इन सभी १०८ उपनिषदों की संस्कृत में व्याख्या की है। सम्भवत: किसी अन्य विद्वान ने सारी उपनिषदों की व्याख्या नहीं की है।

अडयार पुस्तकालय, मद्रास ने अनेक वर्ष पहिले इन १०८ उपनिषदों को उपनिषद् ब्रह्म योगी की संस्कृत व्याख्या सहित आठ खण्डों में प्रकाशित किया था। इनमें से २० योग उपनिषदों का खण्ड १९२० में प्रकाशित किया गया था। इस खण्ड में भी मूल उपनिषदें और उपनिषद् ब्रह्म योगी की संस्कृत व्याख्या है। इसी खण्ड के आधार पर योग उपनिषदों का हिन्दी अनुवाद और व्याख्या प्रस्तुत है। आशा है साधकों के मार्ग दर्शन में यह व्याख्या सहायक होगी।

मकर सङ्क्रान्ति **सुभाष विद्यालंकार**

१४.०१.२०१८

# विषय-सूची

## द्वितीय भाग

१

# अमृतबिन्दूपनिषत्

## (ब्रह्मबिन्दूपनिषद्)

**ओ३म् सहनाववतु........ओ३म् शान्तिः!**

**अमृतबिन्दूपनिषद् वेद्यं यत् परमाक्षरम्।**
**तदेव हि त्रिपाद्रामचन्द्राख्यं नः परा गतिः।।**

अमृतबिन्दूपनिषद् को ब्रह्मबिन्दूपनिषद् भी कहा जाता है। कृष्ण यजुर्वेद की शाखाओं से यह उपनिषद् सम्बद्ध है।

### बन्ध-मोक्ष का कारण मन

**ओ३म् मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च।**
**अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम्।।१।।**

मन दो प्रकार का होता है– शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध मन में सात्विक भाव रहते हैं। अशुद्ध मन में राजसिक और तामसिक भाव रहते हैं। कामनाओं और संकल्पों से भरे मन में अविद्या का अंश रहता है इसलिये ऐसा मन अशुद्ध कहलाता है। किसी भी प्रकार की इच्छा या कामना से रहित मन शुद्ध कहलाता है, क्योंकि ऐसे मन में विद्या का अंश रहता है।

**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।**
**बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः।।२।।**

मनुष्यों के इस संसार के बन्धनों में पड़े रहने का या इन सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाने का मुख्य कारण मन ही है। सांसारिक विषय-भोगों में

लगा हुआ मन हमारे बन्धनों का कारण होता है। किन्तु जब हमारे मन से विषय-भोगों की तथा दूसरी सारी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं तब मन हमें मोक्ष के मार्ग पर ले जाता है।

**मोक्ष का उपाय मन का निरोध**

**यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते।**
**अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा।।३।।**

क्योंकि कामनाओं और विषय भोगों की इच्छाओं से रहित मन ही मोक्ष-मार्ग पर ले जाता है, इसलिये मोक्ष चाहने वाले व्यक्ति को अपना मन कामनाओं से सदा मुक्त रखना चाहिये।

**निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि।**
**यदा यात्यात्मनोऽभावं तदा तत् परमं पदम्।।४।।**

मन को ब्रह्म के चिन्तन में लगाये रखने से मन की विषय-भोगों आदि की सभी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। ब्रह्म ध्यान का लगातार अभ्यास करते रहने से मन; हृदय में स्थित हो जाता है। जब मन की ऐसी स्थिति आ जाती है तब मन का अभाव हो जाता है या उन्मनीभाव हो जाता है। उन्मनीभाव या मन की एकाग्रता की स्थिति आ जाने पर साधक परम पद या मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

**तावदेव निरोद्धव्यं यावद् हृदि गतं क्षयम्।**
**एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषो ग्रन्थ विस्तरः।।५।।**

जब कामनाओं से रहित मन; हृदय में जाकर अपने सारे संकल्प-विकल्प नष्ट कर देता है तब तक मन का निरोध करने की अर्थात् मन को ब्रह्म में लगाये रखने की आवश्यकता रहती है। 'उन्मनीभाव' की स्थिति आ जाने पर अर्थात् मन और हृदय में केवल ब्रह्म का ध्यान बना रहने पर साधक को अन्य किसी प्रकार के ध्यान या ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि ब्रह्म का ज्ञान और ध्यान ही मुक्ति की अवस्था है और इस अवस्था को प्राप्त साधक को अन्य किसी युक्ति या ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती।

### ब्रह्मज्ञान से ब्रह्मभाव की प्राप्ति

**नैव चिन्त्यं न च अचिन्त्यं न चिन्त्यं चिन्त्यमेव च।**
**पक्षपात विनिर्मुक्तं ब्रह्म संपद्यते तदा।।६।।**

ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप जान लेने पर साधक को यह अनुभूति होने लगती है कि वह स्वयं ब्रह्म का ही अंश है। इस अवस्था में साधक को ब्रह्म के सम्बन्ध में सोचने की या न सोचने की अथवा किसी अवस्था में ब्रह्म का ध्यान करने की या कभी ब्रह्म का ध्यान न करने की आवश्यकता ही नहीं रहती, क्योंकि साधक के हृदय में तब ब्रह्म के अतिरिक्त कोई अन्य विचार उठता ही नहीं उसका हृदय ब्रह्म भाव से युक्त हो जाता है।

### सविशेष ब्रह्म के अनुसन्धान से निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्ति

**स्वरेण संधयेत् योगम् अस्वरं भावयेत् परम्।**
**अस्वरेणानुभावेन नाभावो भाव इष्यते।।७।।**

ध्यान करते समय साधक जब श्वास भरे तब उसे ओ३म् के 'ओ' शब्द का मन ही मन उच्चारण करना चाहिये और श्वास छोड़ते समय 'म्' शब्द का। इस विधि से प्रणव जप करते हुए साधक को जगत् स्रष्टा ईश्वर या ब्रह्म अर्थात् सगुण - ईश्वर या सगुण ब्रह्म या सविशेष ब्रह्म के ध्यान में मन लगाना चाहिये। ध्यान की अवस्था गहरी या गाढ़ होने पर साधक का श्वास-प्रश्वास सूक्ष्म या बहुत हल्का हो जाता है। ऐसी स्थिति आने पर साधक को श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केन्द्रित न करके अनादि मुक्तचित्त निर्गुण ईश्वर या निर्विशेष ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये। यही निर्विशेष ब्रह्म की अस्वर भावना है। अस्वर भावना के द्वारा निर्विशेष ब्रह्म का स्वरूप अनुभव करके पर ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये।

ब्रह्म की अस्वर भावना से निर्विशेष या निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप अनुभव कर लेने पर साधक के हृदय में कभी भी ब्रह्म की भावना का अभाव नहीं रहता।

**तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम्।**
**तद् ब्रह्म अहम् इति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम्।।८।।**

अस्वर भावना के द्वारा ब्रह्म का स्वरूप अनुभव कर लेने पर साधक निष्कल अर्थात् प्राण आदि सोलह कलाओं से रहित, निर्विकल्प अर्थात् तरह-तरह के विचारों या वृत्तियों से रहित, निरञ्जन अर्थात् निर्लेप, शोक-मोह आदि से रहित, माया के आवरण से रहित, निर्गुण चैतन्य ब्रह्म मैं ही हूँ यह जान कर ब्रह्म भाव में निश्चय ही स्थित हो जाता है।

**निर्विकल्पमनन्तं च हेतुदृष्टान्त वर्जितम्।**
**अप्रमेयम् अनादिं च यत् ज्ञात्वा मुच्यते बुधः।।९।।**

वह ब्रह्म; निर्विकल्प अर्थात् तरह-तरह के विचारों से शून्य है। अनन्त अर्थात् देश, काल और किसी वस्तु की सीमा से रहित है। हेतु और दृष्टान्त या उदाहरण से रहित अर्थात् स्वयंसिद्ध और किसी भी वस्तु से उसका स्वरूप न समझा सकने के कारण किसी भी दृष्टान्त से रहित है। अप्रमेय अर्थात् वेदज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी प्रमाण से न बतलाये जा सकने वाले हैं और अनादि अर्थात् प्रारम्भ-रहित, नित्य, जिसका आरम्भ और समाप्ति न हो, या आदि और अन्त से रहित है। साधक; ब्रह्म का यह स्वरूप जानकर इस संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

**न निरोधो न च उत्पत्तिः न बद्धो न च साधकः।**
**न मुमुक्षुः न वै मुक्तः इत्येषा परमार्थता।।१०।।**

ऐसा साधक जन्म-मरण और संसार के बन्धनों से छूटा हुआ, या मोक्षसाधक,या मोक्ष की इच्छा करने वाला अथवा मुक्त कुछ भी नहीं रहता। वह ब्रह्म मात्र ही रह जाता है। परमतत्त्व को प्राप्त कर लेने पर साधक की यही अवस्था होती है।

**आत्मा की एकता**

**एक एव आत्मा मन्तव्यो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिषु।**
**स्थानत्रय व्यतीतस्य पुनर्जन्म न विद्यते।।११।।**
**एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।**
**एकधा बहुधा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत्।।१२।।**

मनुष्य को अपनी जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में

एक ही आत्मा समझनी चाहिये। जो साधक इन तीनों अवस्थाओं को लांघ कर चौथी तुरीयावस्था में पहुँच जाता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता। वह मुक्त हो जाता है।

प्रत्येक प्राणी में परमात्मा का एक ही अंश आत्मा के रूप में समाया हुआ है, किन्तु परमात्मा का वह एक ही स्वरूप भिन्न-प्राणियों में अलग-अलग और अनेक प्रकार का दिखता है, जैसे एक ही चन्द्रमा भिन्न-भिन्न जलों में अनेक दिखता है।

**आत्मा का जन्म और नाश नहीं होता**

**घटसंवृतमाकाशं लीयमाने घटे यथा।**
**घटो लीयेत नाकाशः तद् वत् जीवो नभोपमः।।१३।।**
**घटवत् विविधाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः।**
**तद् भेदे च न जानाति स जानाति च नित्यशः।।१४।।**

जैसे खाली घड़े में बन्द आकाश; घड़ा फूट जाने पर उसमें बन्द आकाश नहीं दिखाई देता परन्तु आकाश नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार देहान्त हो जाने पर जीव या आत्मा फूटे घड़े के आकाश की तरह शरीर में दिखाई नहीं देता। जैसे तरह-तरह के घड़ों में बन्द आकाश तरह-तरह का दिखता है, किन्तु घड़ों के टूट जाने पर हमें घड़ों में बन्द भिन्न-भिन्न आकृतियों का आकाश दिखाई नहीं देता, एक अखण्ड आकाश ही दिखाई देता है। इसी प्रकार आत्मज्ञानी मनुष्य शरीरान्त हो जाने पर आत्मा का नाश नहीं देखता, क्योंकि वह जानता है कि आत्मा, आकाश की तरह नित्य रहता है।

**उपाधिरहित आत्मदर्शन**

**शब्दमायावृतो नैव तमसा याति पुष्करे।**
**भिन्ने तमसि च एकत्वम् एक एव अनुपश्यति।।१५।।**

शब्दों के प्रपंच में या शब्दजाल की माया में फंसा अज्ञानी मनुष्य अपने पवित्र आत्मा को नहीं देख पाता। अज्ञान का अन्धकार दूर हो जाने

पर ज्ञानी पुरुष वासनाओं के नष्ट हो जाने पर प्रत्येक प्राणी से सम्बद्ध एक ही परमात्मा को देखता है।

### शब्दब्रह्म के ध्यान से परब्रह्म की प्राप्ति

**शब्दाक्षरं परं ब्रह्म तस्मिन् क्षीणे यदक्षरम्।**
**तद् विद्वान् अक्षरं ध्यायेत् यदि इच्छेत् शान्तिम् आत्मनः।।१६।।**

**द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्।**
**शब्दब्रह्मणिनिष्णातः परंब्रह्म अधिगच्छति।।१७।।**

**ग्रन्थम् अभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञान तत्परः।**
**पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रन्थम् अशेषतः।।१८।।**

परब्रह्म को प्राप्त करने का उपाय प्रणवजप या शब्दाक्षर का ज्ञान है। प्रणवजप के निरन्तर अभ्यास से परब्रह्म का स्वरूप जान कर प्रणवजप या ओंकार का जाप क्षीण हो जाने पर ज्ञानी पुरुष को अक्षर ब्रह्म अर्थात् अविनाशी ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये। अक्षर ब्रह्म का ध्यान करने पर ही साधक को शान्ति प्राप्त होती है। शब्दब्रह्म और परब्रह्म इन दो विद्याओं को जानना चाहिये। जो साधक शब्दब्रह्म को अर्थात् सगुणब्रह्म को भली भांति जान लेता है वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

गुरुमुख से शास्त्रों का ज्ञान सुनकर इस ज्ञान के सम्बन्ध में मनन और निरन्तर चिन्तन करते रहने पर जब तक ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता तब तक बुद्धिमान पुरुष को शास्त्रों से ब्रह्मविद्या का ज्ञान और विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिये। जब उसे ब्रह्म के स्वरूप का संशयरहित ज्ञान हो जाता है तब वह शास्त्रों का अध्ययन उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे अन्न चाहने वाला भूसी को छोड़ देता है।

### सभी प्राणियों और प्रत्यगात्मा (परमात्मा) की एकता

**गवामनेकवर्णानाम् क्षीरस्य अपि एकवर्णता।**
**क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं लिङ्गिनः तु गवां यथा।।१९।।**

**घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम्।**
**सततं मनसि मन्थयितव्यं मनोमन्थानभूतेन।।२०।।**

जैसे अनेक रंगों की गायों का दूध एक ही रंग का होता है उसी प्रकार परमात्मा का ज्ञान गायों के दूध की तरह एकरूप ही होता है। जैसे दूध में घी छिपा रहता है वैसे ही प्रत्येक प्राणी में विज्ञानात्मा अर्थात् प्रत्यक् आत्मा अर्थात् प्रत्येक प्राणी में बैठा हुआ आत्मा दिखाई नहीं देता। परब्रह्म का दर्शन करने के लिये मन को मथानी बनाकर मन में परब्रह्म का चिन्तन उसी प्रकार सदा करना चाहिये जैसे मथानी से मथकर दही से घी निकाला जाता है।

**ब्रह्मसाक्षात्कार का साधन ध्यान**

**ज्ञाननेत्रं समाधाय च उद्धरेत् वह्निवत् परम्।**
**निष्कलं निश्चलं शान्तं तद् ब्रह्माहमिति स्मृतम्।।२१।।**
**सर्वभूताधिवासं यद् भूतेषु वसत्यपि।**
**सर्वानुग्राहकत्वेन तदस्मि अहं वासुदेवः।।२२।।**

जैसे अरणि लकड़ी में छिपी अग्नि को दो अरणियाँ आपस में रगड़कर आग जलाई जाती है, वैसे ही साधक को अपना ज्ञानरूपी नेत्र हृदय में लगाकर ध्यान के द्वारा परब्रह्म का साक्षात् करना चाहिये। परब्रह्म; प्राण आदि सोलह कलाओं से रहित है। निश्चल अर्थात् सदा वर्तमान है और शान्त है। ब्रह्मसाक्षात्कार से साधक स्वयं ब्रह्म में लीन हो जाता है।

सभी प्राणियों में बसे हुए अन्तर्यामी ब्रह्म सभी प्राणियों पर कृपादृष्टि बनाये रखते हैं ऐसी अनुभूति कर लेने पर साधक स्वयं को ही वासुदेव मानने लगता है।

**।। अमृतबिन्दूपनिषद् सम्पूर्ण।।**

## २

# अद्वयतारकोपनिषद्

**ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः!!**

**द्वैतासंभवविज्ञान संसिद्धाद्वयतारकम्।**
**तारकं ब्रह्मेति गीतं वन्दे श्रीरामवैभवम्।।**
**ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।**

अद्वयतारकोपनिषद् यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें राजयोग का वर्णन है। 'अद्वय' का अर्थ ब्रह्म है। यह उपनिषद् ब्रह्मविद्या का ज्ञान कराती है।

### तारकयोगाधिकारः

**अथातोऽद्वयतारकोपनिषदं व्याख्यास्यामो यतये जितेन्द्रियाय शमादिषड्गुणपूर्णाय।।१।।**

जो शास्त्र पढ़ चुका है। जितेन्द्रिय है। जिसमें शम, दम, तितिक्षा (कष्ट सहने की क्षमता), उपरति (वैराग्य), श्रद्धा और समाधान ये छह गुण हैं, उसे इस ब्रह्मविद्या का उपदेश देना चाहिये।

### योगसाधना का उपाय और योगसिद्धि

**चित् स्वरूपोऽहमिति सदा भावयन् सम्यङ्निमीलिताक्षः किंचिद् उन्मीलिताक्षो वा अन्तर्दृष्ट्या भ्रूदहरात् उपरि सच्चिदानन्द तेजः कूटरूपं परं ब्रह्मावलोकयन् तद्रूपो भवति।।२।।**

ध्यान लगाने के लिए साधक को आंखें बंद करके अथवा आंखें आधी खुली रखकर भ्रूमध्य में ध्यान केन्द्रित करके मन में सच्चिदानन्द

स्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ यह भावना करनी चाहिये। ध्यान के समय सत्, चित्, आनन्दमय और तेजपुंज परब्रह्म का स्मरण! करते रहने से साधक; ब्रह्म साक्षात् कर लेता है।

**गर्भजन्मजरामरणसंसार महद् भयात् संतारयति तस्मात् तारकमिति। जीव ईश्वरौ मायिकौ इति विज्ञाय सर्वविशेषं नेति नेतीति विहाय यद् अवशिष्यते तद् अद्वयं ब्रह्म।।३।।**

यह उपनिषद् गर्भ में रहने, जन्म लेने, बुढ़ापे, मृत्यु और सांसारिक दुख भोगने आदि भयों से छुड़ाकर साधक को तार देती है और ब्रह्म का ज्ञान कराती है। ईश्वर और जीव की सत्ता मायामयी है यह जानकर साधक समझ लेता है कि सांसारिक पदार्थों में कोई भी वस्तु सदा रहने वाली नहीं है अत: इन्हें छोड़ देने के बाद जो कुछ बचा रहता है वह केवल अद्वितीय ब्रह्म या अद्वयब्रह्म ही है, वही सत् है।

**तत् सिद्ध्यै लक्ष्यत्रयानुसंधानं कर्तव्यम्।।४।।**

उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिये आन्तरिक, मध्य और बाह्य इन तीन लक्ष्यों की खोज करनी चाहिये।

## अन्तर्लक्ष्य का लक्षण

**देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुम्ना सूर्यरूपिणी पूर्ण चन्द्राभा वर्तते। सा तु मूलादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति। तन्मध्ये तडित्कोटिसमान कान्त्या मृणालसूत्रवत् सूक्ष्मांगी कुण्डलिनीति प्रसिद्धा अस्ति। तां दृष्ट्वा मनसैव नरः सर्वपापविनाशद्वारा मुक्तो भवति। फालोर्ध्वगललाटविशेष मण्डले निरन्तरं तेजः तारकयोगविस्फुरणेन पश्यति चेत् सिद्धो भवति। तर्जनी अग्र उन्मीलितकर्णरन्ध्रद्वये तत्र फूत्कारशब्दो जायते।**

**तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्यगत नीलज्योतिस्स्थलं विलोक्य अन्तर्दृष्ट्या निरतिशय सुखं प्राप्नोति। एवं हृदये पश्यति। एवम् अन्तर्लक्ष्यलक्षण मुमुक्षुभिः उपास्यम्।।५।।**

हमारे शरीर के बीच में अर्थात् मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) में ब्रह्मनाडी सुषुम्ना है। यह सुषुम्ना पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह कान्तिपूर्ण और सूर्य

जैसी तेजस्विनी है। सुषुम्ना, मूलाधार से अर्थात् कमर में रीढ़ की हड्डी की अन्तिम कड़ी के पास और गुदा के कुछ ऊपर से लेकर सिर में ब्रह्मरन्ध्र तक गई हुई है। इस सुषुम्ना के बीच में कमल नाल या बिस के तन्तु जैसी बहुत सूक्ष्म कुण्डलिनी नाड़ी है। कुण्डलिनी आकाश की करोड़ों बिजलियों की चमक जैसी चमकीली है। साधक इस कुण्डलिनी का मन ही मन दर्शन करके अपने सभी पाप नष्ट कर देता है और मुक्त हो जाता है

आँखों की दोनों भौंहों के बीच ऊपर माथे में अर्थात् आज्ञाचक्र में तारक योग का अभ्यास करते-करते साधक कभी-कभी अचानक चमकने वाली ज्योति का जब निरन्तर दर्शन करने लगता है तब उसकी साधना सफल हो जाती है। दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों अर्थात् अंगूठे से अगली अंगुलियों के अगले हिस्से से कानों को बन्द करने पर बादल गरजने जैसी आवाज सुनाई देती है। बादलों की इस गरज में मन लगाकर आँखें बन्द करके आँखों के बीच गहरा नीला प्रकाश का बिन्दु देखने पर साधक को हृदय में अत्यन्त सुख अनुभव होता है। मोक्ष की इच्छा करने वालों को इस अन्तर्लक्ष्य पर ध्यान लगाना चाहिये।

## निर्विकल्प समाधि

मूलाधार चक्र के त्रिकोण में सोई हुई कुण्डलिनी जब प्राण, मन और दृष्टि की अग्नियों के ताप से जाग जाती है, तब वह सुषुम्ना नाड़ी के निचले सिरे को या सुषुम्ना के मुख को खोलकर सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति प्राप्तकर साधक अपने सभी सांसारिक और मानसिक संकल्प-विकल्पों और द्वन्द्वों को भूलकर अपने अन्तःकरण में निर्विकल्प ब्रह्म पद प्राप्त कर लेता है अर्थात् जब अन्तःकरण की वृत्तियां शान्त हो जाती हैं तब वृत्तिरहित अद्वैत अवस्थानरूप निर्विकल्प-समाधि सिद्ध होती है। जैसे तपे हुए लोहे पर गिरी पानी की बूंद गर्म लोहे में प्रविष्ट हो जाती है वैसे ही अद्वैत भावनारूप समाधि के अभ्यास से मन की वृत्ति; या मन के संकल्प-विकल्प; अत्यन्त आलोकमय ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

## अनाहतनाद

हाथ के अंगूठों या अंगुलियों से दोनों कान बन्द करने पर जो ध्वनि

सुनाई देती है वह 'अनाहत नाद' कहलाता है। यह ध्वनि पहले अव्यक्त रूप से आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) में मन के अनुभव में आती है। इसके बाद अनाहत-चक्र (हृदय-चक्र) में जाकर कानों को सुनाई देती है।

इस प्रकरण में अनाहत नाद और निर्विकल्प समाधि का संक्षिप्त विवरण और प्रक्रिया बताई गई है।

**बहिर्लक्ष्यलक्षण**

**अथ बहिर्लक्ष्यलक्षणम्। नासिकाग्रे चतुर्भिः षड्भिः अष्टभिः दशभिः द्वादशभिः क्रमात् अंगुलान्ते नीलद्युतिश्यामत्वसदृक् रक्तभङ्गी स्फुरत् पीतशुक्लवर्णद्वयोपेतं व्योम यदि योगी पश्यति स तु योगी भवति। चलदृष्ट्या व्योमभागवीक्षितुः पुरुषस्य दृष्टि अग्रे ज्योतिः मयूखा वर्तन्ते। तद्दर्शनेन योगी भवति। तप्तकांचनसंकाश ज्योतिर्मयूखा अपाङ्गान्ते भूमौ वा पश्यति तत् दृष्टिः स्थिरा भवति। शीर्षोपरि द्वादशाङ्गुलसमीक्षितुः अमृतत्वं भवति। यत्र कुत्र स्थितस्य शिरसि व्योमज्योतिः दृष्टं चेत् स तु योगी भवति।।६।।**

साधक अपनी नाक के अगले भाग से क्रमशः चार, छह, आठ, दस और बारह अंगुलि की दूरी पर जब हलके नीले, काले, लाल और सफेद-पीले रंगों का आकाश देखने लगता है, तब वह योगी बन जाता है। इस अभ्यास में दृष्टि को नाक के अगले भाग पर स्थिर रखा जाता है आंखें आधी खुली रहती हैं। इस अभ्यास में नीले और सफेद-पीले रंग का आकाश देखने का प्रयत्न विशेष रूप से करना होता है। अन्य रंग बीच-बीच में आते रहते हैं।

अस्थिर दृष्टि से नासाग्र पर आकाश देखने पर जब चमकीली किरणें दिखाई देती हैं। तब साधक योगी बन जाता है।

जब योगी को अपनी आंखों की कोर के आगे या भूमि पर तपे हुए सोने के रंग जैसी चमकीली किरणें दीखती हैं तब इन ज्योति-किरणों पर उसकी दृष्टि टिक जाती है या स्थिर हो जाती है। मस्तक के ऊपर बारह अंगुलि पर ज्योति का दर्शन होने पर योगी अमरत्व प्राप्त कर लेता है। यदि

योगी को कहीं आते-जाते या कुछ करते हुए अपने सिर के ऊपर प्रकाशयुक्त आकाश दीखने लगता है तो उसकी साधना फलवती होने लगती है।

**मध्यलक्ष्यलक्षणः**

**अथ मध्यलक्ष्यलक्षणम्। प्रातश्चित्रादि वर्णाखण्डसूर्यचक्रवत् वह्निज्वालावलीवत् तद् विहीनान्तरिक्षवत् पश्यति। तदाकारकारितया अवतिष्ठति। तद् भूयोदर्शनेन गुणरहित आकाशं भवति। विस्फुरत् तारक आकार संदीप्यमानागाढतमोपमं परमाकाशं भवति। कालानलसमद्योतमानं महाकाशं भवति। सर्वोत्कृष्ट परमद्युतिप्रद्योतमानं तत्त्वाकाशं भवति। कोटिसूर्यप्रकाश वैभवसंकाश सूर्याकाशं भवति। एवं बाह्य आभ्यन्तरस्थ व्योम-पञ्चकं तारक लक्ष्यम्। तद्दर्शी विमुक्तफलः तादृग्व्योमसमानो भवति। तस्मात् तारक एव लक्ष्यम् अमनस्कफलप्रदं भवति।।७।।**

साधक, प्रातःकाल विविध रंगों वाले पूर्ण सूर्यमण्डल तथा अग्नि की ज्वालाओं के समान या इनसे रहित आकाश को देखता है और उसका मन इन्हीं के आकार की भांति बना रहता है। इस प्रकार का आकाश बार-बार देखने पर गुणरहित आकाश हो जाता है।

इसके बाद उसे घने अन्धकार में तारों के चमकीले आकार का परमाकाश दिखाई देता है। फिर कालाग्नि के समान चमकीला महाकाश दीखता है। इसके बाद सर्वोत्कृष्ट परम प्रकाश से भासमान तत्त्वाकाश दीखता है। तत्पश्चात् करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से देदीप्यमान सूर्याकाश दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार बाह्य और आन्तरिक पांच आकाशों को लक्ष्य बनाने वाला तारक योगी बन जाता है। ऐसा देखने वाला योगी फल की कामनाओं से छूटकर इन्हीं पांच आकाशों के समान दीप्त हो जाता है। इस प्रकार तारक लक्ष्य ही अमनस्क फल प्रदान करता है।

**तारक या तारक ज्ञान**

योग की परिभाषा में तारक का अभिप्राय अज्ञान से पार उतार देने

वाला विवेक ज्ञान या आलोक विशेष होता है। तारक ज्ञान किसी निमित्त या कारण के बिना और अपनी प्रतिभा से उत्पन्न ज्ञान होता है। इसीलिये तारक ज्ञान को प्रातिभज्ञान भी कहा जाता है। यह ज्ञान संसार सागर से पार कराने वाला होता है। विवेकख्याति या प्रसंख्यान के उदय होने का प्रथम लक्षण प्रातिभ-ज्ञान होता है। जैसे सूर्योदय का प्रथम संकेत सूर्य की प्रभा होता है। इसलिये तारक-आलोक को सूर्योदय से पूर्व का आलोक कह सकते हैं।

## तारक के दो प्रकार

**तत्तारकं द्विविधं पूर्वार्धं तारकं उत्तरार्धम् अमस्कम् चेति।**

तारक दो प्रकार का होता है पूर्वाध तारक और उत्तरार्ध तारक या अमनस्क तारक।

## तदेष श्लोको भवति

**तद् योगं च द्विधा विद्धि पूर्वोत्तरविधानतः।**
**पूर्वं तु तारकं विद्यात् अमनस्कं तद् उत्तरम् इति।।८।।**

यह योग पूर्व और उत्तर के कारण दो प्रकार का है। पूर्व या पहिले का नाम तारक योग है और दूसरे का अमनस्क योग।

## तारकयोगसिद्धिः

**अक्षि अन्तः तारयोः चन्द्रसूर्य प्रतिफलनं भवति। तारकाभ्यां सूर्य चन्द्रमण्डल दर्शनं ब्रह्माण्डमिव पिण्डाण्डशिरोमध्यस्थाकाशे रवि इन्दुमण्डल द्वितयम् अस्तीति निश्चित्य तारकाभ्यां तद् दर्शनम्। अत्रापि उभयऐक्य दृष्ट्या मनोयुक्तं ध्यायेत्। तद् योग अभावे इन्द्रिय प्रवृत्तेः अनवकाशात्। तस्मात् अन्तर्दृष्ट्या तारक एव अनुसन्धेयः।।९।।**

जिस तरह इस ब्रह्माण्ड में सूर्य-चन्द्र हैं उसी प्रकार हमारे शरीर या पिण्डाण्ड में भी सूर्य चन्द्र हमारी आंखों की पुतलियों में दिखाई देते हैं। जैसे साधारण व्यक्ति ब्रह्माण्ड के सूर्य-चन्द्र को मन लगाकर अपनी आंखों से देखता है वैसे ही योगी को भी अपने मस्तक के आकाश में सूर्य-चन्द्र को ध्यान लगाकर देखना चाहिये। यदि मन कहीं और लगा होता है तो

आंख, नाक, कान अपने देखने, सुनने, सूंघने का काम नहीं कर पाते। इसलिये योगी को अपनी अन्तर्दृष्टि से अर्थात् मानसिक शक्ति से ब्रह्म साक्षात् या तारकयोग का अभ्यास करना चाहिये।

## मूर्त और अमूर्त्त के भेद से दो प्रकार का अभ्यास

**तत् तारकं द्विविधं मूर्तितारकं अमूर्तितारकं च इति। यत् इन्द्रियान्तं तत् मूर्तिमत्। यत् भ्रूयुगातीतं तत् अमूर्तिमत्। सर्वत्र अन्तःपदार्थ विवेचने मनोयुक्ताभ्यास इष्यते। तारकाभ्यां तदूर्ध्वस्थसत्त्वदर्शनात् मनोयुक्तेन अन्तरीक्षणेन सच्चिदानन्दस्वरूपं ब्रह्मैव। तस्मात् शुक्ल तेजोमय ब्रह्मेति सिद्धम्। तद् ब्रह्म मनःसहकारिचक्षुषा अन्तर्दृष्ट्या वेद्यं भवति। एवम् अमूर्तितारकम् अपि। मनोयुक्तेन चक्षुषैव दहरादिकं वेद्यं भवति, रूपग्रहणप्रयोजनस्य मनश्चक्षुरधीनत्वात् बाह्यवद् अन्तरेऽपि आत्ममनःचक्षुसंयोगेनैव रूपग्रहण कार्योदयात्। तस्मात् मनोयुक्ता अन्तर्दृष्टिः तारकप्रकाशाय भवति।।१०।।**

तारक योग दो प्रकार का है– मूर्तितारक और अमूर्तितारक। जो इन्द्रियों से देखा-सुना जाता है वह मूर्तिमान या प्रत्यक्ष दिखाई देता है। जो वस्तु दोनों भौंहों से परे है अर्थात् आंखों से नहीं दिखाई देती वह अमूर्तिमान होती है। आन्तरिक वस्तु के दर्शन करने के लिये सदा ही मन लगाने का अभ्यास करना होता है। आंखों की पुतलियों से परे सत् पदार्थ का दर्शन करने के लिये मन लगाकर अन्तर ईक्षण करने से सच्चिदानन्द ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात् होता है।

इस प्रकार पता चलता है कि ब्रह्म शुक्लतेज सम्पन्न है। इस ब्रह्म को मनसहित अन्तर्दृष्टि से देखा जाता है। यह अभ्यास अमूर्ततारक योग का अभ्यास है। मन से युक्त आन्तरिक चक्षु से ही हृदय में छोटे गड्ढे वाला पुण्डरीक के आकार का घर या दहर तथा अन्य सूक्ष्म पदार्थ जाने जाते हैं। जैसे बाह्य जगत् में कोई वस्तु देखने के लिये मन को आंखों से लगाना पड़ता है इसी प्रकार आन्तरिक जगत् में भी आत्मा और मानसिक चक्षु के संयोग से अर्थात् अन्तर्दृष्टि से सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान या अनुभव होता है।

इसलिये तारक योग की सिद्धि के लिये एकाग्र मन से युक्त अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता होती है।

### तारकयोग का स्वरूप

**भ्रूयुग्मध्यबिले दृष्टिं तद् द्वारा ऊर्ध्वस्थिततेज आविर्भूतं तारकयोगो भवति। तेन सहमनोयुक्तं तारकं सुसंयोज्य प्रयत्नेन भ्रूयुग्मं सावधानतया किंचिद् ऊर्ध्वम् उत्क्षेपयेत्। इति पूर्वतारकयोगः। उत्तरं तु अमूर्तिमत् अमनस्कम् इति उच्यते। तालुमूल ऊर्ध्व भागे महान् ज्योतिः मयूखो वर्तते। तत् योगिभिः ध्येयम्। तस्मात् अणिमादि सिद्धिः भवति।।११।।**

दोनों भ्रूमध्य के स्थान अर्थात् आज्ञाचक्र पर दृष्टि केन्द्रित करने से ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर जो तेजोमण्डल प्रकट होता है वह तारकयोग कहलाता है। इस तेजोमण्डल के साथ मन एकाग्र कर दृष्टि को आज्ञाचक्र पर सावधानी से लगाकर दोनों भौंहों को कुछ ऊपर उठाना चाहिये। यह पूर्वतारकयोग की विधि है।

उत्तर तारक योग अमूर्तिमत् या अमनस्क कहलाता है। हमारे तालुमूल के ऊपरी भाग में किरणों का महान् ज्योतिपुंज है। उस पर योगी को ध्यान लगाना चाहिये। यहाँ पर ध्यान लगाने से अणिमा आदि सिद्धियां होती हैं।

### शाम्भवीमुद्रा

**अन्तर्बाह्य लक्ष्ये दृष्टौ निमेषोन्मेषवर्जितायां सत्यां शाम्भवी मुद्रा भवति। तत् मुद्रारूढ ज्ञानिनिवासात् भूमिः पवित्रा भवति। तद् दृष्ट्या सर्वे लोकाः पवित्रा भवन्ति। तादृश परमयोगिपूजा यस्य लभ्यते सोऽपि मुक्तो भवति।।१२।।**

शरीर के अन्दर या बाहर किसी लक्ष्य पर अपलक अर्थात् आंखें झापके बिना ध्यान लगाने से शाम्भवी मुद्रा होती है। शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करने वाला ज्ञानी पुरुष जहाँ भी रहता है वह स्थान पवित्र हो जाता है। उसकी दृष्टि से सम्पूर्ण लोक पवित्र हो जाते हैं। ऐसे उत्कृष्ट योगी की सेवा करने का अवसर जिसे मिलता है वह भी मुक्त हो जाता है।

हठयोगप्रदीपिका में शाम्भवी मुद्रा का वर्णन इस प्रकार है–

**अन्तर्लक्ष्यं बहिःदृष्टिः निमेषोन्मेष वर्जिता।**
**एषा सा शाम्भवी मुद्रा वेदशास्त्रेषुगोपिता।।४/ ३६।।**

शाम्भवी मुद्रा से प्राणलय होता है और प्राणलय से चित्त का लय होता है। शरीर के मूलाधार से लेकर सहस्रार चक्र तक या ब्रह्मरन्ध्र तक किसी आन्तरिक चक्र पर अन्तःकरण एकाग्र करके और आँखों की पलकें झपके बिना किसी बाह्यलक्ष्य पर दृष्टि एकाग्र कर ध्यान करने का अभ्यास शाम्भवी मुद्रा कहलाता है। शरीर के अन्दर किसी चक्र पर योगी का मन एकाग्र हो जाने पर ध्येय लक्ष्य में प्राणवायु सहित मन लीन हो जाता है। तब योगी की अपलक और स्थिर दृष्टि; आंखें खुली रहने पर भी बाह्य जगत् की या नीचे पड़ी किसी वस्तु को भी नहीं देखतीं। शाम्भवी मुद्रा के निरन्तर अभ्यास से योगी अपने अन्तःकरण में प्रकट अत्यन्त कल्याणकारी तत्त्व परब्रह्म को साक्षात् करता है। शाम्भवी मुद्रा में नेत्र थोड़े खुले हैं। आंखें पूरी खुली रहने से चित्त में विक्षेप होता है और बन्द कर लेने से आलस्य आने लगता है।

### अन्तर्लक्ष्य के विकल्प

**अन्तर्लक्ष्य ज्वलत् ज्योतिः स्वरूपं भवति। परमगुरु उपदेशेन सहस्रारेज्वलज्जयोतिः वा बुद्धिगुहानिहित चित् ज्योतिः वा षोडशान्तस्थ तुरीयचैतन्यं वा अन्तर्लक्ष्यं भवति। तद् दर्शनं सद् आचार्यमूलम्।।१३।।**

अन्तर्लक्ष्य जलती हुई ज्योति जैसा होता है। परमगुरु के उपदेश से सहस्रार में प्रकाशित ज्योति, या बुद्धिगुहा में स्थित चित् स्वरूप या चैतन्य स्वरूप ज्योति अथवा षोडशान्त में स्थित तुरीयचैतन्य ये तीन अन्तर्लक्ष्य हैं। इन अन्तर्लक्ष्यों को आचार्य या गुरु की कृपा से देखा जा सकता है।

### षोडशान्त

सोलह अन्त या छोर वाले। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति के सोलह विकार इस प्रकार हैं– **''मूलप्रकृतिः अविकृतिः महदाद्या प्रकृति विकृतयः सप्त षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिः न विकृतिः पुरुषः।।''**

**''षोडशकस्तु विकारः''** विकार १६ हैं, इनके आगे प्रकृति का

विकार नहीं होता। पांच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश), आंख, कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रियां, हाथ, पैर आदि पांच कर्मेन्द्रियाँ और मन ये प्रकृति के १६ विकार हैं। परमपुरुष ब्रह्म; न तो प्रकृति है और न ही प्रकृति का विकार।

### तुरीयचैतन्य

प्रकृति के इन सोलह विकारों के साक्षात् के बाद योगी तुरीयावस्था में पहुँच कर चैतन्य ब्रह्म के दर्शन करता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति शरीर की इन तीन अवस्थाओं के बाद योगी तुरीय अवस्था में पहुँच जाता है। आत्मा की इस चतुर्थ अवस्था में योगी ब्रह्म के साथ तदाकार हो जाता है।

### तुर्यगा अवस्था

योग की सात ज्ञान भूमियां या स्तर हैं। इनमें शुभेच्छा प्रथम भूमि है। तुर्यगा अवस्था ज्ञान की सातवीं और अन्तिम भूमि है। इस स्थिति को प्राप्त योगी सदैव ध्यानमग्न रहता है। संसार का कोई भी विषय, पदार्थ या व्यक्ति उसकी समाधि भंग नहीं कर सकता। वह जीवनमुक्त हो जाता है। वह अपने में ही मग्न रहता है। वह ब्रह्मविद् वरिष्ठ कहलाता है। श्रुति में इस स्थिति का वर्णन इन शब्दों में है–

**आत्मक्रीड आत्मरतिरेष ब्रह्मविदांवरिष्ठः।**

मुण्ड० उप० ३/१/४

जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त योगी अपने में ही सन्तुष्ट रहता है। उसे किसी से राग या द्वेष नहीं होता। गीता में इस स्थिति का वर्णन इन शब्दों में है—

**आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।२/५५।।**

जीवन्मुक्त अवस्था में योगी को और ज्ञानी पुरुष को जाग्रत अवस्था; स्वप्न जैसी लगती है।

महोपनिषद् के अनुसार जीवन्मुक्त का लक्षण इस प्रकार है—

**तपः प्रभृतिना यस्मै हेतुनैव विना पुनः।**
**भोगा इह न रोचन्ते स जीवन्मुक्त उच्यते।।**

महोपनिषद् २/४२

तपस्या आदि के कारण या किसी अन्य कारण के बिना भी जिस व्यक्ति को संसार के भोग-विषय अच्छे नहीं लगते वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

जीवन्मुक्त योगी के सभी क्लेश दग्धवीजवत् हो जाते हैं। इस अवस्था में दुख के उपस्थित होने पर भी योगी दुख को लांघकर विवेक दर्शन में चित्त को लगा सकता है। अत: उसे दुख छूता भी नहीं अतएव वह जीते हुए भी दुखों से छूट जाता है।

गीता में जीवन्मुक्त योगी की अवस्था का वर्णन इन शब्दों में किया गया है:-

**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।**
**यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।६/२२।।**

जीवन्मुक्त योगी; पुरुष और बुद्धि के बीच भेद को जान लेने पर इस विवेकज्ञान के आगे किसी और बात को अधिक लाभदायक नहीं मानता। इस अवस्था को प्राप्त योगी बड़े से बड़े दुख में भी विचलित नहीं होता।

**तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार**

**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।**

ब्रह्मज्ञान का आनन्द अनुभव करके जीवन्मुक्त योगी को कोई भी डर नहीं सताता।

**बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार-**

**आत्मानं चेद् विजानीयाद् अयमस्मि इति पूरुषः।**
**किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्।।४/४/१२।।**

यदि पुरुष अपने विवेकज्ञान से आत्मा के बारे में यह जान ले कि 'मैं

यह हूँ' तो फिर क्या चाहता हुआ और किस कामना से शरीर के पीछे दुखी होता फिरे।

**आचार्य के लक्षण**

**आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः।**
**योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः।।१४।।**

**गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः।**
**एवं लक्षणसम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते।।१५।।**

**गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः।**
**अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते।।१६।।**

**गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुदेव परा गतिः।**
**गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव परायणम्।।१७।।**

**गुरुरेव परा काष्ठा गुरुरेव परं धनम्।**
**यस्मात्तदुपदेष्टाऽसौ तस्माद् गुरुतरो गुरुरिति।।१८।।**

आचार्य को वेदों का विद्वान, परमेश्वर भक्त, ईर्ष्या रहित, योगविद्या का जानकार, योगाभ्यासी और निष्काम कर्म-योगी, शरीर और मन से पवित्र, सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म को जानने वाला और गुरु भक्ति युक्त होना चाहिये।

'गु' शब्द का अर्थ अन्धकार है और 'रु' शब्द का अर्थ अन्धकार दूर करने वाला है। इसलिये अज्ञान के अन्धकार को दूर करने वाले को गुरु कहा जाता है।

गुरु ही शिष्य का सहारा है, गुरु ही उसके लिये परब्रह्म स्वरूप है। गुरु ही सर्वोत्कृष्ट विद्या देने वाला है और गुरु ही शरण है।

गुरु ही ज्ञान की सर्वोत्कृष्ट दिशा और सर्वोत्तम धन है। गुरु सर्वोच्च ज्ञान प्रदान करता है इसलिये गुरु अत्यन्त महान और पूजनीय है।

**ग्रन्थ अभ्यास का फल**

**यः सकृत् उच्चारयति तस्य संसारमोचनं भवति। सर्वजन्मकृतं पापं तत्**

**क्षणादेव नश्यति। सर्वान् कामान् अवाप्नोति। सर्वपुरुषार्थसिद्धिः भवति। य एवं वेदेत्युपनिषत्।।१९।।**

जो इस उपनिषद् को एक बार पढ़ लेता है उसकी संसार से मुक्ति हो जाती है। सारे जन्म के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सभी प्रकार के पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं। जिसे उपनिषदों की ब्रह्म विद्या का ज्ञान हो जाता है।

**।। ओ३म् पूर्णमद इति शान्तिः।।**

**।।अद्वयतारक उपनिषत् सम्पूर्ण।।**

३

# अमृतनादोपनिषद्

**ओ३म् सह नाववतु—इतिशान्तिः!!**

**अमृतनादोपनिषत्प्रतिपाद्यं पराक्षरम्।**
**त्रैपदानन्दसाम्राज्यं हृदि मे भातु संततम्।।**

अमृतनादोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इस उपनिषद् में योग के छह अंगों का विवरण है। उपनिषदों के ज्ञान को सुनकर और इस पर विचार करने से निर्मल चित्त व्यक्ति के पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं। जिन का मन पूरी तरह निर्मल नहीं है उन्हें ब्रह्मोपासना के साथ-साथ योग के छह अंगों का अभ्यास निरन्तर करने से पुरुषार्थ की सिद्धि हो जाती है, इस उपनिषद् में यही विषय प्रतिपादित किया गया है।

### शास्त्र श्रवण आदि के उपाय

**शास्त्राणि अधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः।**
**परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत् तानि अथ उत्सृजेत्।।१।।**

मेधावी व्यक्ति को शास्त्रों का अध्ययन करके और अपने सन्देहों, संशयों आदि को बार-बार दूर करके परम ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ब्रह्म भाव की प्राप्ति हो जाने पर साधक को शास्त्रों के ज्ञान का सहारा लेना उसी प्रकार छोड़ देना चाहिये, जैसे किसी उल्का आदि प्रकाशमान वस्तु से कोई पदार्थ देख लेने पर लालटेन या उल्का आदि को छोड़ दिया जाता है।

## प्रणव उपासना

**ओंकाररथमारुह्य विष्णुं कृत्वाऽथ सारथिम्।**
**ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः।।२।।**
**तावद् रथेन गन्तव्यं यावद् रथ पथि स्थितः।**
**स्थात्वा रथपथिस्थानं रथम् उत्सृज्य गच्छति।।३।।**
**मात्रालिङ्गपदं त्यक्त्वा शब्दव्यञ्जनवर्जितम्।**
**अस्वरेण मकारेण पदं सूक्ष्मं हि गच्छति।।४।।**

प्रणवरथ पर बैठकर अर्थात् ओंकार का उच्चारण करके और विष्णु को, सर्वव्यापक परमात्मा को अपना सारथि बनाकर परमब्रह्मपद को प्राप्त करने वाले को ओंकार के निरन्तर उच्चारण से परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये। ओंकार का जप या उच्चारण करने पर ओंकार का अर्थ ईश्वर चिन्तन है यह भली भांति जान लेना चाहिये। ओंकार जप के निरन्तर अभ्यास से जब मन में ईश्वर की भावना सदा बनी रहने लगे तब साधक को प्रणव जप के सहारे की आवश्यकता नहीं रहती। इसीलिये कहा गया है कि ओंकार का रथ जब साधक को उसके लक्ष्य-स्थान पर पहुँचा दे तब उसे रथ छोड़ कर ब्रह्म साक्षात् का प्रयत्न करना चाहिये।

प्रणव जप के द्वारा जब साधक जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन अवस्थाओं को पार कर तुरीय अवस्था में पहुँचने लगता है तब उसे ओंकार की मात्रा, स्वर और शब्दों को त्यागकर स्वररहित 'म्' पद से ब्रह्म के सूक्ष्म स्वरूप का अनुसन्धान करना चाहिये। भाव यह है कि प्रणव जप के अभ्यास से मन में ईश्वर भाव व्याप्त हो जाने पर अजपाजप का सहारा लेकर ब्रह्म के सूक्ष्म स्वरूप को जानने का प्रयत्न करना चाहिये।

## प्रणव जप के क्रियात्मक निर्देश

आर्ष शास्त्र में ओ३म् शब्द के आदर का विशेष कारण यह है कि प्रणव के द्वारा चित्त की जैसी स्थिरता होती है, वैसी किसी और शब्द से नहीं।

व्यञ्जन वर्णों क, ख, ग आदि का उच्चारण एकतान भाव से नहीं हो सकता, केवल स्वर वर्णों इ, उ, ए आदि का उच्चारण एकतान भाव से किया जा सकता है। किन्तु इसमें वाणी की काफी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। केवल ओंकार अपेक्षाकृत सरलता से बोला जाता है, विशेषरूप से अनुनासिक 'म' एकतान भाव से तथा बहुत कम प्रयत्न से बोला जाता है। 'मकार' प्रश्वास के साथ एकतान भाव से नाक के बहुत कम प्रयत्न से ही बोला जाता है। इस कारण चित्त को एकतान करने के लिये ओम् शब्द ही अधिक उपयोगी है।

ओ३म् ध्वनि मन ही मन बोलने से कण्ठ से मस्तिष्क की ओर एक प्रयत्न जाता है, जिसे योगी कौशल से ध्यान की ओर लगाते हैं किन्तु मुँह से कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। एकतान शब्द के उच्चारण के बिना शुरू में चित्त की एकतानता या ध्यान नहीं लगता, इसलिये प्रणव जप बहुत उपकारी है। 'सोऽहम्' शब्द भी ओ-कार तथा म-कार भाव में ही प्रधानरूप से बोला जाता है, इसलिये वह भी उत्तम और परमार्थ प्रकट करने वाला मन्त्र है। कठोपनिषद् (१/२/१७) में भी कहा गया है **'एतदालम्बनं श्रेष्ठम् एतदालम्बनं परम्।'**

अर्थात् परमार्थ साधन के लिये आलम्बनों या सहारों में प्रणव ही श्रेष्ठ और परम आलम्बन है।

प्रणव का जप तथा उसके अभिधेय (वाचक) ईश्वर की भावना करनी चाहिये। प्रणव जप करने वाले और प्रणव के अर्थ ईश्वर की भावना करने वाले योगी का चित्त एकाग्र होता है।

ओम् शब्द का वास्तविक संकेत अर्थात् ईश्वर याद रहने से ईश्वर का भाव मन में प्रकाशित होता है। जब ओम् शब्द के उच्चारण से ही मन में ईश्वर शब्द का अर्थ भली भांति प्रकाशित होता है तब ओम् शब्द से ईश्वर का ज्ञान हो गया है, ऐसा समझना चाहिये। ओम् शब्द का जप तथा उसकी अर्थ-भावना करते-करते मन इस भावना में अर्थात् ईश्वर की भावना करने में अभ्यस्त हो जाता है। इसके बाद प्रणव तथा उसके अर्थ का ज्ञान अर्थात् ईश्वर का ज्ञान मन में सहज ही उठते रहने पर उत्तम ईश्वर प्रणिधान या ईश्वर

की भक्ति होती है। ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्धि होती है– **समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।।पा०यो०** २/४५।।

प्रणव जप के द्वारा अपने को ईश्वर के प्रतीक में स्थित, स्थिर, निश्चिन्त और प्रसन्न ऐसा स्मरण करना होता है। इसके अभ्यास से चित्त जब कुछ स्थिर, निश्चिन्त तथा ऐश्वरिक भाव में लगने लगे तब हृदय में स्वच्छ, शुभ्र, असीम आकाश की धारणा करनी चाहिये। उस आकाश में सर्वव्यापी ईश्वर की सत्ता है ऐसा जानकर उस हृदयाकाश में बैठे ईश्वर में मैं ही समाया हुआ हूँ इस प्रकार का ध्यान करना होता है।

हृदयाकाशस्थ ईश्वरचित्त में; अपने चित्त को मिलाकर निश्चिन्त, संकल्पशून्य एवं तृप्त भाव से रहने का अभ्यास करना होता है। मुण्डक उपनिषद् (२/२/४) में यह प्रणाली बताई गई है–

**प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।**
**अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।।**

अर्थात् ब्रह्म या हृदय में विराजमान ईश्वर लक्ष्य है। प्रणव; धनुष के समान है तथा आत्मा का अहंभाव (मैंपना) तीर के समान है। अप्रमत्त या सदा स्मृतियुक्त होकर उस ब्रह्मरूप लक्ष्य में आत्मारूपी तीर को बेधकर तन्मय होना पड़ता है, अर्थात् ओम् पद के द्वारा **'मैं ही हृदयाकाशस्थ ईश्वर में स्थित हूँ'** यह भाव याद करते हुए ध्यान किया जाता है। इस ध्यान का अभ्यास होने पर साधक ध्यान के समय हृदय में आनन्द अनुभव करते हैं। उस समय ईश्वरसंस्थिति-जात आनन्दमय बोध ही 'मैं' हूँ ऐसा स्मरण कर ईश्वर इस ग्रहणतत्त्व में जाना होता है। इसके अतिरिक्त सुस्थिर तथा प्रसन्न चित्त से अपने चित्त को क्लेशशून्य (निरुद्ध) एवं स्वरूपस्थ भाव में अर्थात् ऐश्वरिक भाव में भावित किया जाता है। बहुत दिनों तक सावधानी के साथ निरन्तर तथा सत्कार सहित इसका अभ्यास करने से ईश्वर प्रणिधान का यथार्थ फल **प्रत्यक् चेतनाधिगम** अर्थात् अन्तरात्मा का साक्षात्कार प्राप्त होता है।

प्रणव जप करने के लिये 'ओ–कार' का थोड़े समय तक एवं 'मकार' का दीर्घ तथा एकतान भाव से उच्चारण करना चाहिये। बोलने की अपेक्षा

पूर्णतः मानसिक उच्चारण करना चाहिये। बोलने की अपेक्षा पूर्णतः मानसिक उच्चारण ही श्रेष्ठ है। जिस जप में जिह्वा जरा सी भी नहीं कांपती वही जप उत्तम होता है। प्रिय जन को यादकर हृदय में जो सुख होता है उस सुख को स्थिर रखकर प्रियजन के स्थान पर ईश्वर को रखकर उसी सुख की भावना के साथ ईश्वर का चिन्तन करते रहने से भक्ति भाव शीघ्र प्रकट होता है और बढ़ता है। 'ओ-कार' का उच्चारण करते समय ध्येय भाव का स्मरण करना चाहिये और दीर्घ एकतान 'म-कार' के उच्चारण काल में उस स्मरण किये हुए ध्येय भाव में स्थिति करनी चाहिये। यह अभ्यास कर श्वास-प्रश्वास के साथ प्रणव जप करने पर अधिक फल मिलता है। श्वास को सहज भाव से लेते हुए 'ओ-कार' से ध्येय या ईश्वर का स्मरण करना चाहिये और दीर्घ प्रश्वास के साथ 'म-कार' के मानसिक एकतान उच्चारण से ध्येय भाव में स्थिति करनी चाहिये। इस प्रकार प्रणव जप से चित्त एक ही ध्यान में लगा रहता है।

इस प्रकार भावना-सहित जप करने से चित्त एकाग्रभूमिक होता है। चित्त के एकाग्रभूमिक अर्थात् चित्त के स्वाभाविक रूप से एक ही अवलम्बन में अधिकांश समय तक लगे रहने से सम्प्रज्ञात योग और उसके बाद असम्प्रज्ञातयोग सिद्ध होता है।

प्रणव जप के लिये साधकों का मार्गदर्शन करने के उद्देश्य से श्रीमत स्वामी हरिहरानन्द आरण्य के ये निर्देश दिये गये हैं।

**प्रत्याहार का लक्षण**

**शब्दादि विषयान् पंच मनश्चैवातिचञ्चलम्।**
**चिन्तयेत् आत्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते।।५।।**

ज्ञानेन्द्रियों को शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पांच विषयों से और अत्यन्त चंचल मन को इन सभी विषयों से हटाकर यह सोचना चाहिये कि मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ और मन आत्मा की किरणें हैं इसलिये मुझे अपनी सभी इन्द्रियों को आत्मचिन्तन में लगाना चाहिये। इन्द्रियों और मन को बाह्य सांसारिक विषयों से हटाकर चित्त को अन्तर्मुखी करने का अभ्यास प्रत्याहार कहलाता है। प्रत्याहार से इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

प्रत्याहार के अभ्यास में चित्त की इच्छा ही मुख्य होती है। चित्त को इच्छापूर्वक जिधर रखा जाता है, इन्द्रियाँ उधर ही हो जाती हैं। चित्त को आध्यात्मिक देश में लगाने पर इन्द्रियां उस समय बाह्य विषयों में नहीं लग पातीं। प्रत्याहार साधन के लिये प्रधान उपाय दो हैं—

१. बाह्य सांसारिक विषयों पर ध्यान न देना।

२. मानस भाव से रहना।

आंख, कान आदि इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण का अभ्यास न छोड़ने से प्रत्याहार नहीं होता। योग का अङ्ग प्रत्याहार पूरी तरह अपनी इच्छा के अधीन होता है। योगी जब चाहते हैं कि मैं यह नहीं जानूंगा तो उस ज्ञानेन्द्रिय शक्ति का तत्काल निरोध हो जाता है। इस प्रकार के रोध में प्राणायाम सहायक है। अधिक समय तक प्राणायाम करने से इन्द्रियों में निरोध का भाव बढ़ता है। भावना के द्वारा भी प्रत्याहार हो सकता है। यम नियम आदि के अभ्यास के साथ प्रत्याहार होने पर ही वह श्रेयस्कर होता है। चित्तनिरोध होने पर इन्द्रिय संयम का साधन प्रत्याहार ही योगियों के लिये उपयोगी होता है।

**योग के छह अंग**

**प्रत्याहारः तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।**
**तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते।।६।।**

प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि ये छह योग के अंश होते हैं।

**प्राणायाम का फल**

**यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते धमनात् मलाः।**
**तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणधारणात्।।७।।**

जैसे पर्वतों में मिली धातुओं को आग में तपाने से उनके मैल भस्म हो जाते हैं। उसी प्रकार शरीर की इन्द्रियों से उत्पन्न शरीर के विकार प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं।

**धारणा**

**प्राणायामैः दहेत् दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।**
**प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेन अनीश्वरान् गुणान्।। ८।।**
**किल्बिषं हि क्षयं नीत्वा रुचिरं चैव चिन्तयेत्।।९।।**

प्राणायाम के अभ्यास से शरीर के विकार नष्ट करने चाहियें और धारणा से अन्तःकरण के बुरे विचारों को। प्रत्याहार से संसार के सम्बन्धों को और ध्यान से बुरे विचारों को नष्ट करना चाहिये। मन और अन्तःकरण के बुरे विचार नष्ट करके मन में उठने वाले सभी प्रकार के विचारों या वृत्तियों को और प्राणों को रोकने का प्रयत्न करना चाहिये।

**प्राणायाम के तीन अंग**

**रुचिरं रेचकं चैव वायोः आकर्षणं तथा।**
**प्राणायामास्त्रयः प्रोक्ता रेचक पूरक कुम्भकाः।।१०।।**

रेंचक, पूरक और कुम्भक ये तीन प्राणायाम के अंग होते हैं। पूरक में श्वास भरा जाता है, कुम्भक में भरा हुआ श्वास रोका जाता है और रेचक में अन्दर रुका हुआ श्वास बाहर निकाला जाता है।

**प्राणायाम का लक्षण**

**सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।**
**त्रिः पठेत् आयतप्राणः प्राणायामः स उच्यते।।११।।**

भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् ये सात व्याहृतियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक व्याहृति को ओम् के साथ मन ही मन बोलकर गायत्री मन्त्र का तीन बार मन में उच्चारण करना चाहिये। 'ओम् भूः', 'ओम् भुवः' आदि सातों व्याहृतियाँ बोलकर गायत्री मन्त्र का जप तीन बार करना चाहिये। यह जप प्राणायाम के अभ्यास के समय करना चाहिये।

**रेचक का लक्षण**

**उत्क्षिप्य वायुमाकाशे शून्यं कृत्वा निरात्मकम्।**
**शून्यभावे नियुञ्जीयाद् रेचकस्येति लक्षणम्।।१२।।**

फेफड़ों में भरी हुई वायु को धीरे-धीरे नाक से निकाल कर फेफड़ों के साथ ही मन को शून्य भाव में लगाना चाहिये। पूरक, रेचक आदि काल में मन मानो शून्यवत् या संकल्प रहित रहे, ऐसी भावना करनी चाहिये। ऐसी भावना करने पर ही पूरक, रेचक आदि करने से चित्त स्थिर होता है, अन्यथा नहीं। यह अभ्यास रेचक कहलाता है

## पूरक का लक्षण

**वक्त्रेण उत्पलनालेन तोयम् आकर्षयेत् नरः।**
**एवं वायुः ग्रहीतव्यः पूरकस्य इति लक्षणम्।।१३।।**

जैसे कोई मनुष्य मुँह में कमल-नाल लगाकर पानी खींचता है वैसे ही नाक से वायु को अन्दर खींचना पूरक कहलाता है। पूरक में नाक के दायें-बायें सुरों से अर्थात् पिंगला और इडा नाड़ियों से श्वास भरा जाता है। दायीं या पिंगला नाड़ी से भरा गया श्वास गर्म होता है और बायीं या इडा नाड़ी से भरा गया श्वास शीतल होता है। पिंगला नाड़ी नाक के दायें सुर में और इडा नाड़ी नाक के बायें सुर में हैं। पिंगला को सूर्य नाड़ी भी कहते हैं क्योंकि इससे उष्ण श्वास आता है और इडा को चन्द्र नाड़ी कहते हैं क्योंकि इससे शीतल श्वास आता है।

## कुम्भक का लक्षण

**न उच्छ्वसेत् न चैव निश्वसेत् नैव गात्राणि चालयेत्।**
**एवं भावं नियुञ्जीयात् कुम्भकस्येति लक्षणम्।।१४।।**

कुम्भक प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास बन्द रहता है और शरीर का कोई अंग नहीं हिलता। इस प्रकार शरीर और प्राण को स्थिर रखकर कुम्भक किया जाता है।

## प्रशान्त का लक्षण

**अन्धवत् पश्य रूपाणि शब्दं बधिरवत् शृणु।**
**काष्ठवत् पश्य वै देहं प्रशान्तस्येति लक्षणम्।।१५।।**

कुम्भक का अभ्यास करते समय अंधे बहरे व्यक्ति की तरह रूप और शब्द को देखना-सुनना चाहिये तथा शरीर को लकड़ी की तरह जड़ या निश्चल रखना चाहिये। ऐसा अभ्यास करने से मन शान्त हो जाता है।

## धारणा का लक्षण

**मनः संकल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान्।**
**धारयित्वा तथाऽऽत्मानं धारणा परिकीर्त्तिता।।१६।।**

बुद्धिमान योगी यह जान कर कि मन में निरन्तर संकल्प-विकल्प या तरह-तरह के विचार उठते रहते हैं इसलिये परमात्मा का ध्यान करने के लिए इन सभी विचारों को मन में नहीं उठने देना चाहिये। यह निश्चय कर जब योगी अपने मन को विचारों से शून्य करके परमात्मा के ध्यान में मन को लगाते हैं और अपने मन में परमात्मा का ध्यान करते रहते हैं तो उनका यह प्रयत्न धारणा कहलाता है।

नाभि, हृदय, नासिकाग्र, जिह्वाग्र और सहस्रार में अथवा किसी बाह्य देश या वस्तु में मन की वृत्तियों या मन में उठने वाली विचार तरंगों को लगाना धारणा कहलाती है। बाहर के शब्द आदि अथवा मूर्त्ति आदि बाह्य देश हैं। जिस चित्तबन्ध में केवल उसी देश का ज्ञान होता रहता है, जिसमें चित्त लगाया गया है और प्रत्याहार के अभ्यास से जब संयमित आंख, कान आदि इन्द्रियां रूप, शब्द आदि अपने विषयों का ग्रहण नहीं करतीं तब इस प्रकार की धारणा, समाधि के मार्ग की धारणा होती है।

प्राणायाम आदि में भी धारणा का अभ्यास आवश्यक है, परन्तु वह मुख्य धारणा नहीं होती। प्राणायाम आदि में जिसका अभ्यास करना होता है उसे भावना कहना उचित है। उस भावना के बढ़ने पर धारणा और ध्यान की स्थिति आती है।

प्राचीन काल में हृदय-पुण्डरीक ही धारणा का प्रधान स्थान माना जाता था। उस स्थान से ऊपर की ओर जाने वाली सुषुम्ना की जो ज्योति है वह भी धारणा का विषय थी। बाद में षट्चक्र और द्वादश चक्र की धारणा प्रचलित हुई।

धारणा प्रधानरूप से दो प्रकार की होती है:–

**तत्त्वज्ञानमय धारणा तथा वैषयिक धारणा।**

**तत्त्वज्ञानमय धारणा** में मन को इन्द्रियों और उनके विषयों से हटाकर ज्ञानस्वरूप आत्मा में स्थिति पाने की चेष्टा करनी पड़ती है। **वैषयिक धारणाओं** में शब्द तथा ज्योति की धारणा प्रधान होती है। इनमें हृदय की ज्योति के सहारे बुद्धितत्त्व की धारणा प्रधान है। शब्द धारणाओं में अनाहत नाद की धारणा प्रधान है। इसका अभ्यास नि:शब्द स्थान पर करना चाहिये। नि:शब्द स्थान में चित्त स्थिर करने से, विशेषकर कुछ प्राणायाम और षण्मुखीमुद्रा का अभ्यास करने से, कानों में बादलों की गरज, शंख ध्वनि, घण्टे बजने की ध्वनि आदि सुनाई देने लगते हैं। यही अनाहत नाद होते हैं। ये नाद कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा होते हैं।

मन में धारण करने की शक्ति, स्मरण शक्ति या चित्त की स्थिरता **'चित्तस्य निश्चली भाव:'** धारणा कहलाती है। धारणा के समय मन में अन्य वृत्तियां या विचार भी रह-रह कर उठते रहते हैं।

## तर्क का लक्षण

**आगमस्य अविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते।**

श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रों में प्रस्तुत विचारों पर चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करना तर्क कहलाता है।

## समाधि का लक्षण

**समं मन्येत यं लब्ध्वा स समाधि: प्रकीर्तित:।।१७।।**

मन में उठने वाले विचार जब नष्ट हो जाते हैं और मन जीवात्मा के साथ परमात्मा में मिल जाता है वह समाधि होती है। जैसे नमक पानी में घुल जाता है, वैसे ही योगाभ्यास के द्वारा मन जब आत्मा में लीन हो जाता है उस स्थिति को समाधि कहते हैं।

चित्त की एकाग्रता या स्थिरता की अन्तिम सीमा समाधि अवस्था होती है। अपने को भूले हुए की तरह इच्छित विषय पर चित्त स्थिर रखना।

मानसिक एकाग्रता के अभ्यास में ध्यान से अगली अवस्था समाधि होती है। विक्षेपों से मन को हटाकर किसी विषय पर मन को एकाग्र करना समाधि कहलाता है। जीवात्मा और परमात्मा की समता अवस्था अथवा जीवात्मा-परमात्मा का योग या मिलन समाधि कहलाता है। इस अवस्था में मन के सारे संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं।

**महर्षि पतञ्जलि के अनुसार**

**तदेव अर्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।।**

पा०यो०३/३

अर्थात् ध्यान की अवस्था में जब ध्येय (जिसका ध्यान किया जा रहा है), अर्थमात्र भासता रहे और ध्यान; स्वरूपशून्य हो जाय; मन की यह अवस्था समाधि कहलाती है। ध्यान की अवस्था में ध्येय की वृत्ति का प्रवाह लगातार समानरूप से चित्त में बना रहता है कि मैं इस वस्तु या स्थान (ध्येय) पर ध्यान लगा रहा हूँ। अर्थात् मेरे चित्त में ध्याता (ध्यान करने वाले मेरा), ध्येय और ध्यान का भास होता रहता है। चित्त में ध्याता और ध्यान की वृत्ति बनी रहने से ध्येय वस्तु का ज्ञान पूरी तरह नहीं हो पाता। किन्तु ध्यान की अवस्था बढ़ने पर चित्त में ध्येय का स्वरूप और अधिक स्पष्ट होने लगता है तथा ध्येय वस्तु का स्पष्ट ज्ञान कराने के कारण जब ध्याता और ध्यान; स्वरूप से अर्थात् अपने पन से रहित (शून्य) भासने लगे और ध्येय का स्वरूप ध्याता और ध्यान के साथ मिलकर या अभिन्न होकर ध्येयाकार वृत्ति में पूरी तरह से भासने लगे तब ध्यान की यह अवस्था समाधि कहलाती है।

ध्यान के चरम उत्कर्ष का नाम समाधि है, जो चित्त स्थिरता की सर्वोत्तम अवस्था है। ध्यान करते-करते जब हम अपने को भूल जाते हैं और ध्येय पदार्थ का ही ज्ञान होता रहता है तथा ध्येय वस्तु से मैं अलग हूँ यह पता नहीं चलता; इस प्रकार ध्येय वस्तु पर चित्त का लगा रहना ही समाधि है।

**समाधिसिद्धि के उपाय**

**भूमौ दर्भासने रम्ये सर्वदोषविवर्जिते।**
**कृत्वामनोमयीमृक्षां जप्त्वा वै रथमण्डले।।१८।।**

**पद्मकं स्वस्तिकं वाऽपि भद्रासनमथापि वा।**
**बद्ध्वा योगासनं सम्यक् उत्तराभिमुखःस्थितः।।१९।।**

साफ-सुथरी और समतल भूमि को यज्ञादि से शुद्ध करके और कीड़े-मकौड़ों को हटाकर सुन्दर कुशासन पर बैठकर पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन में से कोई भी योगासन लगाकर उत्तर की ओर मुँह करके बैठना चाहिये। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् इन सात व्याहृतियों के साथ यथाशक्ति गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिये।

**नासिकापुटम् अंगुल्या पिधाय एकेन मारुतम्।**
**आकृष्य धारयेद् ओम् शब्दमेव विचिन्तयेत्।।२०।।**

**ओम् इत्येकाक्षरं ब्रह्म ओम् इत्येतेन् रेचयेत्।**
**दिव्यमन्त्रेण बहुधा कुर्याद् आमलमुक्तये।।२१।।**

एक अंगुलि से नाक का एक सुर बन्द करके दूसरे सुर से प्राणवायु फेफड़ों में भरनी चाहिये। प्राणवायु को रोककर ओंकार का जाप करना चाहिये। जब श्वास न रोका जा सके तब ओम् का जप करते हुए श्वास को बाहर निकाल देना चाहिये। इस प्रकार मन और शरीर के सभी बुरे विचारों और अशुद्धियों के नष्ट होने तक प्राणायाम के साथ प्रणव जप निरन्तर करते रहना चाहिये।

**पश्चात् ध्यायीत पूर्वोक्त क्रमशो मन्त्रविद् बुधः।**
**स्थूलादि स्थूलसूक्ष्मं च नाभेःऊर्ध्वमुपक्रमः।।२२।।**

**तिर्यगूर्ध्व मधोदृष्टिं विहाय च महामतिः।**
**स्थिरस्थायी विनिष्कम्पः सदा योगं समभ्यसेत्।।२३।।**

इसके बाद मन्त्र का रहस्य जानने वाले समझदार व्यक्ति को पहिले बतायी गई विधि के अनुसार प्रणव जप करना चाहिये और स्थूल जगत् से सूक्ष्म जगत् तक का ध्यान नाभि से ऊपर अनाहत चक्र (हृदय), आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य), सहस्रार आदि में करना चाहिये। बुद्धिमान योगाभ्यासी को ऊपर, नीचे, या दायें-बायें न देखकर आसन पर बिना हिले-जुले बैठकर निश्चल मन से ध्यान लगा कर योगाभ्यास करना चाहिये।

**नालमात्राविनिष्कम्पो धारणायोजनं तथा।**
**द्वादशमात्रो योगस्तु कालतो नियमः स्मृतः।।२४।।**

**अघोषमव्यञ्जनमस्वरं च यत्तालुकण्ठोष्ठमनासिकं च यत्।**
**अरेफजातमुभयोष्म वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कथंचित्।।२५।।**

कुम्भक प्राणायाम में श्वास को रोका जाता है। श्वास को कुछ समय तक ही रोका जा सकता है, इसलिये सात, आठ या बारह मात्राओं तक श्वास रोकने का नियम बताया गया है। मात्रा का अर्थ स्वस्थ मनुष्य के श्वास-प्रश्वास की अवधि है। यदि स्वस्थ व्यक्ति एक मिनट में १५ बार श्वास-प्रश्वास करता है तो एक श्वास-प्रश्वास की मात्रा चार सेकेण्ड होगी। हठयोग के ग्रन्थों में कुम्भक की अवधि निश्चित करने के लिये ताल का भी उल्लेख मिलता है। घुटने पर हाथ एक बार फिरा कर चुटकी बजाने में जितना समय लगता है वह एक ताल होती है। प्राणायाम करते हुए शरीर को तनिक भी हिलाना नहीं चाहिये।

वह अक्षर पद क्या है? वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवें तथा ह, य, र, ल, व वर्ण घोष कहलाते हैं। क, ख, ग आदि व्यंजन कहलाते हैं। अ, इ, उ, आदि स्वर होते हैं, य, ल, व, ये वर्ण अन्तःस्थ या अरेफ होते हैं। स्वर, तालु, कण्ठ, ओष्ठ और नासिका से न बोले जाने वर्ण, तथा श, ष, स, र, ह, ऊष्म वर्ण हैं। वह अक्षर पद घोष, व्यञ्जन, स्वर, अन्तःस्थ और ऊष्म आदि सभी वर्णों से अतीत है। अक्षर पद कभी भी नहीं क्षरता अर्थात् नष्ट नहीं होता। योगियों को इसी अक्षर पद का साक्षात् करना चाहिये।

**येनासौ पश्यते मार्गं प्राणस्तेनाभिगच्छति।**
**अतस्तमभ्यसेन्नित्यं यन्मार्गगमनाय वै।।२६।।**

योगी जिस मार्ग को अपने लक्ष्य पर पहुँचने का रास्ता मानता है उसका प्राण-वायु भी उसी मार्ग पर चलता है। इसलिये योगी को अपने मार्ग पर प्रमाद रहित होकर चलते रहना चाहिये।

## आत्मदर्शन के सात द्वार

**हृद्द्वारं वायुद्वारं च मूर्ध्नद्वारमथापरम्।**
**मोक्षद्वारं बिलं चैव सुषिरं मण्डलं विदुः।।२७।।**

हृदयद्वार, वायुद्वार, मूर्धद्वार, मोक्षद्वार ये चार द्वार हैं। मोक्षद्वार, बिल,

सुषिर तथा मण्डल इन तीन प्रकारों से खुला है। ये सात द्वार अपने आत्मा के दर्शन के मार्ग बताये गये हैं। उपनिषद् ब्रह्मयोगी की टीका के अनुसार हृदयद्वार; विराट् को प्राप्त कराने वाला, वायुद्वार; सूत्रात्मक परमात्मा को, मूर्धद्वार (सहस्रारद्वार) बीजेश्वर को, मोक्षद्वार अर्धमात्रात्मक प्रत्यग् अभिन्न ब्रह्म को तथा मोक्षद्वार का बिलद्वार स्थूलांशात्मक है, वह तुर्यवैराज को, मोक्षद्वार का सुषिर द्वार सूक्ष्मांशात्मक है, वह तुर्यसूत्र को, मोक्षद्वार का मण्डल द्वार बीजांशात्मक है, वह तुर्यबीज को प्राप्त कराने वाला द्वार है। श्लोक के 'च' शब्द से पर अर्थात् कैवल्यद्वार अभिप्रेत है। इस द्वार से निष्प्रतियोगिक ब्रह्ममात्र की प्राप्ति होती है। ये सात द्वार अपनी आत्मा के द्वार हैं जिन्हें ब्रह्मविद् वरीय श्रेणी के योगी जानते हैं।

## सात ज्ञान भूमियां

योग की सात ज्ञान भूमियां हैं जो शु**भेच्छा**, वि**चारणा**, तनु**मानसी**, सत्**वापत्ति**, असं**सक्ति**, परार्थ**भाविनी** तथा तु**र्यगा** हैं। **ब्रह्मविद् वरीयान्** योगी ज्ञान की छठी भूमि **परार्थभाविनी** में पहुँचा हुआ होता है। इस स्थिति को प्राप्त योगी किसी दूसरे व्यक्ति के जगाने पर ही समाधि से बाहर आ पाता है।

**शुभेच्छा, विचारणा** और **तनुमानसी** ये तीन ज्ञानभूमियाँ 'साधन भूमि' कहलाती हैं। शेष चार **फलभूमियां** हैं। दे० योगशब्दकोश।

## भय आदि का त्याग

**भयं क्रोधमथालस्यं अतिस्वप्न अतिजागरम्।**
**अत्याहारम् अनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत्।।२८।।**

योगी को भय, क्रोध, आलस्य, बहुत सोना, बहुत जागना, बहुत भोजन करना या बिल्कुल भोजन न करना, इन सात आदतों को सदा के लिये छोड़ देना चाहिये।

## योगाभ्यास का फल

**अनेन विधिना सम्यङ् नित्यमभ्यसेत् क्रमात्।**
**स्वयमुत्पद्यते ज्ञानं त्रिभिर्मासैः न संशयः।।२९।।**

**चतुर्भि पश्यते देवान् पञ्चभिः वितत क्रमान्।**
**इच्छयाऽऽप्नोति कैवल्यं षष्ठे मासि न संशयः।।३०।।**

इस प्रकार योगाभ्यास नित्यप्रति करने से तीन मास बाद स्वयं ही ब्रह्मज्ञान होने लगता है। चौथे मास में देवताओं के दर्शन होने लगते हैं। पांचवें महीने में विराट आदि ब्रह्म के स्वरूप दिखते लगते हैं। योगाभ्यास के छठे मास में अपनी इच्छा से कैवल्य निस्सन्देह प्राप्त हो जाता है।

## योग के चिन्तनीय विषय

**पार्थिवः पञ्चमात्रस्तु चतुर्मात्रस्तु वारुणः।**
**आग्नेयस्तु त्रिमात्रोऽसौ वायव्यस्तु द्विमात्रकः।।३१।।**
**एकमात्रस्तथाऽऽकाशो हि अमात्रं तु विचिन्तयेत्।**

पंच महाभूतों पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश की सूक्ष्म पंच तन्मात्राओं में से क्रमशः एक-एक मात्रा कम होती जाती है। पृथिवी में पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच महाभूतों की पांचों तन्मात्राएं अर्थात् सूक्ष्म अंश हैं। जल में पृथिवी तन्मात्रा के अतिरिक्त शेष चार तन्मात्राएं होती हैं। अग्नि या तेज में जल और पृथिवी के अतिरिक्त तीन तन्मात्राएं होती है। वायु में पृथिवी, जल, और तेज इन तीन महाभूतों की तीन तन्मात्राओं के अतिरिक्त वायु और आकाश की दो तन्मात्राएं होती हैं और आकाश में केवल अपनी ही एकमात्र आकाश तन्मात्रा होती है।

किन्तु ब्रह्म पांच महाभूतों से बनी प्रकृति से अलग है, इसलिये उसमें पांच महाभूतों की एक भी मात्रा नहीं होती। ब्रह्म मात्रारहित है। इसी मात्रा शून्य सूक्ष्म ब्रह्म का ध्यान और चिन्तन योगी को करना चाहिये।

## चिन्तन की विधि

**संधिं कृत्वा तु मनसा चिन्तयेदात्मनाऽऽत्मनि।।३२।।**
**त्रिंशत्पर्वाङ्गुलः प्राणो यत्र प्राणैः प्रतिष्ठितः।**
**एष प्राण इति ख्यातो बाह्य प्राणस्य गोचरः।।३३।।**

हमारी नाक से प्राणवायु प्रश्वास के रूप में तीस अंगुलियों की दूरी तक बाहर जाता है। प्राणवायु का मुख्य स्थान हृदय है। प्राणवायु हमारी आत्मा और वाक्, चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों या प्राणेन्द्रियों के साथ हृदयाकाश में प्रतिष्ठित है। इस बाह्य प्राण को हम अपनी त्वचा आदि से अनुभव कर सकते हैं। हृदयाकाश में ही प्रत्यक् चेतना भी विराजमान है। निरन्तर जप और ध्यान आदि का अभ्यास करने से हमारी बुद्धि ईश्वराभिमुखी होती है। इस बुद्धि या चेतना का नाम प्रत्यक् चेतना है। इस प्रत्यक् चेतना के आने पर योग साधना के आलस्य आदि विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

जब हमारा प्राणवायु इन्द्रियों के साथ प्रत्यक् चेतना में विलीन हो जाता है तब ब्रह्माकारमय बने मन के साथ प्रत्यक् चेतना को मिलाकर ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिये।

**श्वास का प्रमाण**

**अशीतिश्च शतं चैव सहस्राणि त्रयोदश।**
**लक्षश्चैकोविनिश्वास अहोरात्रप्रमाणतः।।३४।।**

मनुष्य छह दिन-रात में १,१६०१३ बार श्वास-प्रश्वास लेता है। इस प्रकार वह एक दिन-रात में १९ ३३५ १/२ बार श्वास-प्रश्वास लेता है। कुछ शास्त्रों के अनुसार मनुष्य एक दिन-रात में २०,१०० बार श्वास प्रश्वास लेता है। आधुनिक समय की इकाई मिनट मानकर मनुष्य एक मिनट में १२-१३ बार श्वास-प्रश्वास लेता है। इस हिसाब से मनुष्य दिन रात में १८ हजार सात सौ बीस श्वास-प्रश्वास लेता है। आजकल मनुष्य व्यस्त जीवन और भागदौड़ में फंसा होने के कारण अधिक बार श्वास-प्रश्वास ले रहा है, इसलिये उसकी आयु घटती जा रही है। जो मनुष्य नियमित रूप से प्राणायाम का जितना अभ्यास करते रहेंगे उनकी आयु भी उतनी ही बढ़ती जायेगी।

अमृतनादोपनिषद् में और अन्य शास्त्रों में श्वास-प्रश्वास की संख्या का जो भेद है उसका कारण सम्भवतः बचपन और युवावस्था में श्वास-प्रश्वास की संख्या अधिक और कम होने के कारण है।

## प्राण आदि वायुओं के स्थान

**प्राण आद्यो हृदि स्थाने अपानस्तु पुनर्गुदि।**
**समानो नाभि देशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः।।३५।।**
**व्यानः सर्वेषु चांगेषु व्याप्य तिष्ठति सर्वदा।**

प्राण वायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, समान वायु नाभि में, उदान वायु कण्ठ में रहती है। व्यान वायु शरीर के सभी अंगों में व्याप्त रहती है।

## प्राण आदि के रंग

**अथ वर्णास्तु पञ्चानां प्राणादीनामनुक्रमात्।।३६।।**
**रक्तवर्णो मणिप्रख्यः प्राणवायुः प्रकीर्तितः।**
**अपानस्तस्य मध्ये तु इन्द्रगोपसमप्रभः।।३७।।**
**समानस्तु द्वयोर्मध्ये गोक्षीरधवलप्रभः।**
**आपाण्डर उदानश्च व्यानो हि अर्चिःसमप्रभः।।३८।।**

प्राण, अपान आदि पांच वायुओं के रंग क्रमशः इस प्रकार होते हैं— प्राणवायु का रंग लाल मणि के समान और अपान वायु का रंग वीरबहूटी के हल्के गुलाबी रंग जैसा होता है। प्राण और अपान के बीच में स्थित समान वायु का रंग गाय के दूध जैसा, उदान का रंग हल्का पीला और व्यान का रंग अग्नि की लपट जैसा चमकीला होता है।

## योगाभ्यास का उत्कृष्ट फल

**यस्येदं मण्डलं भित्वा मारुतो याति मूर्धनि।**
**यत्र यत्र म्रियेत् वापि न स भूयोऽभिजायते न स भूयोऽभिजायते।।३९।।**

मुक्ति चाहने वाले जिस योगी के शरीर का प्राण वायु जब मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा इन छह चक्रों को भेदकर सिर में स्थित सहस्त्रार में पहुँच जाता है। वहाँ पर वह ज्ञान का प्रसाद प्राप्त करके तथा परवैराग्य के साथ पुरुषतत्त्व को प्राप्त करके लोकातीत परम पद को प्राप्त होता है। ऐसा योगी चाहे तीर्थस्थान में या चाण्डाल के घर में अपना देह क्यों न छोड़े, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

## षट्चक्र और सुषुम्ना

रीढ़ के बीच में और रीढ़ के ऊपर सुषुम्ना में गुंथे हुए उपरोक्त छह चक्र हैं। पातंजल शास्त्र सम्मत प्राणायाम का अभ्यास करने से योगाभ्यासी को अपने शरीर के अन्दर जिन क्रियाओं का बोध तथा अनुभव होता है उनसे चक्रों, नाड़ियों और कुण्डलिनी की सत्ता का बोध उसे होता है।

श्रुति के अनुसार हृदय से ऊपर की ओर मस्तिष्क में जाने वाली नाड़ी सुषुम्ना है। इसके दोनों ओर इडा और पिंगला नाड़ियाँ हैं। शरीर की चीर-फाड़ करके इन नाड़ियों को देख पाने की सम्भावना नहीं है। मस्तिष्क या सहस्रार से जो स्नायुएं रीढ़ के बीच से और बाहर से गुदा या मल द्वार तक फैली हुई हैं और जिनके द्वारा बोध और चेष्टाएं होती हैं वे सुषुम्ना, इडा तथा पिंगला हैं। कुण्डलिनी शक्ति नाम इसलिये हैं क्योंकि सोई हुई कुण्डलिनी मूलाधार में साढ़े तीन पेंच की कुण्डली मार कर रहती है। उसे जगाकर सहस्रार में ले जाना और बिन्दुरूप शिव के साथ मिलाना ही कुण्डलिनी योग है। कुण्डलिनी को मस्तिष्क में ले जाने की प्रक्रिया धारणा तथा प्राणायाम द्वारा की जाती है। उसके दो प्रधान उपाय हैं– हठयोग और लययोग। हठयोग में मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध आदि द्वारा पेशियों और स्नायु का संकोच करके कुण्डलिनी को जगाना होता है।

लययोग में कुण्डलिनी-जागरण; नाद-धारणा द्वारा किया जाता है। नाद दो प्रकार के होते हैं– आहत और अनाहत। ये दोनों नाद कुण्डलिनी शक्ति द्वारा होते हैं। वाक्यरूप आहत नाद चार प्रकार का है– परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। वाक्योच्चारण में पहले मूलाधार या गुह्य प्रदेश में परा नामक सूक्ष्म चेष्टा होती है। श्वास तथा प्रश्वास में गुह्यप्रदेश स्वभावतः सिकुड़ता और फैलता है अतः यह परा-अवस्था काल्पनिक नहीं है। परा अवस्था शब्दोच्चारण की आधारभूत क्रिया है। उसके बाद स्वाधिष्ठान चक्र में पश्यन्तीरूप (उदरसंकोचन रूप) क्रिया होती है। फिर अनाहत या वक्षःस्थल में (फेफड़ों का संकोचन) जो क्रिया होती है वह मध्यमा है। इसके बाद कण्ठ आदि में जो क्रिया होती हैं वह वैखरी या बोला जाने वाला वाक्य होता है। ये सभी कुण्डलिनी के काम हैं।

इस प्रकार वाक्य के साथ सम्बन्ध रहने के कारण 'हुम्' शब्द द्वारा पहिले कुण्डलिनी को जगाना चाहिये। अनाहत नाद उठने पर उसके द्वारा यह साधा जाता है। इसका साधन-संकेत इस प्रकार है– पीठ के अन्दर नीचे से ऊपर तक एक धारा उठ रही है प्रयत्न विशेष द्वारा इस प्रकार की अनुभूति करनी चाहिये। वह 'हूम्-हूम्' अथवा अन्य प्रकार के नाद के साथ अनुभव होती है।

अनाहत नाद दो प्रकार का है– एक तो कान में सुना जाता है। कान में अनाहत नाद षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास द्वारा सरलता से सुना जाता है। शरीर की नाड़ी शुद्धि जितनी अधिक होगी और प्राणायाम का अभ्यास जितना अधिक होगा उतनी ही सरलता से स्वाभाविक रूप में अनाहत नाद कान में सुनाई देने लगता है।

दूसरी प्रकार का अनाहत नाद सारे शरीर में ऊपर जाती हुई धारा के रूप में अनुभव होता है। इस द्वितीय अनाहत नाद के द्वारा ही कुण्डलिनी को दीर्घकाल के अभ्यास से मस्तक में ले जाना होता है और वह वहाँ बिन्दुरूप में परिणत होता है। बाल के अगले सिरे के एक करोड़ भाग का एक हिस्सा सूक्ष्मतेज या ज्ञानरूप अंश ही बिन्दु कहलाता है। नाद को शक्ति तथा बिन्दु को शिव कहकर तान्त्रिक लोग नाद की बिन्दुत्व प्राप्ति को शिव और शक्ति का योग कहते हैं।

**।। ओम् सहनाववतु इति शान्तिः।।**

**।।अमृतनादोपनिषद्समाप्त।।**

४

# क्षुरिकोपनिषद्

**ओम् सहनाववतु इति शान्तिः!**

क्षुरिका उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। तत्त्वज्ञान के विघ्नों को दूर करने के लिये योगशास्त्र से सम्बद्ध क्षुरिका उपनिषद् है।

**ओ३म् क्षुरिकां सम्प्रवक्ष्यामि धारणां योगसिद्धये।**
**यां प्राप्य न पुनर्जन्म योगयुक्तस्य जायते।।१।।**
**वेदतत्त्वार्थ विहितं यथोक्तं हि स्वयम्भुवा।**

साधक को ब्रह्म-चिन्तन की धारणा कैसे करनी चाहिये इसका वर्णन उपनिषद् में किया गया है। योगसिद्ध योगी का पुनर्जन्म नहीं होता।

स्वयम्भू परमेश्वर ने योगशास्त्र का उपदेश दिया है। यह उपदेश वेदज्ञान के अनुकूल है।

### आसन और प्राणायाम

**निःशब्दं देशमास्थाय तत्रासनमवस्थितः।।२।।**
**कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य मनो हृदि निरुध्य च।**
**मात्राद्वादश योगेन प्रणवेन शनैः शनैः।।३।।**
**पूरयेत् सर्वमात्मानं सर्वद्वारं निरुध्य च।**
**उरोमुखकटिग्रीवं किंचिद् हृदयमुन्नतम्।।४।।**
**प्राणान् संधारयेत् तस्मिन् नासाभ्यन्तरचारिणः।**
**भूत्वा तत्रायतप्राणः शनैरुच्छ्वासमुत्सृजेत्।।५।।**

साधक को ऐसे एकान्त स्थान में बैठकर प्राणायाम का अभ्यास करना

चाहिये जहाँ पूरी तरह शान्ति हो। प्राणायाम का अभ्यास करने के लिये पद्मासन या सिद्धासन लगाकर बैठना चाहिये। सिद्धासन पर बैठना प्रारम्भ में कठिन होता है, इसलिये पद्मासन में बैठने का अभ्यास करना चाहिये। जो साधक पद्मासन में भी न बैठ सकें, वे वज्रासन या सुखासन में भी बैठकर प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं। इन चारों आसनों में बैठकर अपनी कमर, गर्दन, मुख और छाती को सीधा रखना चाहिये। अपनी आंख, कान, नाक आदि ज्ञानेन्द्रियों को और मन को वश में करके हृदय में ओ३म् का उच्चारण करते हुए धीरे-धीरे श्वास भरना चाहिये। साधक को अपनी ज्ञानेन्द्रियों को उसी प्रकार वश में करने का अभ्यास करना चाहिये जैसे कछुआ अपने हाथ-पैर और गर्दन आदि सभी अंगों को अन्दर समेट लेता है।

प्राणायाम की तीन अवस्थाएँ होती हैं–

पूरक अर्थात् श्वास भरना; कुम्भक-श्वास रोकना और रेचक-श्वास निकालना। पूरक, कुम्भक और रेचक के बीच २:८:४ का अनुपात होना चाहिये; अर्थात् यदि दो बार प्रणव का मन ही मन उच्चारण करके श्वास भरा जाता है अर्थात् पूरक किया जाता है तो आठ बार प्रणव-जप करते हुए श्वास को रोकना या कुम्भक करना चाहिये। इसके बाद चार बार प्रणव जप या ओ३म् का मन ही मन उच्चारण करते हुए श्वास निकालना या रेचक करना चाहिये। झटके से श्वास नहीं निकालना चाहिये। नाक के बायें स्वर से श्वास भरकर अर्थात् इडा नाड़ी से श्वास भरकर और श्वास रोककर दाँये स्वर से श्वास निकालना चाहिये। फिर दायें स्वर से श्वास भरकर और रोककर बायें स्वर इडा नाड़ी से रेचन या श्वास निकालना चाहिये। इस प्रकार बार-बार प्राणायाम करना चाहिये। यह प्राणायाम नाड़ीशोधन प्राणायाम कहलाता है।

**मात्रा**

**जानूप्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम्।**
**अङ्गुलीस्फोटनं कुर्यात् सा मात्रा परिकीर्त्तिता।।**

अपने घुटने पर हथेली घुमाकर चुटकी बजाने में जितना समय लगता

है वह एक मात्रा समय माना गया है। घुटने पर हथेली बहुत जल्दी या बहुत धीरे नहीं घुमानी चाहिये।

प्राणायाम के लिये श्वास भरते समय शरीर के वायु निकलने के सभी रास्ते बन्द करने चाहियें अर्थात् मुख और गुदा बन्द रखने चाहिये। गुदा बन्द रखने के लिये मूल बन्ध लगाना चाहिये।

गुदा को ऊपर की ओर खींचकर मूल बन्ध लगाया जाता है। प्राणायाम का अभ्यास हो जाने पर मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध और जालन्धर बन्ध इन तीन बन्ध सहित प्राणायाम का अभ्यास करना लाभदायक होता है।

चौथे श्लोक के **'उरोमुखकटिग्रीवं किंचिद् हृदयमुन्नतम्'** का अभिप्राय है कि साधक को अपनी रीढ़ की हड्डी, गर्दन और कमर सीधी रखनी चाहिये तथा छाती ऊपर उठी रहनी चाहिये। गीता के **'समंकायशिरोग्रीवं धारयन् अचलं स्थिरम्'**।।६/१३।। का भी यही भाव है।

**प्रत्याहार का क्रम**

**स्थिरमात्मदृढंकृत्वा अङ्गुष्ठेन समाहितः।**
**द्वे गुल्फे तु प्रकुर्वीत जङ्घे चैव त्रयस्त्रयः।।६।।**
**द्वे जानुनी तथोरूद्वे गुदे शिश्नं त्रयस्त्रयः।**
**वायोरायतनं तत्र नाभिदेशे समाश्रयेत्।।७।।**
**तत्र नाडी सुषुम्ना तु नाडिभिर्दशभिर्वृता।**
**तत्र रक्ता च पीता च कृष्णा ताम्रा विलोहिता।।८।।**
**अतिसूक्ष्मां च तन्वीं च शुक्लां नाडीं समाश्रयेत्।**
**तत्र सञ्चारयेत् प्राणान् ऊर्णनाभीव तन्तुना।।९।।**
**ततो रक्तोत्पलाभासं हृदयायतनं महत्।**
**दहरं पुण्डरीकं तत् वेदान्तेषु निगद्यते।।१०।।**
**तद् भित्वा कण्ठमायाति तन्नाडीं पूरयेदिति।**

प्राणायाम का अभ्यास भली-भांति हो जाने पर योगी को पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर केवल कुम्भक

प्राणायाम करना चाहिये। श्वास रोकने के लिये अंगूठे से नाक का एक स्वर और कनिष्ठिका तथा अनामिका से अर्थात् हाथ की सबसे छोटी अंगुली और उसके साथ वाली अंगुली इन दोनों अंगुलियों से नाक का दूसरा स्वर बन्द कर लेना चाहिये। अब अपनी दृष्टि, मन और प्राण को हृदय में एकाग्र करके पैरों की दोनों एड़ियों और अंगुलियों में प्राणवायु की धारणा करनी चाहिये। मन में ऐसी भावना करनी चाहिये कि मेरा प्राणवायु एड़ियों और अंगुलियों में है।

यह अभ्यास दो बार करना चाहिये। फिर यही अभ्यास जांघों, घुटनों, गुदा और शिश्न में तीन-तीन बार बारी-बारी से करना चाहिये। इसके बाद घुटनों, गुदा के पास मूलाधार-चक्र और शिश्न के पास स्वाधिष्ठान चक्र में प्राण रोकने की भावना करके दृष्टि, मन और प्राण को हृदय में एकाग्र करना चाहिये। यह अभ्यास भी तीन बार करना चाहिये। गुदा, शिश्न और इनके पास वाले मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान चक्रों का आश्रय स्थल नाभि है। नाभि में ही मणिपूर चक्र और कन्द अर्थात् इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि अनेक सूक्ष्म नाड़ियों का गुच्छा भी है। इसलिये नाभि हमारे शरीर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाभि में स्थित मणिपूर चक्र में दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र करके प्रणव जप या ओम् का उच्चारण करना चाहिये। नाभि के कन्द में एकत्र सूक्ष्म नाड़ियां इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, वरुणा आदि हैं। लाल, पीली, सफेद, काली, तांबे के रंग की ये दस प्रधान नाड़ियां हैं। इन दस नाड़ियों से घिरी हुई सुषुम्ना नाड़ी है जो बहुत ही सूक्ष्म और सफेद रंग की है। योगी को सुषुम्ना नाड़ी पर दृष्टि, मन, प्राण एकाग्र करना चाहिये। यह अभ्यास दृढ़ हो जाने पर उसे सुषुम्ना के सहारे हृदय की ओर उसी प्रकार बढ़ना चाहिये जैसे मकड़ी जाले के सहारे ऊपर नीचे आती जाती है। हमारा हृदय, आत्मा का निवास है और लाल कमल जैसे रंग का है। शास्त्रों में हृदय को **'दहरं पुण्डरीकं वेश्म'** अर्थात् आत्मा का निवास-स्थान बताया गया है। हृदय में दृष्टि, मन और प्राण को एकाग्र कर प्रणव जप करना चाहिये। यह अभ्यास दृढ़ हो जाने पर योगी को हृदय कमल से

आगे कण्ठ में विशुद्ध चक्र पार करके माथे में भ्रू मध्य में स्थित आज्ञाचक्र पर दृष्टि, मन, प्राण एकाग्र रखने का अभ्यास करना चाहिये। इसके बाद सिर के अगले भाग में तालु के ऊपर सहस्रार चक्र में दृष्टि मन प्राण को एकाग्र करना चाहिये। प्रत्याहार या इन्द्रिय संयम का यह क्रम है।

**धारणा, ध्यान, समाधि**

**मनसस्तु परं गुह्यं सुतीक्ष्णं बुद्धिनिर्मलम्।।११।।**
**पादस्योपरि यन्मर्म तद्रूपं नाम चिन्तयेत्।**
**मनोधारेण तीक्ष्णेन योगमाश्रित्य नित्यशः।।१२।।**
**इन्द्रवज्रमिति प्रोक्तं मर्मजङ्घानुकीर्तनम्।**
**तद्ध्यानबल योगेन धारणाभिर्निकृन्तयेत्।।१३।।**
**ऊर्वोर्मध्ये तु संस्थाप्य मर्म प्राण विमोचनम्।**
**चतुरभ्यास योगेन छिन्देदनभिशङ्कितः।।१४।।**
**ततः कण्ठान्तरे योगी समूहेन्नाडीसञ्चयम्।**
**एकोत्तरं नाडीशतं तासां मध्ये वरा स्मृताः।।१५।।**
**सुषुम्ना तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी।**
**इडा तिष्ठति वामेन पिङ्गला दक्षिणेन तु।।१६।।**
**तयोर्मध्ये परं स्थानं यस्तं वेद स वेदवित्।**
**द्वासप्ततिसहस्राणि प्रतिनाडीषु तैतिलम्।।१७।।**
**छिद्यते ध्यानयोगेन सुषुम्नैका न छिद्यते।**
**योगनिर्मलधारेण क्षुरेणानलवर्चसा।।१८।।**
**छिन्देन्नाडीशतं धीरः प्रभावादिह जन्मनि।**
**जातीपुष्पसमं योगी यदा पश्यति तैतिलम्।।१९।।**
**एवं शुभाशुभैर्भावैः सा नाडीति विभावयेत्।**
**तद् भाविताः प्रपद्यन्ते पुनर्जन्मविवर्जिताः।।२०।।**

हमारे मन में हजारों वृत्तियां या विचार निरन्तर उठते रहते हैं। मन अत्यन्त शक्तिशाली है। निर्मल बुद्धि से ही मन के कार्यों को समझा जा सकता है। मन पर नियन्त्रण कर पाना अत्यधिक कठिन है। योगाभ्यास से

ही मन को एकाग्र किया जा सकता है। मन को एकाग्र करने का ज्ञान योग के अनधिकारी व्यक्ति को नहीं बताना चाहिये। इसे गुप्त रखना चाहिये।

मन की शक्ति से हम अपने अज्ञान की ग्रन्थियों या सन्देहों को काट सकते हैं अत: मन धारदार हथियार जैसा है। इसीलिये अज्ञान रूपी पर्वत को तोड़ डालने के लिये एकाग्र मन को इन्द्र के वज्र के समान कठोर और शक्ति सम्पन्न कहा गया है। विश्वविराट् परम प्रभु के चरणों पर जो मर्म-स्थान है उसपर मन एकाग्र करके प्रभु के नाम और रूप का स्मरण करना चाहिये। ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई वस्तु सत्य और स्थायी नहीं है यह विचार मन में सदा बनाये रखना चाहिये।

इस प्रकार पैर के अंगूठों और अंगुलियों से लेकर जांघों, षट् चक्रों और सहस्त्रार चक्र तक ध्यान के बल से अहं ब्रह्मास्मि की नित्य भावना के द्वारा अपने सभी भ्रमों को काट डालना चाहिये। प्राणायाम के निरन्तर और दीर्घकालीन अभ्यास से मन एकाग्र करके सुषुम्ना नाड़ी में प्राणों का प्रवेश कराकर ध्यान बल के द्वारा अपने सभी सन्देह और संकल्प-विकल्प नष्ट कर देने चाहिये।

शरीर में फैली हुई हजारों नाड़ियों की शुद्धि के बिना योग में सफलता नहीं मिलती इसलिये योगाभ्यासी की नेति, धौति, वस्ति आदि देहशुद्धि के षट्कर्मों के द्वारा देहशुद्धि हो जाने पर प्राण शरीर में सुगमता से चलने लगता है। प्राणायाम के अभ्यास से योगी को अपने कण्ठ में व्याप्त नाड़ियों में प्राणवायु का भलीभांति संचार करना चाहिये। केवल कुम्भक प्राणायाम नाड़ी शुद्धि का प्रधान उपाय है।

हमारे शरीर में १०१ मुख्य नाड़ियां हैं। इनमें सर्वोत्कृष्ट नाड़ी सुषुम्ना है। सुषुम्ना नाड़ी परब्रह्म में लीन हैं। यह ब्रह्मरूपिणी है। **यह विरजा है अर्थात् इसमें रजोगुण और तमोगुण के विकार या दोष नहीं है।** यह नाड़ी ब्रह्म लोक को प्राप्त कराने वाली है।

सुषुम्ना नाड़ी के दायीं ओर पिङ्गला और बायीं ओर इड़ा नाम की नाड़ियां हैं। इन दोनों नाड़ियों के बीच में स्थित सुषुम्ना नाड़ी में ब्रह्म का उत्कृष्ट स्थान है। यहाँ पर स्थित परमात्मा को जो योगी प्रत्यक् चेतना द्वारा

जान लेता है वह वेदों में वर्णित ब्रह्म के स्वरूप को भली भांति जान जाता है। प्रत्यक् चेतना को जानने का उपाय वेदमन्त्रों के अर्थों का चिन्तन करना है। प्रणव जप निरन्तर करने से और ध्यानादि का अभ्यास करते रहने से हमारी बुद्धि सांसारिक विषयों को छोड़कर ईश्वराभिमुखी हो जाती है। इस बुद्धि या चेतना का नाम 'प्रत्यक् चेतना' है। प्रत्यक् चेतना आने पर योग साधना के अन्तराय या विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

हमारे शरीर की ७२ हजार नाड़ियों में से सुषुम्ना के अन्दर कैवल्य नाम की बहुत ही सूक्ष्म नाड़ी है। इस नाड़ी में चैतन्य स्वरूप ब्रह्म का ध्यान करने से शरीर की ७२ हजार नाड़ियों में प्राणवायु की गति रुक जाती है। ध्यान योग के निरन्तर और दीर्घकालीन अभ्यास से योगी की सुषुम्ना नाड़ी में प्राणवायु का संचार होने लगता है, किन्तु सुषुम्ना के अन्दर कैवल्य नाड़ी में दृष्टि, मन और प्राण की गति नहीं हो पाती। उपनिषद् ब्रह्म योगी के अनुसार कैवल्य नाड़ी में ब्रह्म कल्प की अवधि तक दृष्टि, मन और प्राण की गति नहीं हो पाती। इसलिये जो योगी कैवल्य नाड़ी में दृष्टि, मन, प्राण को ले जाता है ऐसा योगी अपने शरीर को ब्रह्म कल्प की अवधि तक बनाये रखता है। इसलिये धैर्यशाली योगी योग के तत्त्वज्ञान से और इस योग के द्वारा शुद्ध और निर्मल अन्तःकरण रूपी सूक्ष्म धारारूप तेज के छुरे से इसी जन्म में कैवल्य नाड़ी में दृष्टि मन और प्राण को प्रविष्ट कराये। इस स्थिति में शरीर की सैकड़ों नाड़ियों में प्राणवायु की गति रुक जाती है और योगी अपनी साधना में सफल हो जाता है।

जैसे चमेली का फूल और उसकी सुगन्ध सदा साथ-साथ रहती है उसी तरह योगी जब कैवल्य नाड़ी में दृष्टि, मन और प्राण को स्थिर कर लेता है तब वह विदेहमुक्त हो जाता है। जब सुषुम्ना के अन्तर्गत कैवल्य नाड़ी के अतिरिक्त अन्य नाड़ियों में दृष्टि, मन, प्राण की गति रहती है तब योगी जन्म मरण और स्वर्ग-नरक की गति देने वाले शुभ और अशुभ विचारों में उलझा रहता है। सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर स्थित कैवल्य नाड़ी पुनर्जन्म को रोक कर कैवल्य प्रदान करती है। कैवल्य नाड़ी के अतिरिक्त

दूसरी रमा, अरमा आदि नाड़ियाँ स्वर्ग-नरक प्राप्त कराती हैं। रमा आदि नाड़ियां शुभ फल प्राप्त कराती हैं और अरमा आदि अशुभ नरक आदि प्राप्त कराती हैं। शरीर की अन्य नाड़ियों में प्राण की गति बनी रहने से तरह-तरह के रोग हो जाते हैं।

**योगसाधना और इसका अधिकारी**

**तपोविजितचित्तस्तु निःशब्दं देशमास्थितः।**
**निःसङ्गतत्त्वयोगज्ञो निरपेक्षः शनैः शनैः।।२१।।**

**पाशं छित्त्वा यथा हंसो निर्विशङ्कं खमुत्क्रमेत्।**
**छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते सदा।।२२।।**

**यथा निर्वाणकाले तु दीपो दग्ध्वा लयं व्रजेत्।**
**तथा सर्वाणि कर्माणि योगी दग्ध्वा लयं व्रजेत्।।२३।।**

**प्राणायामसुतीक्ष्णेन मात्राधारेण योगवित्।**
**वैराग्योपल घृष्टेन छित्त्वा तं तु न बध्यते।।२४।।**

**अमृतत्वं समाप्नोति यदा कामात् स मुच्यते।**
**सर्वेषणाविनिर्मुक्तश्छित्त्वा तं तु न बध्यते।।२५।।**

**इत्युपनिषत्।। ओम् सहनाववतु इति शान्तिः।**

तपस्या के द्वारा चित्त पर नियन्त्रण कर लेने वाला योगी शब्द रहित एकान्त स्थान में बैठकर वैराग्य के गूढ़ अर्थ को समझ कर धीरे-धीरे सभी कामनाओं और नाते-रिश्तों से मुँह मोड़ लेता है। उसके मन में किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति मोह और आसक्ति या लगाव नहीं रहता। जैसे हंस जाल को काट कर आकाश में स्वतन्त्र उड़ता रहता है वैसे ही संसार के सभी सम्बन्ध और बन्धन काटकर जीव संसार से मुक्त हो जाता है।

जैसे दीपक बुझने से पहिले अपने तेल और बत्ती को जलाकर बुझ जाता है वैसे ही योगी अपने जन्म जन्मान्तरों के अच्छे-बुरे सभी कर्मों को नष्ट करके मुक्त हो जाता है।

योगी प्राणायाम के निरन्तर और दीर्घकालीन अभ्यास के द्वारा अपने श्वास-प्रश्वास की गति अत्यन्त सूक्ष्म करके और वैराग्य के सिल (शिला) पर सभी कामनाओं और वासनाओं को नष्ट करके इस संसार के सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

जब योगी मन की सभी कामनाओं को सर्वथा त्याग देता है तब वह अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

सभी प्रकार की ऐषणाओं अर्थात् कामनाओं और आशाओं से मुक्त योगी संसार के बन्धनों को सदा के लिये काट डालता है।

**।।क्षुरिकोपनिषत्समाप्त।।**

५

# तेजोबिन्दूपनिषद्

**ओ३म् सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।**
**तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।**

**ओ३म् शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!**

## प्रथम अध्याय

### प्रणवस्वरूप तेजोमय बिन्दु के ध्यान की महिमा तथा उसके अधिकारी एवं अनधिकारी

**ॐ तेजोबिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।**
**आणवं शाम्भवम् शान्तं स्थूलं सूक्ष्मं परं च यत्।।१।।**

ओ३म्! माया से व्याप्त इस संसार से परे हृदयाकाश में विद्यमान प्रणवस्वरूप तेजोमय बिन्दु का ध्यान ही परम श्रेष्ठ ध्यान है। इस तेजोमय बिन्दु का ध्यान आणव अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म उपाय से साध्य, ईश्वर के शिव रूप की प्राप्ति कराने वाला (शाम्भव) तथा गुरु की शक्ति से ही साध्य है और मन को शान्ति देने वाला है। यह ध्यान स्थूल, सूक्ष्म तथा इन दोनों से परे सबसे श्रेष्ठ फल को प्राप्त कराने वाला है।

**दुःखाढ्यं च दुराराध्यं दुष्प्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम्।**
**दुर्लभं तत् स्वयं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम्।।२।।**

बुद्धिमानों और मुनियों के लिये भी इस बिन्दु के ध्यान की साधना बहुत कठिन है। यह बड़ी कठिनाई से सिद्ध होता है। यह बड़ी मुश्किल से

दिख पाता है अर्थात् दुष्प्रेक्ष्य है। इस पर बड़ी कठिनाई से ध्यान लग पाता है। यह प्रणवस्वरूप बिन्दु सदा एकरूप और अनश्वर है। इस ध्यान को अन्त तक निभा पाना बड़ा कठिन है।

**यताहारो जितक्रोधो जितसङ्गो जितेन्द्रियः।**
**निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निराशीरपरिग्रहः।।३।।**

साधक को नपा-तुला भोजन करना चाहिये। उसे क्रोध पर विजय पानी चाहिये। सभी प्रकार के संग-साथ और आसक्तियों को छोड़ देना चाहिये। अपनी इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये। उसमें मान-अपमान, सुख-दुख, गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्व सहन करने की सामर्थ्य होनी चाहिये। उसे अहंकार का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। उसे किसी से भी कोई आशा नहीं करनी चाहिये और जीवन के लिये नितान्त आवश्यक वस्त्र आदि के अतिरिक्त किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं करना चाहिये।

**अगम्यागमकर्ता यो गम्याऽगमनमानसः।**
**मुखे त्रीणि च विन्दन्ति त्रिधामा हंस उच्यते।।४।।**

जो सूक्ष्म ब्रह्म तत्त्व दूसरों को अगम्य या अप्राप्य है उसे प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय साधक में होना चाहिये।

उसके मन में गुरुसेवा की लगन होनी चाहिये। इस तेजोमय बिन्दु के ध्यान के लिये साधक वैराग्य, उत्साह और गुरुसेवा इन तीन प्रमुख साधनों का सहारा लेते हैं। इसलिये यह हंस या विशुद्धतत्व त्रिधामा कहा जाता है।

**परं गुह्यतमं विद्धि ह्यस्ततन्द्रो निराश्रयः।**
**सोमरूपकला सूक्ष्मा विष्णोस्तत् परमं पदम्।।५।।**

ध्यान करने योग्य यह तेजोबिन्दु अत्यन्त गोपनीय है अर्थात् ब्रह्म सबको प्रतीत न होने के कारण अव्यक्त है। ब्रह्म में तन्द्रा अर्थात् चित्त की तमोगुणी वृत्ति नहीं है। इसका कोई आश्रय या अधिष्ठान नहीं है, क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् का और सभी प्राणियों का आधार या सहारा है। यह ब्रह्म सोमरूप कला अर्थात् चन्द्रमा की कला या अंश के समान शान्त और शीतल है। यह विष्णु पद अत्यधिक सूक्ष्म और श्रेष्ठ है।

**त्रिवक्त्रं त्रिगुणं स्थानं त्रिधातुं रूपवर्जितम्।**
**निश्चलं निर्विकल्पं च निराकारं निराश्रयम्।।६।।**

यह ब्रह्म तीन मुखों वाला अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीनों वेदों के द्वारा ज्ञान, कर्म और उपासना का मार्ग बताने वाला है। यह त्रिगुणों से युक्त है अर्थात् इसमें प्रकृति के सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीनों गुण विद्यमान है। यह सबका स्थान अर्थात् आश्रय या आधार है। यह प्रकृति या शरीर के वात, पित्त और कफ इन तीन धातुओं का नियामक है। रूपरहित या अव्यक्त है। निश्चल अर्थात् सदैव विद्यमान, निर्विकल्प अर्थात् तरह-तरह के विचारों या वृत्तियों से रहित, निराकार और निराश्रय है।

**उपाधिरहितं स्थानं वाङ्मनोऽतीतगोचरम्।**
**स्वभावं भावसंग्राह्यम् असंघातं पदाच्युतम्।।७।।**

यह सभी प्रकार की उपाधियों या विशेषणों से रहित, सभी का सहारा, वाणी आदि इन्द्रियों और मन से भी न जाना जा सकने वाला है। अपने विशिष्ट स्वरूप में स्थित है। अपने वास्तविक स्वरूप के चिन्तन द्वारा ही ग्रहण करने या जानने अथवा अनुभव करने योग्य है। संघात से रहित अर्थात् समष्टि या व्यष्टिवाचक पदों से वर्णन न किया जा सकने वाला और अच्युत अर्थात् सदा निर्विकार और एकरूप है।

**अनानानन्दनातीतं दुष्प्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम्।**
**चिन्त्यमेवं विनिर्मुक्तं शाश्वतं ध्रुवमच्युतम्।।८।।**

तेजो बिन्दुरूप यह ब्रह्म सांसारिक विषय-सुखों से परे स्वयं आनन्दस्वरूप, बड़ी कठिनाई से साक्षात् होने वाला, अजन्मा, अविनाशी, चित्त की वृत्तियों से रहित, शाश्वत, निश्चल और निर्विकार है। इसका इसी स्वरूप में चिन्तन और ध्यान करना चाहिये।

**तद्ब्रह्मणस्तदध्यात्मं तद् विष्णोस्तत्परायणम्।**
**अचिन्त्यं चिन्मयात्मानं यद् व्योम परमं स्थितम्।।९।।**

वही ब्रह्म है। वही अध्यात्मस्वरूप है अर्थात् व्यक्ति या आत्मा से सम्बद्ध है। वही विष्णुस्वरूप है। वही परायण अर्थात् परम आश्रय है। वह

अचिन्त्य है अर्थात् ब्रह्म या परमात्मा का पूरे रूप में चिन्तन नहीं किया जा सकता। वह चिन्मय या चैतन्यस्वरूप है। वह आकाश की तरह सर्वव्यापक है और उत्कृष्ट रूप में विराजमान है।

**अशून्यं शून्यभावं तु शून्यातीतं हृदि स्थितम्।**
**न ध्यानं च न च ध्याता न ध्येयो ध्येय एव च।।१०।।**

वे शून्य न होने पर भी शून्य के समान हैं और शून्य से भी परे हैं। वे हृदय के आकाश में विराजमान है। वे न ध्यान हैं, न ध्यान करके वाले हैं और न ही ध्येय हैं फिर भी ब्रह्म ध्येय हैं अर्थात् ध्यान करने योग्य हैं।

**सर्वं च न परं शून्यं न परं नापरात्परम्।**
**अचिन्त्यमप्रबुद्धं च न सत्यं न परं विदुः।।११।।**

वह सर्वस्वरूप या सर्वमय है। उस परमतत्त्व से परे कुछ भी नहीं है। वह शून्य जैसा है। वह परात्पर है अर्थात् अध्यात्म विद्या या मोक्षदायिनी विद्या से भी उत्कृष्ट है। वह अचिन्त्य है। उसमें जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाएं भी नहीं हैं। महात्मा और ज्ञानी पुरुष उसे सत्य-स्वरूप और परम श्रेष्ठ मानते हैं।

**मुनीनां सम्प्रयुक्तं च न देवा न परं विदुः।**
**लोभं मोहं भयं दर्पं कामं क्रोधं च किल्विषम्।।१२।।**

वे मुनियों के आराध्य हैं। देव अर्थात् सूक्ष्मबुद्धि वाले भी ब्रह्म से परे किसी सत्ता को नहीं जान पाते। लोभ, मोह, भय, काम, क्रोध आदि अन्त:करण की वृत्तियों या भावनाओं वाले—

**शीतोष्णे क्षुत् पिपासे च संकल्पकविकल्पकम्।**
**न ब्रह्मकुलदर्पं च न मुक्तिग्रन्थिसंचयम्।।१३।।**

सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वों में फंसे हुए, भूख-प्यास शान्त करने की चिन्ता में डूबे हुए तथा मन में उठने वाले तरह-तरह के विचारों में उलझे हुए, ब्राह्मण आदि ऊँचे कुलों में जन्म लेने का गर्व करने वाले, और मुक्ति मार्ग का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों का संग्रह करने वाले इस तेजोबिन्दू को नहीं जान पाते।

**न भयं च सुखं दुःखं तथा मानावमानयोः।**
**एतद् भावविनिर्मुक्तं तद् ग्राह्यं ब्रह्म तत्परम्।।१४।।**

वह ब्रह्म भय, सुख-दुख और मान-अपमान में फंसे हुए लोगों को भी प्राप्त नहीं होता। जो लोग इन सभी दूषित भावों या विचारों से छूटे हुए है उन्हीं को वह परात्पर ब्रह्म प्राप्त हो सकता हैं।

### योग के अङ्ग

**यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः।**
**आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः।।१५।।**
**प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा।**
**आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात्।।१६।।**

यम, नियम, त्याग का भाव, देश और काल मौन, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य अर्थात् शरीर को सीधा रखना, दृष्टि को स्थिर रखना, प्राणों पर नियन्त्रण, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान, समाधि ये सब योग के अङ्ग हैं।

### यम

**सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः।**
**यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः।।१७।।**

इस जगत् में सब कुछ ब्रह्ममय है मन और हृदय में ज्ञान की यह भावना बनाये रखकर अपनी इन्द्रियों को वश में रखना यम कहलाता है। इस प्रकार के यम का अभ्यास योगी को बार-बार करना चाहिये।

### नियम

**सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः।**
**नियमो हि परानन्दो नियमात् क्रियते बुधैः।।१८।।**

'सर्वं खलु इदं ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत् त्वमसि' इस प्रकार के समान विचारों की मन में निरन्तर भावना करते रहना और इन विचारों से विपरीत विचारों पर ध्यान न देना नियम कहलाता है।

बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन में यह भावना नियमित रूप से बनाये रखते हैं, क्योंकि इस भावना को मन में बनाये रखने से उन्हें अत्यधिक आनन्द मिलता है।

**त्याग**

**त्यागो हि महता पूज्यः सद्यो मोक्षप्रदायकः।।१९।।**

सभी सांसारिक बन्धनों और आसक्तियों अर्थात् लोभ, मोह, ममता आदि को सदा के लिये त्याग देने वाले त्यागी पुरुषों का संसार में बहुत आदर-सत्कार किया जाता है। इस प्रकार के त्याग से मनुष्य जल्दी ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

**मौन**

**यस्माद् वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।**
**यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद् भजेत् सर्वदा बुधः।।२०।।**

वाणी जहाँ से लौट आती है, मन जिसे प्राप्त नहीं कर सकता। यह अनुभूति करके योगी मौन हो जाते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति को भी यह अनुभव प्राप्त करने का प्रयत्न सदा करना चाहिये।

यतो वाचोनिवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। तैत्तिरीयउपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली चतुर्थ अनुवाक् —

**वाचोयस्मान्निवर्तन्ते तद् वक्तुं केन शक्यते।**
**प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः।।२१।।**

वाणी जहाँ से लौट आती है उस स्थिति का वर्णन कौन कर सकता है? फिर भी यदि इस अनुभूति या स्थिति का कोई विस्तार से वर्णन करना चाहे तब भी वह शब्दों से इसका वर्णन नहीं कर सकता।

**इति वा तद् भवेत् मौनं सर्वं सहजसंज्ञितम्।**
**गिरां मौनं तु बालानाम् अयुक्तं ब्रह्मवादिनाम्।।२२।।**

बुद्धि, मन और हृदय की यह भावना और अनुभूति ही वास्तविक

मौन है। इसे ही सहज मौन या स्वाभाविक मौन कहा जाता है। वाणी से कुछ न बोलना तो नासमझ लोग करते हैं। ब्रह्मवादियों के लिये वाणी का मौन व्यर्थ ही है।

### एकान्त देश

**आदौ अन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन् न विद्यते।**
**येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः।।२३।।**

जिस स्थान के आदि, अन्त और मध्य में कोई व्यक्ति न हो अर्थात् ध्यान करते समय ध्यान के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में मन में किसी भी व्यक्ति का विचार न उठे और केवल सर्वव्यापी परमात्मा का भाव ही बना रहे, मन की इस स्थिति को एकान्त स्थान कहते हैं।

### काल

**कल्पना सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः।**
**कालशब्देन निर्दिष्टं अखण्डानन्दमद्वयम्।।२४।।**

जो ब्रह्म क्षण मात्र में ही ब्रह्मा आदि सभी प्राणियों की रचना कर देते हैं इस प्रसंग में ही काल शब्द का अर्थ है। वह ब्रह्म अखण्ड आनन्दमय अर्थात् एकरस आनन्द से परिपूर्ण और अद्वितीय है।

### आसन

**सुखेनैव भवेत् यस्मिन् अजस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम्।**
**आसनं तद् विजानीयात् अन्यत् सुखविनाशनम्।।२५।।**

शरीर जिस स्थिति में सुख से बैठकर निरन्तर ब्रह्म का ध्यान कर सके वही वास्तविक आसन कहलाता है। किसी और तरह बैठने से तो दुख ही मिलता है।

### सिद्धासन

**सिद्धये सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमद्वयम्।**
**यस्मिन् सिद्धिं गताः सिद्धाः तत् सिद्धासनमुच्यते।।२६।।**

जिस आसन के द्वारा सभी प्राणियों ने विश्व के आधार, आश्रय और अद्वितीय ब्रह्म की सिद्धि या प्राप्ति की है वही आसन सिद्धासन कहलाता है।

**मूलबन्ध**

**यन्मूलं सर्वलोकानां यन्मूलं चित्तबन्धनम्।**
**मूलबन्धः सदा सेव्यो योग्योऽसौ ब्रह्मवादिनाम्।।२७।।**

जो ब्रह्म सभी लोकों का मूल अर्थात् आदि कारण है। जिसे आलम्बन बनाकर चित्त एकाग्र किया जाता है। लोक लोकान्तरों को बनाने वाले और मन एकाग्र करने के सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य उस ब्रह्म का ही चिन्तन ब्रह्मवादियों को सदा करना चाहिये।

**देहसाम्य**

**अङ्गानां समतां विद्यात् समे ब्रह्मणि लीयते।**
**नो चेत् नैव समानत्वम् ऋजुत्वं शुष्कवृक्षवत्।।२८।।**

मन के ब्रह्म में लीन या तन्मय हो जाने की अवस्था ही देहसाम्य या शरीर के अंगों की समता कहलाती है। जो लोग कमर सीधी कर बैठने को देहसाम्य कहते हैं वह तो सीधे खड़े सूखे पेड़ की तरह ही है।

**दृक्स्थिति**

**दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येत् ब्रह्ममयं जगत्।**
**सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रवालोकिनी।।२९।।**

वास्तविक ज्ञान से युक्त जिस दृष्टि से सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्म से व्याप्त देखा जाता है वह दृष्टिकोण सर्वश्रेष्ठ है। नाक के अगले भाग पर दृष्टि स्थिर रखना व्यर्थ ही है।

**द्रष्टु दर्शन दृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्।**
**दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी।।३०।।**

जिस अवस्था में देखने वाले, देखने की वस्तु या दृश्य और दर्शन

या दिखना इन तीनों का विलय या एकीभाव हो जाता है वही वास्तविक दृक् स्थिति है न कि नासाग्र पर दृष्टि लगाना।

**प्राणायाम**

**चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात्।**
**निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते।।३१।।**

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि इन्द्रियों से एकमात्र ब्रह्म का चिन्तन करते रहना और अन्य सब वृत्तियों या विचारों को रोक देना प्राणायाम कहलाता है।

**रेचक-पूरक**

**निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरितः।**
**ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरुच्यते।।३२।।**

दिखाई देने वाले इस सम्पूर्ण जगत् को असत् या अस्थायी समझना रेचक-प्राणायाम कहलाता है।

मैं ब्रह्म ही हूँ मन में यह विचार बनाये रखना पूरक प्राणायाम कहलाता है।

**कुम्भक**

**ततः तद् वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः।**
**अयं चापि प्रबुद्धानाम् अज्ञानां घ्राणपीडनम्।।३३।।**

'मैं ब्रह्म ही हूँ' इस वृत्ति या विचार को मन में स्थिर बनाये रखना कुम्भक प्राणायाम होता है। प्रबुद्ध या ब्रह्मज्ञानी लोग इसे ही कुम्भक प्राणायाम मानते हैं। मूर्ख लोग तो सांस रोकने को कुम्भक कहते हैं।

**प्रत्याहार**

**विषयेषु आत्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तरञ्जकम्।**
**प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः।।३४।।**

इन्द्रियों के विषयों रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि में आत्मभाव या ब्रह्मभाव का दर्शन करके इसी ब्रह्मभाव में मन को लगाये रखना प्रत्याहार अथवा चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर इन्द्रियों को वश में करना कहलाता है। ऐसे प्रत्याहार का अभ्यास बार-बार करना चाहिये।

**धारणा**

**यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम्।**
**मनसा धारणं चैव धारणा सा परा मता।।३५।।**

जहाँ-जहाँ मन जाता है उन सब विषयों में सर्वव्यापक ब्रह्म का दर्शन करना और मन में सर्वव्यापक ब्रह्म की स्मृति सदा बनाये रखना श्रेष्ठ धारणा होती है।

**ध्यान**

**ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्या निरालम्बतया स्थितिः।**
**ध्यान शब्देन विख्यातः परमानन्ददायकः।।३६।।**

मैं ब्रह्म ही हूँ, इस उत्कृष्ट वृत्ति या विचार को किसी सहारे के बिना मन में सदा बनाये रखना ध्यान कहलाता है। ध्यानमग्न होने पर अत्यन्त सुख मिलता है।

**समाधि**

**निर्विकारतया वृत्या ब्रह्माकारतया पुनः।**
**वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिरभिधीयते।।३७।।**

क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, लोभ-मोह आदि मन के मलिन विचार दूर करके मन को निर्मल बनाकर और मन में ब्रह्म की भावना बनाये रखकर सभी वृत्तियों और विचारों को पूरी तरह भूल जाना समाधि कहलाती है।

**इमं चाकृत्रिमानन्दं तावत् साधु समभ्यसेत्।**
**लक्ष्यो यावत् क्षणात् पुंसः प्रत्यक्त्वं सम्भवेत् स्वयम्।।३८।।**

समाधि से प्राप्त इस स्वाभाविक आनन्द की अनुभूति का तब तक

भलीभांति अभ्यास करना चाहिये जबतक साधक को प्रत्यक्त्व अर्थात् अपने आत्मस्वरूप का या स्वरूप भूत चिद्रूप अवस्था का या अनात्म भाव का बोध न हो जाय।

**ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट्।**
**तत् स्वं रूपं भवेत् तस्य विषयो मनसो गिराम्।।३९।।**

इसके बाद साधना से मुक्त होकर योगिराज सिद्ध योगी बन जाता है तब वह अपने मन-वचन में स्वरूप हो जाता है अर्थात् ज्ञान के भलीभांति निरुद्ध हो जाने पर शान्तवृत्ति का ज्ञाता हो जाता है। अभिप्राय यही है कि मुक्ति चाहने वाले साधक को योग के इन १५ अंगों का अभ्यास तबतक करना चाहिये जबतक उसकी स्थिति ब्रह्म में न हो जाय।

### समाधि के विघ्न

**समाधौ क्रियमाणे तु विघ्नानि आयन्ति वै बलात्।**
**अनुसन्धानराहित्यम् आलस्यं भोगलालसम्।।४०।।**
**लयस्तमश्च विक्षेपस्तेजः स्वेदश्च शून्यता।**
**एवं विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्मविशारदैः।।४१।।**

समाधि का अभ्यास प्रारम्भ करने पर साधक को अनेक विघ्न-बाधाएँ घेर लेती हैं जैसे असुन्धानराहित्य अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप न जानने की इच्छा, आलस्य, विषय-भोगों के प्रति आकर्षण, लय अर्थात् आलस्य और नींद के कारण वृत्ति का अभाव; तम अर्थात् तमोगुण का बढ़ना, विक्षेप या चित्त की चंचलता, गर्मी, पसीना और शून्यता।

ब्रह्मज्ञान के साधकों को इन विघ्नों को छोड़ देना चाहिये।

### ब्रह्मवृत्ति

**भाव वृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।**
**ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत्।।४२।।**

मन में किंसी वस्तु के बारे में सोचने से उस वस्तु का ही ज्ञान बना रहता है। इसी प्रकार शून्यवृत्ति से अर्थात् चित्त में तरह-तरह के विचारों का

निरोध करने से चित्त में शून्यता आ जाती है। किन्तु चित्त को सब ओर से हटाकर ब्रह्म में लगाने से चित्त में पूर्णता की स्थिति आ जाती है। इसलिये साधक को पूर्णता की वृत्ति या अवस्था का ही अर्थात् 'अहंब्रह्मास्मि' इस अखण्डाकार वृत्ति का अभ्यास करना चाहिये।

**ये हि वृत्तिं विहायैनां ब्रह्मरूपां पावनीं पराम्।**
**वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः।।४३।।**

जो लोग इस परम पवित्र और श्रेष्ठ ब्रह्मरूपी मन की वृत्ति को छोड़कर अन्य सांसारिक बातों में फंसे रहते हैं उनका जीवन व्यर्थ ही होता है। वे पशुओं की तरह ही अपना जीवन बिता देते हैं।

**ये तु वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वा वै वर्धयन्ति ये।**
**ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये।।४४।।**

किन्तु जो साधक इस ब्रह्मवृत्ति को भली प्रकार जान लेते हैं और जानकर अपने मन में इस ब्रह्मवृत्ति को निरन्तर बढ़ाते रहते हैं ऐसे सत्पुरुष धन्य हैं। तीनों लोकों में वे वन्दनीय हैं।

**येषां वृत्तिः समा वृद्धा परिपक्वा च सा पुनः।**
**ते वै सद् ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः।।४५।।**

जिन साधकों की यह ब्रह्मवृत्ति सम अर्थात् वास्तव में बढ़कर परिपक्व हो गई है अर्थात् मन सदैव ब्रह्म में ही लगा रहता है वे वस्तुतः ब्रह्मभाव को पा लेते हैं। शास्त्रों का उपदेश करने वालों को ब्रह्मज्ञान नहीं हो पाता।

**कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।**
**तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च।।४६।।**

जो ब्रह्म की चर्चा करने में तो चतुर हैं किन्तु ब्रह्मवृत्ति से हीन हैं और सांसारिक राग-रंग में फंसे हुए हैं वे अपने अज्ञान के कारण जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहते हैं।

**निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना।**
**यथा तिष्ठन्ति ब्रह्मज्ञाः सनकाद्याः शुकादयः।।४७।।**

ब्रह्मज्ञानी सनक और शुकदेव आदि ज्ञानी और मुक्तपुरुष जैसे सदा

ब्रह्मवृत्ति में मग्न रहते हैं वैसे ही योगी भी आधे क्षण तक भी ब्रह्ममयी वृत्ति के बिना नहीं रह सकते।

**कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते।**
**कारणं तत्त्वतो नश्येत् कार्याभावे विचारतः।।४८।।**

ब्रह्म की अखण्डाकार वृत्ति का अभ्यास करने के कारण अखण्डाकार वृत्ति का उदय होता है। इस अभ्यास का कार्य अखण्डाकार वृत्ति है। किन्तु यह वृत्ति अस्थायी है अतः ब्रह्म की स्थायी वृत्ति कैसे उदित होगी? इस शंका के उत्तर में कहा है जहाँ कारण-कार्य का भाव बना रहता है वहाँ कारण बना रहता है किन्तु कार्य नष्ट हो जाने पर उसका कारण भी नहीं रहता। अखण्डाकार वृत्ति उदित होने पर अखण्डाकार वृत्ति के सम्बन्ध में कार्य-कारण की भ्रान्ति भी नष्ट हो जाती है और ज्ञानावस्था में पहुँचकर साधक का स्वभाव शुद्ध हो जाता है।

**ज्ञानावस्था**

**अथ शुद्धं भवेत् वस्तु यद्वै वाचामगोचरम्।**
**उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम्।।४९।।**

ज्ञान की इस अवस्था में शुद्ध वस्तु या ब्रह्म का ज्ञान हृदय में प्रकट होता है। वाणी से इस ज्ञानावस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्मलचित्त साधकों के हृदयों में ही ब्रह्मवृत्ति का ज्ञान स्फुरित होता है।

**भावितं तीव्रवेगेन यद् वस्तु निश्चयात्मकम्।**
**दृश्यं हि अदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत्।।५०।।**

दिखाई देने वाले इस जगत् को अस्थिर या अनित्य समझकर अपने चित्त में ब्रह्मभाव का चिन्तन करने वाले साधक को निश्चयात्मक वस्तु या ब्रह्म का चिन्तन और अधिक तत्परता से करना चाहिये।

**।।विद्वान् नित्यं सुखे तिष्ठेत् धियाचिद्रसपूर्णया।।**

ज्ञानीपुरुष ब्रह्म के चैतन्य रस से पूर्ण बुद्धि से सदा सुखपूर्वक रहे।

**।।प्रथम अध्याय समाप्त।।**

## द्वितीय अध्याय

कुमार कार्त्तिकेय ने अपने पिता शिव से कहा कि अखण्ड एकरस चिन्मात्रस्वरूप ब्रह्म के सम्बन्ध में बताइये।

शिव ने बताया कि यह दिखाई देने वाला संसार अखण्ड एकरस है। ब्रह्म और जीव भी अखण्ड एकरस हैं। हे कुमार! अखण्डएकरस के अतिरिक्त संसार में कुछ भी नहीं है। यह भूमि, सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र, यज्ञ, जप, ध्यान, मन सभी कुछ अखण्ड एकरस और चिन्मात्र ही है अर्थात् चेतनायुक्त है। सम्पूर्ण लोक, तेरा-मेरा सम्बन्ध, आकाश, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सब कुछ चिन्मात्र हैं। आदि-अन्त, गुरु-शिष्य, शरीर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, पाप-पुण्य, मौन, वैराग्य, ब्रह्म आदि सभी कुछ अखण्ड-एकरस और चिन्मात्र हैं। अर्थात् समस्त संसार के पदार्थों में अखण्ड एकरस और चिन्मय ब्रह्म की सत्ता विद्यमान है।

**।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।**

## तृतीय अध्याय

कुमार कार्त्तिकेय ने अपने पिता से अनुरोध किया कि आप अपने अनुभव बताइये। इसके उत्तर में शिव ने कहा कि मैं परब्रह्मस्वरूप, परमानन्दस्वरूप, केवल ज्ञानरूप, शान्तरूप, चिन्मय, नित्यरूप, शाश्वत अर्थात् सदा रहने वाला, सत्वरूप, सर्वहीनस्वरूप, चिदाकाशमय, तुर्यरूप, तुर्यातीत अर्थात् जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय देह की इन चारों अवस्थाओं से परे, चैतन्यरूप, चिदानन्दमय, शुद्धरूप, निर्विकल्प-स्वरूप, निरीह (इच्छारहित), निरामय (नीरोग), असंग-स्वरूप, निर्विकार, अव्यय, सदा एकरस, अवाङ्मनसगोचर अर्थात् ऐसी वस्तु जो मन का विषय न होने के कारण जिसे वाणी से बताया न जा सके, सत्यानन्दस्वरूप, आत्माराम (अपने में ही रमने वाला या आत्मानन्द) आत्मप्रकाशस्वरूप, आत्मज्योति, आदि, मध्य, अन्तहीन, आकाशसदृश, नित्यशुद्ध, चिदानन्द, सत्तामात्र, नित्यबुद्ध, विशुद्ध एक सच्चिदानन्द, नित्यशेषस्वरूप, सर्वातीत

अर्थात् सबसे परे, आत्मप्रकाशस्वरूप, आत्मज्योति, नित्यशुद्ध, नित्यशेषस्वरूप, रूपातीतस्वरूप, भाषाहीन, सर्वाधिष्ठानरूप (सबका आश्रयरूप), सर्वदा-चिद्घन, देहभावविहीन (शरीर के भाव से रहित), चिन्ताहीन, चित्तवृत्तिविहीन, चिदात्मैकरस, सर्वदृश्यविहीन, दृग्रूप, सर्वदापूर्ण, नित्यतृप्त, परात्पर, लोकत्रयाश्रय (तीनों लोकों का आधार), कालत्रयातीत (भूत, भविष्य, वर्त्तमान इन तीनों कालों से परे), नित्यशुद्धबुद्ध, निर्गुण, निराकार, अजर, अमर, सर्वशून्य, सर्वात्मानन्दवान्, नित्यानन्दस्वरूप, हृदाकाश, चिदादित्यस्वरूपवान्, आत्मनात्मनितृप्त, एकसंख्याविहीन, नित्यमुक्तस्वरूपवान्, परावरसुख, सत्तामात्रस्वरूप, शुद्धमोक्षस्वरूपवान्, सत्यानन्दस्वरूप, ज्ञानानन्दघन, विज्ञानमात्ररूप, सच्चिदानन्दलक्षण, सनातनब्रह्म, नामरूपविमुक्त, इन्द्रियाभावरूप, सर्वभावस्वरूप, बन्धमुक्ति विहीन, परामृतरस, एकमेवाद्वितीय, नीराग, निरञ्जन, प्रभु, ओंकार अर्थस्वरूप, निष्कलंकमय हूँ।

मेरा कोई स्वरूप नहीं है। मेरा कोई व्यापार अर्थात् क्रिया-कलाप नहीं है। मैं अंशहीन और आभास रहित हूँ। मैं मन, बुद्धि, इन्द्रिय, विकल्प और **देहत्रय** अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों वाला, या जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति शरीर की इन तीन अवस्थाओं से युक्त अथवा **तापत्रय** अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों प्रकार के दुखों तथा ऐषणात्रय अर्थात् लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा इन तीनों इच्छाओं, वाला भी नहीं हूँ।

हे कुमार! तुम देहत्रय को असत् या अनित्य समझो। तुम भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीन कालों को भी मिथ्या या असत् मानो। तुम सत्व, रज, तमस् इन तीनों गुणों को असत् या अवास्तविक जानो। तुम ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन मूर्त्तियों या देवताओं को भी असत् या सत्ताहीन समझो। तुम गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को, गुरुमन्त्र को और जो कुछ दिखाई दे रहा है या दृश्य है उस सबको असत् अर्थात् सत्तारहित समझो। तुम सभी प्राणों, भोग ऐश्वर्यों, देखे-सुने, ओतप्रोत, कार्य-अकार्य, प्राप्त और अप्राप्त, दुख-सुख, पूर्ण-अपूर्ण, धर्म-अधर्म, लाभ-हानि, जय-

पराजय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि सभी पदार्थों और अनुभवों को असत् समझो। मुझे ही केवल सत् अर्थात् सत्तावाला जानो।

'अहं ब्रह्मास्मि' यह मन्त्र देखे हुए पाप को, शरीर के दोषों को, जन्मों के पापों को, मृत्यु के बन्धन को, द्वैत दुख को या भेद बुद्धि को, चिन्तादुख को, बुद्धि व्याधि को या निश्चय-अनिश्चय की दुविधा को, चित्तबन्ध या मन के राग-द्वेष आदि भावों को, सभी रोगों को, सभी शोकों को, सभी कामनाओं को, क्रोध को, चित्तवृत्ति को अर्थात् सांसारिक विषयों की ओर मन के आकर्षण या लगाव को, मन के संकल्प-विकल्पों को और करोड़ों दोषों को नष्ट कर देता है तथा आत्मा के अज्ञान को नष्ट कर देता है।

'अहं ब्रह्मास्मि' यह मन्त्र आत्मलोक की विजय प्राप्त कराता है। यह मन्त्र मन में न समा सकने वाले असंख्य सुख प्रदान करता है। यह मन्त्र मन और बुद्धि की जड़ता को दूर कर देता है। यह मन्त्र जपने वाले साधक मोक्षसुख प्राप्त करते हैं। यह मन्त्र सच्चे ज्ञान का आनन्द प्रदान करता है। अन्य सभी मन्त्रों को छोड़कर 'अहं ब्रह्मास्मि' मन्त्र का ही जप करना चाहिये। इस मन्त्र के जप से निस्सन्देह मोक्ष प्राप्त होता है।

**।।तृतीय अध्याय समाप्त।।**

# चतुर्थ अध्याय

कार्त्तिकेय कुमार ने शिवजी से जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त योगियों की स्थिति बताने की प्रार्थना की।

इसके उत्तर में परम शिव ने कहा–

### जीवन्मुक्त

**चिदात्माहं परात्माहं निर्गुणोऽहं परात्परः।**
**आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत् स जीवन्मुक्त उच्यते।।१।।**

जो साधक अपने को चिदात्मा अर्थात् चैतन्यस्वरूप, परात्मा या उत्कृष्ट आत्मावाला, निर्गुण या सत्व, रज, तम इन तीन गुणों के प्रभाव से दूर और परात्पर (श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ) ब्रह्मस्वरूप मानता है तथा शरीर की

सभी चेष्टाओं, वासनाओं आदि को त्यागकर आत्ममात्र की भावना से युक्त रहता है उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

**देहत्रयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम्।**
**ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।।२।।**

मैं स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर इन तीनों शरीरों से भिन्न शुद्ध चैतन्यस्वरूप ब्रह्म हूँ, यह भावना जिसके अन्तःकरण में रहती है वह साधक जीवन्मुक्त कहलाता है।

**आनन्दघनरूपोऽस्मि परानन्दघनोऽस्म्यहम्।**
**यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः।**
**परमान्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते।।३।।**

मैं आनन्दघन स्वरूप, परानन्दघन और परमानन्दपूर्ण हूँ। जिसमें अपनी देह आदि का अभिमान अर्थात् मैं करने वाला हूँ या जानने वाला हूँ इस तरह के भाव नहीं रहते और जिसे निश्चित या असंदिग्ध रूप से ब्रह्म भाव की अनुभूति हो जाती है वह जीवन्मुक्त होता है।

**यस्य किंचिदहं नास्ति चिन्मात्रेणावतिष्ठते।**
**चैतन्यमात्रो यस्यान्तश्चिन्मात्रैकस्वरूपवान्।।४।।**

जिसके मन में तनिक भी अहंभाव अर्थात् अहंता या मैं पने की भावना नहीं है। जो चिन्मात्र या केवल चैतन्य स्वरूप में सदा बना रहता है और जिसका अन्तःकरण भी चैतन्य युक्त और केवल चिन्मात्रस्वरूप रहता है।

**सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मावशेषकः।**
**आनन्दरतिरव्यक्तः परिपूर्णश्चिदात्मकः।।५।।**

जो सभी परिस्थितियों में अपने को सभी प्रकार से परिपूर्ण अनुभव करता है। सभी प्राणियों में अपनी ही जैसी आत्मा का अनुभव करता है। अपने में ही मग्न रहता है। एकान्त सेवन करता है। सभी प्रकार से सन्तुष्ट रहकर अपने लिये कुछ नहीं चाहता और चैतन्य ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहता है।

**शुद्धचैतन्य रूपात्मा सर्वसङ्गविवर्जितः।**
**नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा ह्यन्यचिन्ता विवर्जितः।।६।।**

जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप अन्तःकरण से युक्त, सभी प्रकार के संग या मोह-ममता आदि से रहित, आनन्द में सदा मग्न, प्रसन्नचित्त और किसी भी तरह की चिन्ता से रहित है।

**किंचिदस्तित्वहीनो यः स जीवन्मुक्त उच्यते।**

जिसकी मन और बुद्धि अपने शरीर के बारे में कुछ भी नहीं सोचती वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

**न मे चित्तं न मे बुद्धि र्नाहंकारो न चेन्द्रियम्।।७।।**

**न मे देहः कदाचिद् वा न मे प्राणादयः क्वचित्।**

**न मे माया न मे कामो न मे क्रोधः परोऽस्म्यहम्।।८।।**

मेरा मन, बुद्धि, अहंकार और इन्द्रियाँ मेरी नहीं हैं। मेरा शरीर और प्राण आदि मेरे नहीं हैं। मुझमें माया, काम और क्रोध भी नहीं है। मैं इन सब्रसे अलग हूँ।

**न मे किंचिदिदं वापि न मे किंचित्क्वचित् जगत्।**

**न मे दोषो न मे लिङ्गं न मे चक्षुः न मे मनः।।९।।**

मेरा इस संसार से कुछ भी और कभी भी कोई सरोकार नहीं हैं। मुझमें कोइ दोष नहीं हैं। मेरा कोई लिंग अर्थात् पहिचान नहीं है। मेरा मन और मेरी आंखें मेरी नहीं हैं।

**न मे श्रोत्रं न मे नासा न मे जिह्वा न मे करः।**

**न मे जाग्रत् न मे स्वप्नं न मे कारणम् अणु अपि।।१०।।**

**न मे तुरीयमिति यः स जीवन्मुक्त उच्यते।**

मेरी नाक, कान, जीभ और हाथ मेरे नहीं है। मुझमें जाग्रत् और स्वप्न आदि अवस्थाएँ भी नहीं हैं। मेरा तनिक भी कोई कारण नहीं है। मेरी तुरीयावस्था या सहज अवस्था भी नहीं है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के बाद आत्मा की चौथी अवस्था तुरीयावस्था होती है। इस अवस्था में आत्मा ब्रह्म के साथ तदाकार अर्थात् ब्रह्म जैसा ही हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त योगी जीवन्मुक्त कहलाता है।

**इदं सर्वं न मे किंचिदयं सर्वं न मे क्वचित्।।११।।**

यह सब कुछ भी मेरा नहीं है। यह सब कहीं भी मेरा नहीं है।

**न मे कालो न मे देशो न मे वस्तु न मे मतिः।**
**न मे स्नानं न मे सन्ध्या न मे दैवं न मे स्थलम्।।१२।।**

ब्रह्म की उपासना के लिये मेरा कोई समय, स्थान वस्तु या बुद्धि नहीं है। उपासना के लिये मुझे स्नान, सन्ध्या, देव या किसी स्थल या जगह की जरूरत नहीं है।

**न मे तीर्थं न मे सेवा न मे ज्ञानं न मे पदम्।**
**न मे बन्धो न मे जन्म न मे वाक्यं न मे रविः।।१३।।**

मेरा कोई तीर्थ, किसी प्रकार की सेवा, कोई ज्ञान और कोई पद नहीं है। मेरा कोई बन्धन, जन्म, वाक्य या सूर्य से भी कोई सरोकार नहीं है।

**न मे पुण्यं न मे पापं न मे कार्यं न मे शुभम्।**
**न मे जीव इति स्वात्मा न मे किंचित् जगत् त्रयम्।।१४।।**

मुझ में पाप-पुण्य और शुभ-अशुभ कर्म भी नहीं हैं। मेरा जीवन और आत्मा भी मेरी नहीं है। मुझे तीनों लोकों से कोई लेना-देना भी नहीं है।

**न मे मोक्षो न मे द्वैतं न मे वेदो न मे विधिः।**
**न मेऽन्तिकं न मे दूरं न मे बोधो न मे रहः।।१५।।**

मुझे मोक्ष की चाह नहीं है। मुझमें द्वैत या भेद की भावना भी नहीं है। मुझे कोई ज्ञान नहीं है न ही मुझे कोई विधि या अनुष्ठान आता है। मैं दूर, पास, एकान्त में भी नहीं हूँ। मेरी कोई पहिचान भी नहीं है।

**न मे गुरुर्न मे शिष्यो न मे हीनो न चाधिकः।**
**न मे ब्रह्म न मे विष्णुर्न मे रुद्रो न चन्द्रमाः।।१६।।**

मेरा कोई गुरु या शिष्य नहीं है। मैं कम या अधिक भी नहीं हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश और चन्द्रमा से भी मेरा कोई मतलब नहीं है।

**न मे पृथ्वी न मे तोयं न मे वायु र्न मे वियत्।**
**न मे वह्निर्न मे गोत्रं न मे लक्ष्यं न मे भवः।।१७।।**

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि इन पंचभूतों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा कोई गोत्र, कोई उद्देश्य, जन्म या पूरी तरह नष्ट न

हुआ संस्कार (भव) भी नहीं है। क्योंकि ऐसे संस्कार से विदेह या जीवन्मुक्त आदि अवस्था वाले योगियों का जन्म होता है।

**न मे ध्याता न मे ध्येयं न मे ध्यानं न मे मनुः।**
**न मे शीतं न मे चोष्णं न मे तृष्णा न मे क्षुधा।।१८।।**

मुझे ध्याता, ध्येय, ध्यान और चिन्तन-मनन से कोई सरोकार नहीं है। मुझे गर्मी-सर्दी और भूख-प्यास की भी चिन्ता नहीं है।

**न मे मित्रं न मे शत्रुर्न मे मोहो न मे जयः।**
**न मे पूर्वं न मे पश्चात् न मे चोर्ध्वं न मे दिशः।।१९।।**

मेरा कोई मित्र या शत्रु नहीं है। मुझमें विजय, मोह, ममता की भावना भी नहीं है। मेरे आगे, पीछे, ऊपर नीचे या कोई दिशा भी नहीं है।

**न मे वक्तव्यमल्पम् वा न मे श्रोतव्यम् अणु अपि।**
**न मे गन्तव्यमीषद्वा न मे ध्यातव्यम् अणु अपि।।२०।।**

न मुझे कुछ कहना है या कुछ सुनना है। मुझे कहीं जाना भी नहीं है और न कुछ सोचना ही है।

**न मे भोक्तव्यमीषद्वा न मे स्मर्तव्यमणवपि।**
**न मे भोगो न मे रागो न मे यागो न मे लयः।।२१।।**

मुझे कुछ भी खाने-पीने या सोचने की चिन्ता नहीं है। मेरे मन में किसी तरह के भोग की, लगाव की या यज्ञ करने की भी इच्छा नहीं है। मेरे मन में लय की स्थिति अर्थात् निद्रा और आलस्य के कारण कोई मनोवृत्ति भी नहीं है।

**न मे मौर्ख्यं न मे शान्तं न मे बन्धो न मे प्रियम्।**
**न मे मोदः प्रमोदो वा न मे स्थूलं न मे कृशम्।।२२।।**

मुझ में मूर्खता, शान्ति, बन्धन, प्रिय, आमोद-प्रमोद, मोटापे या दुर्बलता की कोई भावना भी नहीं है।

**न मे दीर्घं न मे ह्रस्वं न मे वृद्धिर्न मे क्षयः।**
**अध्यारोपोऽपवादो वा न मे चैकं न मे बहुः।।२३।।**

मुझ में छोटे-बड़े की, बढ़ने-घटने की, अपवाद और भ्रान्ति (अध्यारोप) की और अकेले या बहुत की भी भावना नहीं है।

**न मे आन्ध्यं न मे मान्द्यं न मे पट्विदमण्वपि।**
**न मे मांसं न मे रक्तं न मे मेदो न मे हि असृक्।।२४।।**

मुझ में अन्धापन, बुद्धि की कमी या कुशलता भी नहीं है। मुझमें मांस, रक्त, और चर्बी भी नहीं है।

**न मे मज्जा न मेऽस्थिर्वा न मे त्वग् धातुसप्तकम्।**
**न मे शुक्लं न मे रक्तं न मे नीलं न मे पृथक्।।२५।।**

मुझ में मज्जा, हड्डी, त्वचा आदि सात धातुएँ भी नहीं हैं। मुझे सफेद, लाल, नीले आदि रंगों से भी कोई सरोकार नहीं है।

**न मे तापो न मे लाभो मुख्यं गौणं न मे क्वचित्।**
**न मे भ्रान्तिर्न मे स्थैर्यं न मे गुह्यं न मे कुलम्।।२६।।**

मुझ में दुख, लाभ, प्रधान और अप्रधान, भ्रम, स्थिरता, गोपनीयता या कुल की कोई भावना भी नहीं है।

**न मे त्याज्यं न मे ग्राह्यं न मे हास्यं न मे नयः।**
**न मे वृत्तं न मे ग्लानिर्न मे शोष्यं न मे सुखम्।।२७।।**

मुझ में छोड़ने, लेने, हंसने, कोई उपाय करने या आचरण अपनाने की भावना भी नहीं है। मुझमें घृणा करने, सुखाने और सुख पाने की भी भावना नहीं है।

**न मे ज्ञाता न मे ज्ञानं न मे ज्ञेयं न मे स्वयम्।**
**न मे तुभ्यं न मे मह्यं न मे त्वं च न मे त्वहम्।।२८।।**

मुझ में ज्ञाता (जानने वाला), ज्ञान और ज्ञेय (जानने योग्य) की या स्वयम् (अपनेपन) की कोई भावना नहीं है। मुझ में तेरे-मेरे और मैं, तू की भावना भी नहीं है।

**न मे जरा न मे बाल्यं न मे यौवनमण्वपि।**
**अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मेति निश्चयः।।२९।।**

मुझ में बचपन, यौवन और बुढ़ापा भी नहीं है। मैं तो केवल ब्रह्म हूँ, ब्रह्म हूँ और निश्चितरूप से ब्रह्म ही हूँ।

**चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते।**
**ब्रह्मैवाहं चिदेवाहं परो वाहं न संशयः।।३०।।**

मैं चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का ही अंश हूँ इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं हूँ ऐसी भावना से ओत-प्रोत साधक निस्सन्देह जीवन्मुक्त होता है।

**स्वयमेव स्वयं हंसः स्वयमेव स्वयं स्थितः।**
**स्वयमेव स्वयं पश्येत् स्वात्मराज्ये सुखं वसेत्।**
**स्वात्मानन्दं स्वयं भोक्ष्येत् स जीवन्मुक्त उच्यते।।३१।।**

मैं हंस हूँ अर्थात् मैंने जीवन-मरण के बन्धन के कारणों को नष्ट कर डाला है इसलिये विशुद्ध तत्त्व जीवात्मा परमहंस श्रेणी का हो गया हूँ। मैं अपने आप ही आत्मभाव में स्थान पा गया हूँ। मैं अपने आप ही अपनी आत्मा का साक्षात् करता हूँ और अपनी स्वाधीन आत्मा के राज्य में सुखपूर्वक निवास करता हूँ। मैं अपनी आत्मा का आनन्द स्वयं भोगता हूँ। इस प्रकार की भावनाओं से ओतप्रोत साधक जीवन्मुक्त कहलाता है।

**स्वयमेवैकवीरोऽग्रे स्वयमेव प्रभुः स्मृतः।**
**स्वस्वरूपे स्वयं स्वप्स्येत् स जीवन्मुक्त उच्यते।।३२।।**

जिस साधक ने अपने ही परिश्रम और साधना से अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर लिया और जो अपनी इन्द्रियों और चित्तवृत्तियों का नियन्त्रण स्वयं करने में समर्थ हो गया है। जो साधक अपने वास्तविक स्वरूप में सोते जागते सदा बना रहता है उसे जीवन्मुक्त कहा जाता है।

**विदेहमुक्त**

**ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दमयः सुखी।**
**स्वच्छरूपो महामौनी वैदेही मुक्त एव सः।।३३।।**

जो ब्रह्मस्वरूप हो गया है। जिसकी आत्मा सदा शान्त रहती है। जो ब्रह्मानन्द से सरोबार है और इसलिये सुखी है। उसका चरित्र भी निर्मल है। वह सदा मौन रहता है। ऐसा साधक विदेहमुक्त कहलाता है क्योंकि उसका अपनी देह में अभिमान (अहंता या ममता का भाव) समाप्त हो चुका है। ऐसे योगी देह और इन्द्रियों में आत्म भावना से निरन्तर अभ्यास और

उपासना के द्वारा देह और इन्द्रियों का साक्षात् करके उनकी नश्वरता और जड़ता आदि को जान लेते हैं और इसके परिणामस्वरूप देह और इन्द्रियों की ओर से नितान्त विरक्त हो जाते हैं।

**सर्वात्मा समरूपात्मा शुद्धात्मा तु अहम् उत्थितः।**
**एकवर्जित एकात्मा सर्वात्मा स्वात्ममात्रकः।।३४।।**

सभी प्राणी मेरे ही जैसे हैं, उनकी आत्मा और मेरी आत्मा में कोई भेद नहीं है। मेरी आत्मा शुद्ध है अर्थात् राग-द्वेषादि से रहित है और उत्थित है अर्थात् मेरी आत्मा में छोटे-बड़े आदि की संकीर्ण मनोवृत्ति नहीं है। एक ब्रह्म को छोड़कर मेरी आत्मा अन्य सभी प्राणियों की आत्मा जैसी ही है। मैं आत्मस्वरूप हूँ।

**अजात्मा चामृतात्माहं स्वयमात्माहमव्ययः।**
**लक्ष्यात्मा ललितात्माहं तूष्णीमात्मस्वभाववान्।।३५।।**

मेरी आत्मा अज है अर्थात् वह जन्मरहित है। वह अमर है। मेरी आत्मा में कोई विकार या परिवर्त्तन भी नहीं आता। मैं अपने में ही मग्न रहता हूँ। मेरी आत्मा का एकमात्र लक्ष्य ब्रह्म ही है। मैं ब्रह्म के ललित स्वरूप का ही ध्यान करता हूँ और ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहने के कारण सदा मौन रहता हूँ। सांसारिक बन्धनों में फंसे हुए लोगों से अलग ब्रह्मज्ञानी संसार से उदासीन रहकर ब्रह्मवृत्ति के ध्यान में मग्न रहकर सदा मौन रहता है।

**आनन्दात्मा प्रियो ह्यात्मा मोक्षात्मा बन्धवर्जितः।**
**ब्रह्मैवाहं चिदेवाहमेवं वापि न चिन्त्यते।।३६।।**

मेरी आत्मा आनन्द से परिपूर्ण है, प्रिय है, मुक्त है और बन्धनरहित है। मैं ब्रह्म ही हूँ। मैं चैतन्यस्वरूप ही हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विचार मेरे मन में नहीं आता।

**चिन्मात्रेणैव यस्तिष्ठेद् वैदेही मुक्त एव सः।।३७।।**

जो साधक चैतन्यस्वरूप में ही सदा रहता है वह विदेह मुक्त ही होता है।

**निश्चयं च परित्यज्य अहं ब्रह्मेति निश्चयम्।**
**आनन्दभरितस्वान्तो वैदेही मुक्त एव सः।।३८।।**

अविद्या से उत्पन्न अन्य भावों को त्याग कर जो निश्चित रूप से मानता है कि मैं ब्रह्म ही हूँ अर्थात् ब्रह्म का एक अंश ही हूँ तथा जिस साधक का अन्त:करण आनन्दमग्न रहता है वह विदेह मुक्त ही होता है।

**सर्वमस्तीति नास्तीति निश्चयं त्यज्य तिष्ठति।**
**अहं ब्रह्मास्मि नास्मीति सच्चिदानन्दमात्रकः।।३९।।**

यह सारा जगत् है या नहीं इन सब बातों को छोड़कर जो केवल यह मानता है कि मैं ब्रह्म के अंश के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ तथा सच्चिदानन्द मात्र अर्थात् ब्रह्म की भांति ही सत् स्वरूप, चैतन्यस्वरूप और आनन्दस्वरूप ही हूँ।

**किंचित् क्वचित् कदाचित् च आत्मानं न स्पृशत्यसौ।**
**तूष्णीमेव स्थितस्तूष्णीं तूष्णीं सत्यं च किंचन।।४०।।**

जो साधक किसी भी वस्तु में कभी भी थोड़ा सा भी अपनापन नहीं समझता। जो सदा मौन रहता है। मौन रहना या सत्य को अपनाना उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं है। ब्रह्म की अखण्डाकार वृत्ति में लीन साधक मौन रहता है। इसका अभिप्राय है कि योगी को निर्विकल्प समाधि भंग होनी अच्छी नहीं लगती अत: वह सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर कैवल्य नाडिका के उज्ज्वल चिदाकाश में मग्न रहकर अपने अज्ञान से उत्पन्न संकल्प-विकल्पों से छुटकारा पाकर, निर्विकल्प ब्रह्म की अनुभूति करके स्वभावत: मौन ही रहता है।

**परमात्मा गुणातीतः सर्वात्मा भूतभावनः।**
**कालभेदं वस्तुभेदं देशभेदं स्वभेदकम्।।४१।।**

जो परमात्मस्वरूप है। जो सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों से परे है अर्थात् ये गुण जिसे प्रभावित नहीं करते। जो सभी प्राणियों के प्रति आत्मभाव या अपनेपन की भावना रखता है और सभी प्राणियों का कल्याण करता है। उसके लिये देश, काल, वस्तु और अपने बीच किसी तरह का भेद नहीं रहता।

**किंचिद् भेदं न तस्यास्ति किंचिद् वापि न विद्यते।**
**अहं त्वं तदिदं सोऽयं कालात्मा कालहीनकः।।४२।।**

उसके अन्त:करण में किसी भी प्रकार का कोई भी भेदभाव नहीं होता। उसमें तेरा-मेरा, यह-वह आदि की भेद भावना भी नहीं होती। वह स्वयं कालस्वरूप और कालहीन होता है अर्थात् जिसपर काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

**शून्यात्मा सूक्ष्मरूपात्मा विश्वात्मा विश्वहीनकः।**
**देवात्मा देवहीनात्मा मेयात्मा मेयवर्जितः।।४३।।**

जो शून्य स्वरूप है, सूक्ष्मरूप है, सम्पूर्ण विश्व की आत्मा है अर्थात् जिसके अन्त:करण में संसार के सभी प्राणियों के प्रति दया और सहानुभूति की भावना है। जो संसार से सर्वथा अलग है। उसका हृदय दिव्य भावनाओं से परिपूर्ण रहता है किन्तु इन दिव्य भावनाओं के कारण जिसमें अहंकार नहीं है। विदेह योगी यद्यपि अपने शरीर में सीमित (मेय) रहता है किन्तु उसका हृदय सीमित न रहकर सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना और स्नेह से भरा रहता है।

**सर्वत्र जड़हीनात्मा सर्वेषामन्तरात्मकः।**
**सर्वसंकल्पहीनात्मा चिन्मात्रोऽस्मीति सर्वदा।।४४।।**

उसका अन्त:करण जड़ता से रहित रहता है। चित्त की वृत्तिहीन अवस्था में गम्भीर अज्ञान से आच्छन्न होकर पुरुष या आत्मा के विषयज्ञान से शून्य हो जाना तथा अपने चित् स्वरूप की उपलब्धि से भी वंचित रहना जड़ अवस्था कहलाती है। उसमें सभी प्राणियों के प्रति अपनेपन की भावना होती है। वह सभी तरह के संकल्प-विकल्पों से अलग रहता है और उसके अन्त:करण में ''मैं चैतन्य स्वरूप या चिन्मात्र हूँ'' यही भाव सदा रहता है।

**केवलः परमात्माहं केवलो ज्ञानविग्रहः।**
**सत्तामात्रस्वरूपात्मा नान्यत् किंचित् जगत् भयम्।।४५।।**

मैं परमात्मा का अंशमात्र हूँ और केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरी आत्मा का स्वरूप सत्ता मात्र है अर्थात् 'मैं हूँ'। मुझे संसार से किसी भी प्रकार का कोई डर नहीं है।

**जीवेश्वरेति वाक् क्वेति वेदशास्त्राद्यहं त्विति।**
**इदं चैतन्यमेवेति अहं चैतन्यमित्यपि।।४६।।**

जीव, ईश्वर, वाणी, वेद-शास्त्र और स्वयं मैं भी आज कहां हैं? इन सबकी सत्ता चैतन्य शक्ति के कारण ही है और मेरी सत्ता भी ब्रह्म की चैतन्यशक्ति से ही है।

**इति निश्चयशून्यो यो वैदेही मुक्त एव सः।**
**चैतन्यमात्रसंसिद्धः स्वात्मारामः सुखासनः।।४७।।**

मैं चैतन्यस्वरूप स्वरूप हूँ भी या नहीं इस बारे में जो साधक निश्चितरूप से कुछ नहीं कहता वह विदेहमुक्त ही होता है। ऐसा साधक चैतन्य अवस्था में ही बना रहता है, अपने में ही मग्न रहता है और सुख पूर्वक बैठा रहता है।

**अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूलादिवर्जितः।**
**तुर्यतुर्यः परानन्दो वैदेही मुक्त एव सः।।४८।।**

जिसका आत्म स्वरूप सीमित नहीं रहा है। जिसमें अणु और स्थूल आदि की भावना नहीं है। वह तुरीयावस्था में रहता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन अवस्थाओं के बाद आत्मा की चतुर्थ अवस्था तुरीय अवस्था या सहज अवस्था आती है। इस अवस्था में योगी ब्रह्म के साथ तदाकार अर्थात् ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। इस स्थिति को प्राप्त योगी सदैव ध्यानमग्न रहता है। संसार का कोई भी विषय, पदार्थ या व्यक्ति उसकी समाधि भंग नहीं कर सकता। वह जीवन्मुक्त हो जाता है और अपने में ही मग्न रहता है। श्रुति में इस स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया गया है–

**आत्मक्रीडं आत्मरतिरेव ब्रह्मविदां वरिष्ठः।।**

मुण्डक उप० ३/१/४

ऐसा अन्तर्मुख योगी अपनी आत्मा के स्वरूप चिन्तन में सुख पाता है और आत्मा का स्वरूप जानकर उसी में रमता है। ऐसा योगी ब्रह्मज्ञानियों में सर्वोत्कृष्ट होता है।

**नामरूपविहीनात्मा परसंवित् सुखात्मकः।**
**तुरीयातीतरूपात्मा शुभाशुभविवर्जितः।।४९।।**

जो नाम और रूप से रहित है, उत्कृष्ट सम्पत्ति अर्थात् सर्वोत्कृष्ट ज्ञान से परिपूर्ण है, सुखस्वरूप है तुरीय अवस्था से भी आगे हैं और शुभ-अशुभ के भाव से रहित है।

**योगात्मा योगयुक्तात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः।**
**गुणागुण विहीनात्मा देशकालादिवर्जितः।।५०।।**

जो स्वयं साक्षात् योग है। जिसका मन योग में ही लगा रहता है। जिसके अन्त:करण में बन्धन या मुक्ति की भावना मिट चुकी है। जिस पर त्रिगुणों की सत्ता का या इनके अभाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और जो देश, काल आदि की सीमाओं को लांघ चुका है।

**साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किंचित् किंचिन्न किंचन।**
**यस्य प्रपञ्चमानं न ब्रह्माकारमपीह न।।५१।।**

जो साक्षी अर्थात् शुद्ध चेतन या बुद्धि वृत्ति से युक्त या इस वृत्ति से रहित होने की भावना से परे है। जिसे इस संसार का या रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श इन्द्रियों के इन विषयों का भान नहीं होता। उसे कभी-कभी ब्रह्माकार वृत्ति का भी भान नहीं होता।

**स्वस्वरूपे स्वयंज्योतिः स्वस्वरूपे स्वयंरतिः।**
**वाचामगोचरानन्दो वाङ्मनोगोचरः स्वयम्।।५२।।**
**अतीतातीतभावो यो वैदेही मुक्त एव सः।**

जो अपने स्वरूप में स्थित स्वयं ज्योति और स्वयंरति है अर्थात् आत्मप्रकाशस्वरूप और आत्मानन्दस्वरूप है। वाणी से वर्णन न किये जा सकने वाले आनन्द से जो परिपूर्ण है और जो स्वयं अपनी वाणी और मन को जानता है।

जो बीते हुए काल से भी परे रहता है वह विदेह मुक्त ही होता है। बीते हुए या आने वाले समय को या अतीत-अनागत काल को हम नहीं जान सकते क्योंकि यह सूक्ष्म होता है परन्तु बना रहता है। सर्वज्ञयोगी की दृष्टि में कुछ भी अतीत-अनागत नहीं होता, अपितु सभी कुछ वर्त्तमान रहता है।

**चित्तवृत्तेरतीतो यः चित्तवृत्यवभासकः।।५३।।**
**सर्ववृत्तिविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः।**

जो समाधि मग्न होने के कारण चित्त की वृत्तियों (विचार की धारा) से रहित है किन्तु चित्त की वृत्तियों का प्रकाशक भी है और सभी चित्तवृत्तियों से शून्य भी है ऐसा योगी विदेह मुक्त कहलाता है। विदेह अवस्था में चित्त का स्वरूप नष्ट हो जाता है।

**तस्मिन् काले विदेहीति देहस्मरणवर्जितः।।५४।।**

जिस समय योगी को अपनी देह की याद भी नहीं रहती उस समय वह योगी विदेह कहलाता है।

**ईषन्मात्रं स्मृतं चेद्यस्तदा सर्वसमन्वितः।**
**परैरदृष्टबाह्यात्मा परमानन्दचित् घनः।।५५।।**

यदि योगी को कुछ याद भी रहता है तो उस स्मरण में सभी बातें रहती हैं। योगी का बाह्य और आन्तरिक स्वरूप लोग नहीं जान पाते। उसका चित्त परमानन्द से सरोबार रहता है।

**परैरदृष्टबाह्यात्मा सर्ववेदान्तगोचरः।**
**ब्रह्मामृतरसास्वादो ब्रह्मामृतरसायनः।।५६।।**

दूसरे लोग योगी के बाह्य स्वरूप को नहीं समझते। विदेह मुक्त योगी का स्वरूप वेदान्त शास्त्र में वर्णित है। विदेह मुक्त योगी ब्रह्मामृत रस का आस्वादन करता है और उसका रसायन ब्रह्मामृत ही होता है।

**ब्रह्मामृतरसासक्तः ब्रह्मामृतरसः स्वयम्।**
**ब्रह्मामृतरसे मग्नो ब्रह्मानन्दशिवार्चनः।।५७।।**

जो ब्रह्मामृत के रस से परिपूर्ण है और स्वयं ब्रह्मामृतरस है। जो ब्रह्मामृत के रस में मग्न है और जिसके लिये ब्रह्मानन्द का अनुभव ही शिव की या अपने आराध्य देव की पूजा है।

**ब्रह्मानन्दरसे तृप्तो ब्रह्मानन्दानुभावकः।**
**ब्रह्मानन्दशिवानन्दो ब्रह्मानन्दरसप्रभः।।५८।।**

जो ब्रह्मानन्द के रस से तृप्त है और ब्रह्मानन्द की अनुभूति कराने वाला है। जो स्वयं ब्रह्मानन्द और कल्याणकारी आनन्द स्वरूप या शिवानन्दमय है। वह स्वयं ब्रह्मानन्दमय रस ही है।

**ब्रह्मानन्दपरं ज्योतिः ब्रह्मानन्दनिरन्तरः।**
**ब्रह्मानन्दरसान्नादो ब्रह्मानन्दकुटुम्बकः।।५९।।**

जिसके लिये ब्रह्मानन्द सर्वोत्कृष्ट प्रकाश है। जो निरन्तर ब्रह्मानन्द में डूबा रहता है। ब्रह्मानन्दरस जिसका भोजन है और जिसका परिवार ब्रह्मानन्द ही है।

**ब्रह्मानन्दरसारूढो ब्रह्मानन्दैकचिद्घनः।**
**ब्रह्मानन्दरसोद्वाहो ब्रह्मानन्दरसम्भरः।।६०।।**

जो ब्रह्मानन्द रस पर सवार है। ब्रह्मानन्द ही जिसके चैतन्य का सार है। जो ब्रह्मानन्द के रस से भरा है और ब्रह्मानन्द ही जिसकी सम्पत्ति है।

**ब्रह्मानन्दजनैर्युक्तः ब्रह्मानन्दात्मनि स्थितः।**
**आत्मरूपमिदं सर्वं आत्मनोऽन्यन्न किंचन।।६१।।**

जो ब्रह्मानन्द की अनुभूति करने वाले साधकों के साथ रहता है। जिसके लिये ब्रह्मानन्द उसकी आत्मा ही है। जो यह अनुभव करता है कि दिखाई देने वाला यह सारा जगत् उसका आत्मस्वरूप ही है और इसके सिवाय कुछ नहीं है।

**सर्वमात्माहमात्मास्मि परमात्मा परात्मकः।**
**नित्यानन्दस्वरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः।।६२।।**

मेरी आत्मा अन्य सभी आत्माओं के समान है। मैं स्वयं परमेश्वर का अंश हूँ और परात्मक हूँ अर्थात् शब्द और ज्ञान से रहित अर्थमात्र का प्रत्यक्ष करने वाला हूँ। मेरी आत्मा नित्यानन्दस्वरूप है। यह मानने वाला योगी विदेह मुक्त ही होता है।

विदेहमुक्ति से पहिले योगी ने अन्न आदि जो कुछ खाया था, परिवार का पालन-पोषण किया था, परमात्मा की पूजा की थी वह सब अब ब्रह्मानन्द ही बन जाती है। विदेह मुक्ति की उत्कृष्ट अवस्था के कारण योगी का अपना कुछ भी नहीं रहता।

**पूर्णरूपो महानात्मा प्रीतात्मा शाश्वतात्मकः।**
**सर्वान्तर्यामिरूपात्मा निर्मलात्मा निरात्मकः।।६३।।**

जो पूर्णरूप है, महान् आत्मा, प्रिय आत्मा, शाश्वत अर्थात् सदा वर्तमान आत्मा, सर्वान्तर्यामी अर्थात् सभी प्राणियों क अन्तःकरण में विराजमान आत्मा, निर्मल आत्मा अर्थात् राग-द्वेष आदि दुखदायी मनोवृत्तियों से रहित आत्मा से सम्पन्न है और निरात्म अर्थात् ईश्वरसाक्षि चिन्मात्र है।

**निर्विकारस्वरूपात्मा शुद्धात्मा शान्तरूपकः।**
**शान्ताशान्तस्वरूपात्मा नैकात्मत्वविवर्जितः।।६४।।**

जो निर्विकारस्वरूप आत्मा अर्थात् किसी भी मनोवृत्ति से रहित आत्मा वाला है। जिसकी आत्मा शुद्ध और शान्त है। जिसकी आत्मा बीते हुए किसी विचार से और मन में उठने वाले किसी विचार से शून्य है और एकात्मता अर्थात् अभेद का आरोप, जैसे बुद्धि और पुरुष को एक समझने वाली नहीं है।

**जीवात्मपरमात्मेति चिन्तासर्वस्व वर्जितः।**
**मुक्तामुक्तस्वरूपात्मा मुक्तामुक्तविवर्जितः।।६५।।**

जो मानता है कि जीवात्मा भी परमात्मा का एक अंश है। जो सभी प्रकार की चिन्ताओं से रहित है। जिसे यह परवाह नहीं कि मैं मुक्त हूँ या जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा हूँ। विदेह योगी मुक्ति और बन्धन की चिन्ता नहीं करता क्योंकि विदेह मुक्त अवस्था में चित्त का स्वरूप नष्ट हो जाता है।

**बन्धमोक्षस्वरूपात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः।**
**द्वैताद्वैतस्वरूपात्मा द्वैताद्वैतविवर्जितः।।६६।।**

जो बन्ध-मोक्ष स्वरूप आत्मा वाला है और जिसके मन में बन्धन और मुक्ति की चिन्ता नहीं है। जिसके मन में द्वैत अर्थात् भेद की या अद्वैत की अर्थात् आत्मा-परमात्मा की एकता की भावना है और साथ ही द्वैत-अद्वैत की भावना भी जिसके मन में नहीं है।

**सर्वासर्वस्वरूपात्मा सर्वासर्वविवर्जितः।**
**मोदप्रमोदरूपात्मा मोदादिविनिवर्जितः।।६७।।**
**सर्वसंकल्पहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः।।**

वह महद् आदि सभी तत्त्वों को जानने वाला या इनके ज्ञान के प्रति उदासीन रहने वाला, बन्ध-मोक्ष, द्वैत-अद्वैत आदि के विचारों से ऊपर उठा हुआ, प्रसन्नता से युक्त और हर्ष, प्रसन्नता आदि से उदासीन केवल अद्वैत आत्मा की भावना वाला होता है।

जो सभी प्रकार के संकल्प-विकल्पों से रहित आत्मा वाला है वह निश्चय ही विदेह मुक्त है।

**निष्कलात्मा निर्मलात्मा बुद्धात्मापुरुषात्मकः।।६८।।**

जो निष्कल अर्थात् प्राण आदि कलाओं या अवयवों से रहित आत्मा

वाला है। जिसका आत्मा स्वच्छ है अर्थात् जो आत्मा; अविद्या आदि क्लेशों या दुख देने वाले ज्ञान से शून्य है और जो बुद्धात्मा है अर्थात् बोध स्वरूप आत्मा वाला है।

**आनन्दादिविहीनात्मा अमृतात्मामृतात्मकः।**
**कालत्रयस्वरूपात्मा कालत्रयविवर्जितः।।६९।।**

जिसकी आत्मा सांसारिक आनन्दों सुख-दुख, गर्मी-सर्दी, मान-अपमान आदि संसार के सामान्य अनुभवों के प्रति उदासीन है। जिसका आत्मा अमृतस्वरूप है अर्थात् वह अपने को सदा वर्त्तमान चैतन्य सत्ता का अंश अनुभव करता है। जिसके लिये जीवन-मरण आदि सांसारिक घटनाओं का कोई अस्तित्व नहीं है। जिसका आत्मा भूत, भविष्य और वर्त्तमान इन तीनों कालों में एकरस है और जिस पर इन तीनों कालों का कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता अर्थात् कालत्रय रहित है।

**अखिलात्मा हि अमेयात्मा मानात्मा मानवर्जितः।**
**नित्यप्रत्यक्षरूपात्मा नित्यप्रत्यक्षनिर्णयः।।७०।।**

जिसकी आत्मा में सभी प्राणियों के प्रति सद्भाव है। जिसकी आत्मा में उदारता, करुणा आदि भावनाओं की कोई सीमा नहीं है। जो मान-अपमान के प्रति सर्वथा उदासीन है। जिसकी आत्मा ब्रह्म का सदा साक्षात्कार करती रहती है और सदा अनुभव करती है कि मैं ब्रह्म का साक्षात्कार करती रहती हूँ।

**अन्यहीनस्वभावात्मा अन्यहीनस्वयंप्रभः।**
**विद्याविद्यादिमेयात्मा विद्याविद्यादिवर्जितः।।७१।।**

विदेह मुक्त दूसरे लोगों को अपने से हीन या छोटा नहीं समझता। वह अपने निश्छल आचरण के कारण स्वयमेव प्रकाशमान रहता है अर्थात् लोग उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। उसमें अपने ज्ञान की और दूसरों के अज्ञान की भी भावना नहीं होती है। वह विद्या और अविद्या के विवाद में भी नहीं फंसता।

**नित्यानित्यविहीनात्मा इहामुत्रविवर्जितः।**
**शमदमादिषट्कशून्यात्मा मुमुक्षुत्वादिवर्जितः।।७२।।**

जिसकी आत्मा नित्य-अनित्य के सन्देहों से परे है और इहलोक तथा

परलोक के सुख-दुखों की चिन्ता से दूर है। जिसकी आत्मा शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, और समाधान इन छह सम्पत्तियों के अभिमान से सर्वथा रहित है और जो मोक्ष आदि पाने की इच्छा से रहित है।

**स्थूलदेहविहीनात्मा सूक्ष्मदेहविवर्जितः।**
**कारणादिविहीनात्मा तुरीयादिविवर्जितः।।७३।।**

विदेहमुक्त योगी स्थूल शरीर, सूक्ष्मशरीर, कारण शरीर; शरीर की इन तीनों अवस्थाओं और आत्मा की चौथी या तुरीय अवस्था के प्रति भी उदासीन रहता है।

**स्थूल शरीर :** दिखाई देने वाला शरीर। स्थूल शरीर रज और वीर्य से उत्पन्न होता है तथा अन्न से बढ़ता है। स्थूल - शरीर ही सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर को धारण करता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच महाभूतों से बना स्थूल शरीर स्थूल कर्मफलों को भोगता है। अन्न से बढ़ने के कारण स्थूल शरीर अन्नमय कोश कहलाता है।

**सूक्ष्म शरीर :** पाँच महाभूतों को बनाने वाले सूक्ष्म महाभूतों से बने ज्योतिर्मय कोश के अन्दर पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों तथा मन और बुद्धि सहित १७ तत्त्वों से सूक्ष्म शरीर बना हुआ है। सूक्ष्म शरीर, विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय इन तीन कोशों से युक्त होता है।

**कारण शरीर :** आनन्दमय कोश रूप अज्ञान का आवरण है। कारण-शरीर; प्रकृति के सूक्ष्मतम तत्त्व त्रिगुण अर्थात् सत्व, रजस् और तमस् में से सत्त्वगुण की प्रधानता से बना होने के कारण ज्योतिर्मय और प्रकाशशील है। 'ज्योतिषा आवृतः' अर्थात् अन्य अनेक ज्योतियों से घिरा हुआ है।

अहंकार और चित्त से बना कारण शरीर; हृदय-गुहा में स्थित है। यहीं पर जीवात्मा का निवास है। विश्वपति के साथ जीवात्मा इसी में रहता है। इसे 'ब्रह्मपुर' भी कहते हैं।

**तुरीयावस्था :** सहज अवस्था। आत्मा की चतुर्थ अवस्था, जिसमें आत्मा; ब्रह्म के साथ तदाकार हो जाती है।

**अन्नकोशविहीनात्मा प्राणकोशविवर्जितः।**
**मनःकोशविहीनात्मा विज्ञानादिविवर्जितः।।७४।।**

मेरी आत्मा; अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश और विज्ञानमय कोश स्थूल और सूक्ष्म शरीरों के इन कोशों से अलग है।

**आनन्दकोशहीनात्मा पञ्चकोशविर्जितः।**
**निर्विकल्पस्वरूपात्मा सविकल्पवर्जितः।।७५।।**

मेरी आत्मा आनन्दमय कोश सहित स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर इन तीनों शरीरों के पाँचों कोशों से अलग है। मेरी आत्मा; विकल्पों से रहित निर्विकल्पस्वरूप अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के भान से रहित अखण्ड ब्रह्माकार अन्तःकरण की वृत्ति वाली है। विकल्प का अर्थ है वास्तविक अर्थ से रहित कोई पद और वाक्य सुनकर चित्त में उठने वाली अस्पष्ट सी वृत्ति अथवा अवास्तविक पदार्थ का पद के द्वारा वास्तविक पदार्थ के समान व्यवहार करना, जैसे राहु का सिर, अनन्त, असंख्य।

**दृश्यानुविद्धहीनात्मा शब्दविद्धविवर्जितः।**
**सदा समाधिशून्यात्मा आदिमध्यान्तवर्जितः।।७६।।**

मेरी आत्मा दिखाई देने वाले (दृश्य) सारे संसार के बन्धनों से अलग है। शब्दज्ञान के बन्धन से भी रहित है। मेरी आत्मा समाधि रहित है अर्थात् मेरा चित्त सदा ब्रह्मलीन रहता है अतः समाधि लगाने की आवश्यकता ही नहीं अनुभव होती। इसी प्रकार मेरी आत्मा में किसी वस्तु या घटना के आदि (प्रारम्भ) मध्य और अन्त की भावना भी नहीं रहती, क्योंकि वह सदा ब्रह्मभाव से परिपूर्ण है।

**प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा अहंब्रह्मास्मिवर्जितः।**
**तत्त्वमस्यादिहीनात्मा अयमात्मेत्यभावकः।।७७।।**

मेरी आत्मा प्रज्ञानवाक्य अर्थात् 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मस्मि', 'तत्त्वमसि' और 'अयमात्माब्रह्म' इन महावाक्यों से रहित है क्योंकि जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त योगी का देह में अभिमान समाप्त हो जाता है। ऐसे योगी देह और इन्द्रियों में आत्मभावना से निरन्तर अभ्यास व उपासना द्वारा इनका साक्षात् कर इनकी नश्वरता और जड़ता आदि को जान लेते हैं और इसके परिणाम-स्वरूप देह और इन्द्रियों की ओर से नितान्त विरक्त हो जाते हैं। इस

अवस्था में पहुँचे योगी के लिये श्रुति के महावाक्य आवश्यक नहीं रहते। फिर भी जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त योगी संसार में रहकर कार्य कर सकता है। शंकराचार्य, दत्तात्रेय और जड़भरत आदि अनेक योगी जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त की अवस्था प्राप्त कर चुके थे।

**ओंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः।**
**अवस्थात्रयहीनात्मा अक्षरात्मा चिदात्मकः।।७८।।**

विदेहमुक्त योगी को ओंकार जप की या किसी वाच्य अर्थात् जानने या कहने योग्य (बोध्य या अभिधेय) वाक्य की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति शरीर की इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठ जाता है। ब्रह्मलीन योगी अपने को अक्षर अर्थात् अनश्वर और चिदात्मक या चैतन्यस्वरूप ही मानता है।

**आत्मज्ञेयादिहीनात्मा यत्किंचिदिदमात्मकः।**
**भानाभानविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः।।७९।।**

विदेह मुक्त यह नहीं कहता कि मुझे आत्मा-परमात्मा का ज्ञान है वह तो यही कहता है कि मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ। वह यह भी नहीं कहता कि मुझे सूक्ष्म जगत् के अलौकिक दृश्य दीखते हैं या नहीं दीखते।

**आत्मानमेव वीक्षस्व आत्मानं बोधय स्वकम्।**
**स्वमात्मानं स्वयं भुङ्क्ष्वस्वस्थो भव षडानन।।८०।।**

हे षडानन! तुम आत्मचिन्तन करो और अपनी आत्मा को जानने का प्रयत्न करो। तुम अपनी आत्मा का आनन्द स्वयं अनुभव करो और अपने ही अन्तःकरण में ध्यानमग्न रहो।

**स्वमात्मनि स्वयं तृप्तः स्वमात्मनि स्वयं चर।**
**आत्मानमेव मोदस्व वैदेही मुक्तिको भवेत्।।**

**इत्युपनषित्**

तुम अपनी आत्मा के आनन्द से तृप्त अपने अन्तःकरण में ध्यानमग्न और आत्मानन्द से परिपूर्ण रहकर विदेहमुक्त बन जाओ।

**।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।**

# पञ्चम अध्याय

**निदाघो नाम वै मुनिः पप्रच्छ ऋभुं भगवन्तम् आत्म अनात्मविवेकम् अनुब्रूहि इति।**

निदाघ मुनि ने भगवान ऋभु से प्रार्थना की कि आप मुझे आत्म तत्त्व और अनात्म पदार्थों के बारे में बताइये।

**स होवाच ऋभुः।**

ऋभु ने उत्तर दिया:-

**सर्ववाचोऽवधिर्ब्रह्म सर्वचिन्तावधिर्गुरुः।**
**सर्वकारणकार्यात्मा कार्यकारणवर्जितः।।१।।**

सभी वाणियों की अर्थात् वेदशास्त्र आदि की अवधि या अन्तिम सीमा ब्रह्म है। वह ब्रह्म सभी प्रकार के चिन्तनों या विचारों की भी अन्तिम सीमा है और सबका गुरु है। **पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।। पा०यो १/२६।।** ईश्वर प्राचीन कपिल आदि महर्षियों के भी गुरु हैं क्योंकि वे काल के बन्धन से मुक्त हैं। ब्रह्म; संसार के सभी कार्यों के मूल कारण हैं किन्तु ब्रह्म का कोई कारण नहीं है।

**सर्वसंकल्परहितः सर्वनादमयः शिवः।**
**सर्ववर्जित चिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः।।२।।**

ब्रह्म; सभी प्रकार के संकल्प-विकल्पों या चिन्ताओं से रहित हैं। ब्रह्म में सभी प्रकार के अनाहत नाद या ध्वनियाँ समाई हुई हैं। वे शिव या कल्याणमय हैं। वे सभी प्रकार के नाम-रूपों से रहित, चैतन्यमात्र, आनन्दस्वरूप और सर्वोत्कृष्ट हैं।

**सर्वतेजःप्रकाशात्मा नादानन्दमयात्मकः।**
**सर्वानुभव निर्मुक्तः सर्वध्यान विवर्जितः।।३।।**

ब्रह्म; सभी प्रकार के तेजोमय पदार्थों के और प्रकाशों के अन्दर विराजमान हैं। योगी जिस अनाहत नाद को सुनकर आनन्द की अनुभूति करते हैं उस नाद में ब्रह्म समाये हुए हैं। ब्रह्म सभी प्रकार के अनुभवों से और सभी तरह के ध्यान से रहित हैं।

**सर्वनादकलातीत एष आत्माहमव्ययः।**
**आत्मानात्मविवेकादि भेदाभेदवर्जितः।।४।।**

वह अनाहत नाद की सभी कलाओं से अलग हैं। यही आत्मा हैं, अव्यय हैं अर्थात् उनमें कोई विकार या दोष उत्पन्न नहीं होता। इसी ब्रह्म का अंश मैं या मेरी आत्मा है। वह ब्रह्म आत्मा या अनात्मा आदि के विवेक आदि से और भेद-अभेद से अर्थात् बुद्धि और पुरुष के बीच भेद के ज्ञान से रहित हैं।

**शान्ताशान्तादिहीनात्मा नादान्तर्ज्योतिरूपकः।**
**महावाक्यार्थतो दूरो ब्रह्मास्मीत्यतिदूरतः।।५।।**

उन्हें शान्त अवस्था या अशान्त अवस्था आदि की सीमाओं में सीमित नहीं किया जा सकता। शरीर में कुण्डलिनी शक्ति के व्यक्त होने पर उत्पन्न वेग से पैदा हुआ पहिला स्फोट अनाहत नाद कहलाता है। इस नाद से प्रकाश होता है। इसी तथ्य को नादान्तर्ज्योतिरूप शब्द से प्रकट किया गया है क्योंकि अनाहत नाद का प्रकाश ब्रह्म की अनुभूति कराता है। वह ब्रह्म, 'तत्त्वमसि', 'अहम् ब्रह्मास्मि', 'प्रज्ञानं ब्रह्म' आदि महावाक्यों के अर्थों से भी बहुत परे है।

**तच्छब्दवर्ज्यस्त्वं शब्दहीनो वाक्यार्थ वर्जितः।**
**क्षराक्षरविहीनो यो नादान्तर्ज्योतिरेव सः।।६।।**

हम ब्रह्म को महावाक्यों के 'तत्', 'त्वम्' आदि शब्दों से या महावाक्यों के अर्थ से भी नहीं जान सकते। वह ब्रह्म क्षर और अक्षर अर्थात् नष्ट होने वाला या नष्ट न होने वाला भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि ब्रह्म परमाक्षर है वह ब्रह्म अनाहत नाद के अन्दर समायी हुई ज्योति या प्रकाशरूप है।

**अखण्डैकरसो वाहमानन्दोऽस्मीति वर्जितः।**
**सर्वातीतस्वभावात्मा नादान्तर्ज्योतिरेव सः।। ७।।**

ब्रह्म अखण्ड एकरस की अनुभूति से या मैं आनन्द्स्वरूप हूँ इस अनुभव से भी परे हैं। वे सभी प्रकार के स्वभावों से भी परे हैं। वह ब्रह्म अनाहतनाद के अन्दर समायी हुई ज्येति या प्रकाशरूप हैं।

**आत्मेति शब्दहीनो य आत्मशब्दार्थवर्जितः।**
**सच्चिदानन्दहीनो य एषैवात्मा सनातनः।।८।।**

ब्रह्म को आत्मा शब्द से या आत्मा शब्द के अर्थ से भी नहीं जाना जा सकता। उसे सच्चिदानन्द शब्द के सत्, चित्, आनन्द विशेषणों से भी नहीं बताया जा सकता है। ब्रह्म सत्य सनातन आत्मस्वरूप हैं।

**स निर्देष्टुमशक्यो यो वेदवाक्यैरगम्यतः।**
**यस्य किंचिद् बहिर्नास्ति किंचिदन्तः कियन्न स।।९।।**

उस ब्रह्म का निर्देश या वर्णन शब्दों से या वेदवाक्यों अर्थात् वेदमन्त्रों से भी नहीं किया जा सकता। उसके अन्दर या बाहर कुछ भी नहीं है अर्थात् उसका कोई स्वरूप भी नहीं है।

**यस्य लिंङ्ग प्रपञ्चं वा ब्रह्मैवात्मा न संशयः।**
**नास्ति यस्य शरीरं वा जीवो वा भूत भौतिकः।।१०।।**

ब्रह्म की पहिचान या लिंग यह प्रपञ्च अर्थात् संसार और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव में आने वाले रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पाँच विषय ही हैं। ब्रह्म ही सभी प्राणियों की आत्मा है इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता। कोई शरीर, कोई प्राणी या कोई भौतिक पदार्थ भी ब्रह्म की पहिचान नहीं है।

**नामरूपादिकं नास्ति भोज्यं वा भोगभुक् च वा।**
**सद् वा असद् वा स्थितिर्वापि यस्य नास्ति क्षराक्षरम्।।११।।**

ब्रह्म का कोई नाम या रूप नहीं है। कोई पदार्थ उसका भोज्य अर्थात् भोजन या उपभोग करने योग्य नहीं है, न ही वह किसी भोग्य पदार्थ को अपने उपयोग में लाता है। उसकी स्थिति सत् या असत् भी नहीं है वह क्षर और अक्षर अर्थात् विनाशशील या अविनाशी भी नहीं है।

**गुणं वा विगुणं वापि सम आत्मा न संशयः।**
**यस्य वाच्यं वाचकं वा श्रवणं मननं न वा।।१२।।**

ब्रह्म न तो सत्व, रज, तम इन तीन गुणों वाला है और न ही इन गुणों से रहित। वह सभी के लिये समान है अर्थात् उसमें किसी भी जीव के

लिये राग-द्वेष आदि की भावना नहीं है। उसका कोई वाच्य या वाचक अर्थात् नाम-रूप भी नहीं है। उसे सुना भी नहीं जा सकता और उसके स्वरूप का पूरी तरह मनन या ध्यान भी नहीं किया जा सकता।

**गुरुशिष्यादि भेदं वा देवलोकाः सुरासुराः।**
**यत्र धर्ममधर्मं वा शुद्धं वा अशुद्धम् अणुअपि।।१३।**

ब्रह्म में गुरु-शिष्य का, सुर-असुर का और देवलोक-मर्त्यलोक का कोई भेद-भाव नहीं है। उसमें धर्म-अधर्म और शुद्ध-अशुद्ध का तनिक भी भेद नहीं है।

**यत्र कालमकालं वा निश्चयः संशयो न हि।**
**यत्र मन्त्रममन्त्रं वा विद्याविद्ये न विद्यते।।१४।।**

उसमें काल का या अकाल का भेद नहीं है। उसमें निश्चय और संशय की भावना भी नहीं है। उसमें मन्त्र, मन्त्रविरुद्ध और विद्या-अविद्या का भाव नहीं है।

**द्रष्टृदर्शनदृश्यं वा ईषन्मात्रं कलात्मकम्।**
**अनात्मेति प्रसङ्गो वा ह्यनात्मेति मनोऽपि वा।।१५।।**

वह द्रष्टा (देखने वाला) दर्शन और दृश्य के स्वरूप से सर्वथा भिन्न है। उसमें आत्मा-अनात्मा और मन के कार्य संसार की भावना भी नहीं है।

**अनात्मेति जगत् वापि नास्ति नास्तीति निश्चनु।**
**सर्वसंकल्पशून्यत्वात् सर्वकार्यविवर्जनात्।।१६।।**

ब्रह्म सभी प्रकार के संकल्प-विकल्पों से और सभी तरह के कार्य-कारण भावों से रहित हैं इसलिये उनमें अनात्म तत्त्व की भावना या इस जगत् की भावना भी नहीं है।

**केवलं ब्रह्ममात्रत्वात् नास्ति अनात्मेति निश्चिनु।**
**देहत्रयविहीनत्वात् कालत्रयविवर्जनात्।।१७।।**

ब्रह्म देहत्रय से रहित है अर्थात् ब्रह्म का स्थूल शरीर, सूक्ष्म-शरीर और कारण शरीर इन तीन प्रकारों का शरीर नहीं है। ब्रह्म; अतीत, वर्तमान और भविष्य इन तीन कालों से भी नहीं बंधे हैं। वे तो केवल ब्रह्ममात्र हैं और निश्चय ही अनात्म नहीं हैं।

**जीवत्रयगुणाभावात्तापत्रयविर्जनात्।**
**लोकत्रयविहीनत्वात् सर्वमात्मेतिशासनात्।।१८।।**

ब्रह्म में प्राणियों से लगे रहने वाले सत्व, रज और तम ये तीन गुण तथा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन प्रकार के दुख एवम् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक ये तीन लोक भी नहीं हैं। ब्रह्म तो सर्वात्मस्वरूप हैं अर्थात् वे सभी प्राणियों और पदार्थों में समाये हुए हैं।

**चित्ताभावाच्चिन्तनीयं देहाभावाज्जरा न च।**
**पादाभावाद् गतिर्नास्ति हस्ताभावात् क्रिया न च।।१९।।**

ब्रह्म चित्त से रहित है अत: वह हमारे चिन्तन या सोच-विचार में नहीं आ पाते। ब्रह्म का कोई शरीर नहीं है इसलिये उनमें वृद्धावस्था भी नहीं है। ब्रह्म के पैर नहीं हैं अत: उनमें गति नहीं है और उनके हाथ न होने के कारण उनमें कोई क्रिया ही है।

**मृत्युर्नास्ति जननाभावात् बुद्ध्यभावात् सुखादिकम्।**
**धर्मो नास्ति शुचिर्नास्ति सत्यं नास्ति भयं न च।।२०।।**

ब्रह्म कभी जन्म नहीं लेते अत: वे मरते भी नहीं। उनमें बुद्धि न होने के कारण सुख-दुख आदि की अनुभूति भी नहीं है। वे धर्म, शुचिता या पवित्रता, सत्य और भय आदि के भावों से भी परे हैं।

**अक्षरोच्चारणं नास्ति गुरुशिष्यादि नास्त्यपि।**
**एकाभावे द्वितीयं न द्वितीयेपि न चैकता।।२१।।**

ब्रह्म अक्षर या क, ख, ग आदि वर्ण नहीं बोलते। उनमें गुरु-शिष्य आदि का भाव भी नहीं है। इनके समान कोई और नहीं है इसलिये ब्रह्म को एक या दो भी नहीं कह सकते वे तो अद्वितीय ही हैं।

**सत्यत्वमस्ति चेत् किंचित् असत्यं न च सम्भवेत्।**
**असत्यत्वं यदि भवेत् सत्यत्वं न घटि[illegible]।।२२।।**

यदि ब्रह्म में तनिक भी सत्य हो तो असत्य की सम्भावना नहीं रहती। यदि उनमें असत्य हो तो वे सत्य हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता।

**शुभं यदि अशुभं विद्धि अशुभात् शुभम् इष्यते।**
**भयं यदि अभयं विद्धि अभयात् भयम् आपतेत्।।२३।।**

शुभ-अशुभ और भय-अभय का प्रयोग पारस्परिक सापेक्ष भाव से ही किया जाता है। ब्रह्म; शुभ, अशुभ, भय, अभय आदि के विचारों से सर्वथा अलग हैं।

**बन्धत्वमपि चेन्मोक्षो बन्धाभावे क्व मोक्षता।**
**मरणं यदि चेज्जन्म जन्माभावे मृतिर्न च।।२४।।**

यदि मोक्ष हो तो जीवन-मरण का बन्धन होगा किन्तु कोई बन्धन न होने के कारण ब्रह्म के मोक्ष का या संसार से छूटने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि जन्म होता है तो मृत्यु भी होती है परन्तु उनका जन्म न होने पर मृत्यु कहाँ?

**त्वमित्यपि भवेच्चाहं त्वं नो चेत् अहमेव न।**
**इदं यदि तद् एवास्ति तत् अभावात् इदं न च।।२५।।**

यदि ब्रह्म में त्वम् का भाव मानें तो अहम् का भाव स्वयं उत्पन्न होगा। यदि त्वं का भाव है ही नहीं तो अहम् का भाव भी नहीं हो सकता।

इसी प्रकार यदि इदम् या यह की भावना होगी तो तत् अर्थात् वह की भावना भी होगी। वह का भाव न रहने पर यह का भाव भी नहीं रहेगा।

**अस्तीति चेत् नास्ति तदा नास्ति चेत् अस्ति किंचन।**
**कार्यं चेत् कारणं किंचित् कार्याभावे न कारणम्।।२६।।**

यदि कहें कि कोई वस्तु है तो उस वस्तु के न रहने पर कहा जायेगा कि वह वस्तु नहीं है। जब कोई वस्तु है ही नहीं तब उसका अस्तित्व या होना भी नहीं है। यदि कोई कार्य होगा तो उस कार्य का कारण भी होगा किन्तु कार्य न होने पर कारण होने का प्रश्न ही नहीं आता।

**द्वैतं यदि तदाऽद्वैतं द्वैताभावे द्वयं न च।**
**दृश्यं यदि दृगप्यस्ति दृश्याभावे दृगेव न।।२७।।**

यदि द्वैत या दो की भावना होगी तभी अद्वैत की भावना होगी। द्वैत न होने पर द्वय की या दो की भावना भी नहीं रहती। यदि कोई दृश्य या देखने की वस्तु हो तो उसे देखने के लिये आँख होनी चाहिये। दृश्य वस्तु न होने पर आंख की आवश्यकता ही नहीं होती।

**अन्तर्यदि बहिः सत्यम् अन्ताभावे बहिर्न।**
**पूर्णत्वमस्ति चेत् किंचित् अपूर्णत्वं प्रसज्यते।।२८।।**

यदि अन्दर कुछ है तो इसकी अपेक्षा बाहर कहना ठीक होगा किन्तु अन्दर कुछ न होने पर बाहर कहने की बात ही नहीं उठती। यदि पूर्णता या पूरा शब्द प्रयोग किया जाय तो पूरे की अपेक्षा अधूरे शब्द का प्रयोग भी किया जा सकता है।

**तस्माद् एतत् क्वचिन्नास्ति त्वं चाहं वा इमे इदम्।**
**नास्ति दृष्टान्तिकं सत्ये नास्ति दार्ष्टान्तिकं ह्यजे।।२९।।**

क्योंकि ब्रह्म में यह सब नहीं है इसलिये ब्रह्म के लिये मेरा-तेरा, यह-वह आदि शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि कोई दृष्टान्त या उदाहरण ही न हो तो दार्ष्टान्तिक या उदाहरण देने वाला भी नहीं होगा।

**परं ब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्य मनो न हि।**
**ब्रह्ममात्रं जगदिदं ब्रह्ममात्रं त्वमप्यहम्।।३०।।**

ब्रह्म अपने लिये नहीं कहता कि "मैं परमब्रह्म हूँ" क्योंकि यह कहने या स्मरण करने के लिये उसमें मन ही नहीं है। अतः परिणाम यही है कि यह सारा जगत् ब्रह्म ही है। तुम और मैं भी ब्रह्म हैं।

**चिन्मात्रं केवलं चाहं नास्त्यनात्मेति निश्चिनु।**
**इदं प्रपञ्चं नास्त्येव नोत्पन्नं नो स्थितं क्वचित्।।३१।।**

मैं केवल चित् या चैतन्य मात्र हूँ। मुझमें अनात्म की या न होने का विचार निश्चय ही नहीं है। जगत् का यह विस्तार वास्तव में नहीं है क्योंकि यह न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी इसकी स्थिति या अस्तित्व ही रहा है।

**चित्तं प्रपञ्चमित्याहुर्नास्ति नास्त्येव सर्वदा।**
**न प्रपञ्चं न चित्तादि नाहंकारो न जीवकः।।३२।।**

चित्त भी प्रपञ्च; धोखा या भ्रम ही है। चित्त कभी भी नहीं था। भ्रम, चित्त, अहंकार, जीव आदि कुछ भी नहीं है अर्थात् वास्तविक नहीं है।

**माया कार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं न हिं।**
**कर्त्ता नास्ति क्रिया नास्ति श्रवणं मननं न हि।।३३।।**

माया का कार्य यह संसार आदि कुछ भी वास्तविक नहीं है। माया भी स्वयं नहीं है और न ही भय है। यहाँ कोई कर्ता अर्थात् करने वाला और करने वाले की कोई क्रिया ही यथार्थ में है। सुनना, सोचना-समझना कुछ भी वास्तविक नहीं है।

**समाधिद्वितयं नास्ति मातृमानादि नास्ति हि।**
**अज्ञानं चापि नास्त्येव ह्यविवेकं कदाचन।।३४।।**

सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात आदि समाधियों की भी कोई सत्ता नहीं है। माता-पिता आदि के प्रति आदर भावना भी सत्य नहीं है। अज्ञान और अविवेक या नासमझी भी नहीं है।

**अनुबन्धचतुष्कं न सम्बन्धत्रयमेव न।**
**न गङ्गा न गया सेतुर्न भूतं नान्यदस्ति हि।।३५।।**

अनुबन्धचतुष्क अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; तीन सम्बन्ध, गंगा नदी, गया और सेतुबन्ध तीर्थ भी सत्य नहीं है। भूतकाल या अन्य कोई पदार्थ भी वास्तविक नहीं है।

**न भूमिर्न जलं नाग्निर्न वायुर्न च खं क्वचित्।**
**न देवा न च दिक्पाला न वेदा न गुरुःक्वचित्।।३६।।**

भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत तथा देवता, दिक्पाल या दिशाओं के रक्षक, वेद और गुरु ये सब भी वास्तविक नहीं हैं।

**न दूरं नान्तिकं नान्त्यं न मध्यं न क्वचित् स्थितम्।**
**नाद्वैतं द्वैत सत्यं वा ह्यसत्यं वा इदं न च।।३७।।**

दूर-पास, अन्तिम-मध्यम, द्वैत-अद्वैत, सत्य-असत्य इन सबकी सत्ता या अस्तित्व भी कहीं नहीं है।

**बन्धमोक्षादिकं नास्ति सद्वाऽसद्वा सुखादि वा।**
**जातिर्नास्ति गतिर्नास्ति वर्णो नास्ति न लौकिकम्।।३८।।**

बन्ध-मोक्ष, सत्-असत्, सुख-दुख, जाति, गति, वर्ण और लोक व्यवहार ये सब मिथ्या ही हैं।

**सर्वं ब्रह्मेति नास्त्येव ब्रह्म इत्यपि नास्ति हि।**
**चिदित्येवेति नास्त्येव चिदहं भाषणं न हि।।३९।।**

सब कुछ ब्रह्म है, ब्रह्म है, चिन्मात्र या चैतन्यमात्र है, मैं चिन्मय हूँ यह सब कहना भी मिथ्या ही है।

**अहं ब्रह्मास्मि नास्त्येव नित्यशुद्धोऽस्मि न क्वचित्।**
**वाचा यदुच्यते किंचित् मनसा मनुते क्वचित्।।४०।।**

मैं ब्रह्म हूँ, मैं नित्यशुद्धस्वरूप हूँ यह कहना भ्रम ही है। हमारी वाणी जो कहती या मन कुछ सोचता है वह सब भी मिथ्या या अवास्तविक ही है।

**बुद्ध्या निश्चिनुते नास्ति चित्तेन ज्ञायते न हि।**
**योगी योगादिकं नास्ति सदा सर्वं सदा न च।।४१।।**

बुद्धि कोई निश्चय करती है, मन से कुछ जाना जाता है, योगी का योगाभ्यास यह सब कहना मिथ्या है। सदा, सब कुछ यह कहना भी अनुचित है।

**अहोरात्रादिकं नास्ति स्नानध्यानादिकं न हि।**
**भ्रान्तिरभ्रान्तिर्नास्त्येव नास्त्यनात्मेति निश्चिनु।।४२।।**

दिन-रात, स्नान-ध्यान, भ्रान्ति-अभ्रान्ति और अनात्मा आदि निश्चय ही नहीं हैं।

**वेदः शास्त्रं पुराणं च कार्यं कारणमीश्वरः।**
**लोको भूतं जनस्त्वैक्यं सर्वं मिथ्या न संशयः।।४३।।**

वेद, शास्त्र, पुराण, कार्य-कारण सम्बन्ध, ईश्वर, लोक-लोकान्तर, पंच महाभूत, मनुष्य आदि सभी मिथ्या ही हैं।

**बन्धो मोक्षः सुखं दुःखं ध्यानं चित्तं सुरासुराः।**
**गौणं मुख्यं परं चान्यत् सर्वं मिथ्या न संशयः।।४४।।**

बन्ध-मोक्ष, सुख-दुख, ध्यान-चित्त, सुर-असुर, गौण-मुख्य अर्थात् प्रधान और अप्रधान, पर-अपर ये सब निश्चय ही मिथ्या हैं।

**वाचा वदति यत् किंचित् संकल्पैः कल्प्यते च यत्।**
**मनसा चिन्त्यते यत् यत् सर्वं मिथ्या न संशयः।।४५।।**

हम वाणी से जो भी बोलते हैं, संकल्प या निश्चय करते हैं तथा मन से जो कुछ सोचते हैं वह सब निस्सन्देह मिथ्या ही है।

**बुद्ध्या निश्चीयते किंचित् चित्ते निश्चीयते क्वचित्।**
**शास्त्रैः प्रपञ्च्यते यत् यत् नेत्रेणैव निरीक्ष्यते।।४६।।**

**श्रोत्राभ्यां श्रूयते यत् यत् अन्यत् सद्भावमेव च।**
**नेत्रं श्रोत्रं गात्रमेव मिथ्येति च सुनिश्चितम्।।४७।।**

बुद्धि और मन से जो कुछ निश्चय किया जाता है। शास्त्रों में जो कुछ लिखा है। आंखों से जो कुछ देखा जाता है। कानों से जो सुना जाता है या जो भी अन्य वस्तु सत् या वास्तविक समझी जाती है वह सब और आंख, कान, शरीर सब मिथ्या ही हैं।

**इदमित्येव निर्दिष्टम् अयमित्येव कल्प्यते।**
**त्वम् अहं तद् इदं सोऽहं अन्यत् सद्भावमेव च।।४८।।**

'इदम्' यह कहकर जिसे बताया जाता है। 'अयम्' कहकर जिसका विचार किया जाता है। तुम– मैं, यह-वह, सोऽहं तथा जो कुछ सत् मानते हैं।

**यत् यत् सम्भाव्यते लोके सर्वसंकल्प संभ्रमः।**
**सर्वाध्यासं सर्वगोप्यं सर्वभोगप्रभेदकम्।।४९।।**
**सर्वदोष प्रभेदाच्च नास्त्यनात्मेति निश्चिनु।**
**मदीयं च त्वदीयं च ममेति च तवेति च।।५०।।**

संसार में जिस-जिस बात की सम्भावना की जाती है वह सब मन के संकल्प-विकल्पों का भ्रममात्र है। सभी प्रकार के अध्यास अर्थात् आरोप या कल्पना, सभी गोपनीय बातें, सभी प्रकार के भोग-ऐश्वर्य, सभी तरह के दोषारोपण, मेरा-तेरा, मैं-तुम ये सब नहीं हैं और अनात्म हैं अर्थात् आत्मा नहीं हैं। निश्चय ही मिथ्या हैं।

**मह्यं तुभ्यं मयेत्यादि तत् सर्वं वितथं भवेत्।**
**रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम्।।५१।।**
**संहारे रुद्र इत्येव सर्वं मिथ्येति निश्चिनु।**

मेरे लिये, तुम्हारे लिये यह सब व्यवहार झूठा ही है। विष्णु रक्षक है, ब्रह्मा सृष्टि के कारण हैं, और शिव संहार करने वाले हैं यह सब निश्चय ही मिथ्या है।

**स्नानं जपस्तपो होमः स्वाध्यायो देवपूजनम्।।५२।।**

**मन्त्रं तन्त्रं च सत्सङ्गो गुणदोष विजृम्भणम्।**
**अन्तःकरण सद्भावे हि अविद्यायाश्च सम्भवः।।५३।।**

स्नान, जप-तप, हवन, स्वाध्याय, देवता की पूजा, मन्त्र-तन्त्र, सत्संग, गुण-दोष का विचार, अन्त:करण ये सब विचार या कल्पनाएँ अविद्या से उत्पन्न होते हैं।

**अनेककोटि ब्रह्माण्डं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु।**
**सर्वदेशिकवाक्योक्तिर्येन केनापि निश्चितम्।।५४।।**

करोड़ों ब्रह्माण्डों आदि की सभी बातें निश्चय ही मिथ्या हैं। देशिकों अर्थात् वेदान्त के आचार्यों की बातें जिस किसी ने भी निश्चयस्वरूप मानी हैं, वे सब मिथ्या हैं।

**दृश्यते जगति यत् यत् यत् यत् जगति वीक्ष्यते।**
**वर्तते जगति यत् यत् सर्वं मिथ्येति निश्चिनु।।५५।।**

इस संसार में जो भी कुछ दिखाई देता है या संसार में जो कुछ व्यवहार है वह सब निश्चय ही मिथ्या है।

**येनकेनाक्षरेणोक्तं येन केन विनिश्चितम्।**
**येनकेनापि गदितं येनकेनापि मोदितम्।।५६।।**

जिस किसी ने अक्षरों के द्वारा लिखा है या जिस किसी ने भी कोई बात निश्चित की है। जिस किसी ने जो कुछ कहा है और जिस बात का जिस किसी ने अनुमोदन किया है।

**येनकेनापि यद्दत्तं येन केनापि यत् कृतम्।**
**यत्र यत्र शुभं कर्म यत्र यत्र च दुष्कृतम्।।५७।।**

जिस किसी ने जो कुछ दिया है और जो कुछ किया है अथवा जहाँ-जहाँ भी अच्छा या बुरा काम किया है।

**यत् यत् करोषि सत्येन सर्वं मिथ्येति निश्चिनु।**

तुम जिस किसी भी पदार्थ या विचार को सच समझ रहे हो वह सब निश्चित रूप से मिथ्या है।

**त्वमेव परमात्मासि त्वमेव परमो गुरुः।।५८।।**

**त्वमेवाकाशरूपोऽसि साक्षिहीनोऽसि सर्वदा।**
**त्वमेव सर्वभावोऽसि त्वं ब्रह्मासि न संशयः।।५९।।**

आप ही परमात्मा हैं, आप ही श्रेष्ठतम गुरु हैं। आप ही आकाश स्वरूप हैं आपका कोई साक्षी नहीं है। आप ही सब भावरूप या वर्तमान पदार्थों में विद्यमान हैं और आप ही ब्रह्म हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।

**कालहीनोऽसि कालोऽसि सदा ब्रह्मासि चिद्घनः।**
**सर्वतः स्वरूपरूपोऽसि चैतन्यघनवानसि।।६०।।**

आप काल हीन है और काल भी है। आप सदैव चिद्घन अर्थात् चैतन्यपूर्ण ब्रह्म हैं। आप सभी दृष्टियों से स्वरूप में स्थित है और चैतन्य से परिपूर्ण है।

**सत्योऽसि सिद्धोऽसि सनातनोऽसि-**
**मुक्तोऽसि मोक्षोऽसि मुदामृतोऽसि।**
**देवोऽसि शान्तोऽसि निरामयोऽसि-**
**ब्रह्मासि पूर्णोऽसि परात्परोऽसि।।६१।।**

आप सत्य, सिद्ध, सनातन, मुक्त, मोक्षस्वरूप, हर्ष और अमृत स्वरूप, देव, शान्त, निर्विकार, पूर्ण और परात्पर ब्रह्म है अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म हैं।

**समोऽसि सच्चापि सनातनोऽसि सत्यादिवाक्यैः प्रतिबोधितोऽसि।**
**सर्वाङ्गहीनोऽसि सदा स्थितोऽसि ब्रह्मेन्द्ररुद्रादि विभावितोऽसि।।६२।।**

आप सबके प्रति समान हैं, सत् हैं, सनातन हैं। सत्य आदि शब्दों से आपका ज्ञान कराया जाता है। आप सभी अंगों से रहित हैं फिर भी सदैव वर्तमान हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवता आपका ही ध्यान करते हैं।

**सर्वप्रपञ्चभ्रमवर्जितोऽसि सर्वेषु भूतेषु च भासितोऽसि।**
**सर्वत्र संकल्पविवर्जितोऽसि सर्वागमान्तार्थ विभावितोऽसि।।६३।।**

आप सभी प्रकार के प्रपंचों और भ्रान्तियों से रहित हैं। आप सभी प्राणियों में दिखाई दे रहे हैं। आप सभी प्रकार के संकल्प-विकल्पों से रहित हैं। सभी शास्त्र मूलरूप से आपका ही निर्देश कर रहे हैं।

**सर्वत्र सन्तोषसुखासनोऽसि सर्वत्र गत्यादिविवर्जितोऽसि।**
**सर्वत्र लक्ष्यादिविवर्जितोऽसि ध्यातोऽसि विष्णवादिसुरैरजस्रम्।।६४।।**

आप सभी परिस्थितियों में सन्तोषसुख से विराजमान हैं। आप सभी स्थानों पर गति आदि से रहित हैं। आप सदैव लक्ष्य-लक्षित आदि से रहित हैं। विष्णु आदि देवता आपका सदा चिन्तन करते हैं।

**चिदाकारस्वरूपोऽसि चिन्मात्रोऽसि निरङ्कुशः।**
**आत्मन्येव स्थितोऽसि त्वं सर्वशून्योऽसि निर्गुणः।।६५।।**

आप चिदाकार अर्थात् चैतन्यस्वरूप हैं। चिन्मात्र और निरंकुश अर्थात् स्वतन्त्र हैं। आप अपने में ही स्थित रहते हैं। आप में कोई भी विकार नहीं है और सत्व, रज, तम इन तीन गुणों में से किसी भी-गुण का कोई प्रभाव या विकार आप में नहीं है।

**आनन्दोऽसि परोऽसि त्वमेक एवाद्वितीयकः।**
**चिद्घनानन्दरूपोऽसि परिपूर्णस्वरूपकः।।६६।।**

आप आनन्दस्वरूप हैं, श्रेष्ठ हैं और एकमात्र अद्वितीय हैं। आप चैतन्यघन, आनन्दरूप और प्रत्येक दृष्टि से परिपूर्ण भी हैं।

**सदसि त्वमसि ज्ञोऽसि सोऽसि जानासि वीक्षसि।**
**सच्चिदानन्दरूपोऽसि वासुदेवोऽसि वै प्रभुः।।६७।।**

आप सत्स्वरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं। आप वही हैं जो देखते और समझते हैं। आप सत्, चित्, आनन्दस्वरूप हैं, वासुदेव हैं और सबके प्रभु अर्थात् स्वामी है।

**अमृतोऽसि विभुश्चासि चञ्चलोऽसि ह्यचलो ह्यसि।**
**सर्वोऽसि सर्वहीनोऽसि शान्ताशान्तविवर्जितः।।६८।।**

आप अमृतरूप हैं, आप विभु अर्थात् सभी स्थानों पर उपस्थित हैं। आप स्थिर भी हैं और अस्थिर भी हैं। आप में सब कुछ भी है और कुछ भी नहीं है। आप के हृदय में शान्ति विराजमान है साथ ही जगत् की अशान्ति भी।

**सत्तामात्रप्रकाशोऽसि सत्तासामान्यको ह्यसि।**
**नित्यसिद्धिस्वरूपोऽसि सर्वसिद्धिविवर्जितः।।६९।।**

आप अपनी सत्ता की थोड़ी सी झलक ही दिखाते हैं, आप अपनी सत्ता को सामान्य या साधारण सी बात समझते हैं अर्थात् अपनी सत्ता का

अहंकार नहीं करते। आप में सभी सिद्धियां नित्य विराजमान रहती हैं किन्तु आपको इन सिद्धियों से तनिक भी मोह नहीं है।

**ईषन्मात्र विशून्योऽसि अणुमात्रविवर्जितः।**
**अस्तित्ववर्जितोऽसि त्वं नास्तित्वादिविर्जितः।।७०।।**

आपकी स्थिति ईषत् मात्र अर्थात् थोड़ी सी भी नहीं है, अणुमात्र भी नहीं है। आप का अस्तित्व भी नहीं है किन्तु आप अस्तित्व आदि से रहित भी नहीं हैं।

**लक्ष्यलक्षणहीनोऽसि निर्विकारो निरामयः।**
**सर्वनादान्तरोऽसि त्वं कलाकाष्ठा विवर्जितः।।७१।।**

आप लक्ष्य अर्थात् ध्यान लगाने के लिये शरीर के अन्दर और बाहर के स्थानों नासिकाग्र, भ्रूमध्य तथा हृदय और आन्तरिक चक्रों से रहित हैं। आप में लक्षण अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान ये तीनों काल भी नहीं हैं अथवा आपका कोई असाधारण या विशेष धर्म (पहिचान, रंग आदि) भी नहीं है। आप निर्विकार हैं अर्थात् आप में कोई दोष या कमी नहीं है। आप निरामय हैं अर्थात् आप में रोगादि भी नहीं है। आप सभी प्रकार के अनाहत नादों में समाये हुए हैं। साथ ही आप में कला अर्थात् अनाहत नाद का तनिक भी अंश नहीं है। आपमें काष्ठा या कोई दिशा भी नहीं है।

**ब्रह्मविष्णवीशहीनोऽसि स्वस्वरूपं प्रपश्यसि।**
**स्वस्वरूपावशेषोऽसि स्वानन्दाब्धौ निमज्जसि।।७२।।**

आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश से अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय से परे हैं। आप अपने स्वरूप को अर्थात् स्थूलरूप की अपेक्षा विशेषरूप को या निजी भाव को स्वयं देखते हैं। आप अपने स्वरूप में ही विराजमान हैं और अपने ही आनन्दसागर में या ब्रह्मानन्दसागर में लीन हैं।

**स्वात्मराज्ये स्वमेवासि स्वयंभावविवर्जितः।**
**शिष्टपूर्णस्वरूपोऽसि स्वस्मात् किंचिन्न पश्यसि।।७३।।**

आप अपनी आत्मा के राज्य में स्वयं विराजमान हैं। आप अपने भाव से रहित हैं। आप शिष्टपूर्णस्वरूप हैं अर्थात् आप सद्गुण सम्पन्न माननीय और पूरी तरह नम्र स्वभाव वाले हैं। आप किसी को भी अपने से अलग नहीं देखते।

**स्वस्वरूपान्न चलसि स्वस्वरूपेण जृम्भसि।**
**स्वस्वरूपादनन्योऽसि ह्यहमेवास्मि निश्चिनु।।७४।।**

आप अपने स्वरूप से विचलित नहीं होते। आप अपने स्वरूप से ही व्यक्त होते हैं। आप अपने ही स्वरूप के कारण अन्य पदार्थों से भिन्न हैं। हे साधक! तू यह निश्चय कर कि मैं भी ब्रह्म का ही अंश हूँ।

**इदं प्रपञ्चं यत्किंचित् यत् यज्जगति विद्यते।**
**दृश्यरूपं च दृग्रूपं सर्वं शशविषाणवत्।।७५।।**

इस संसार में जो कुछ है, संसार में जो कुछ दृश्य रूप या द्रष्टा रूप है वह सब खरगोश के सींग की तरह मिथ्या है।

**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।**
**अहंकारश्च तेजश्च लोकं भुवनमण्डलम्।।७६।।**

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार, तेज, यह संसार और लोक-लोकान्तर।

**नाशो जन्म च सत्यं च पुण्यपापजयादिकम्।**
**रागः कामः क्रोधलोभौ ध्यानं ध्येयं गुणं परम्।।७७।।**

नाश, जन्म, सत्य, पाप-पुण्य, जय आदि, राग, काम, क्रोध, लोभ, ध्यान, ध्येय, सब गुण।

**गुरुशिष्योपदेशादिरन्तं शमं शुभम्।**
**भूतं भव्यं वर्तमानं लक्ष्यं लक्षणमद्वयम्।।७८।।**

गुरु-शिष्य के उपदेश आदि, अन्त, शान्ति, कल्याण, भूत, भविष्य, वर्तमान, लक्ष्य, लक्षण, अद्वितीय।

**शमो विचारः सन्तोषो भोक्तृभोज्यादिरूपकम्।**
**ययाद्यष्टांगयोगं च गमनागमनात्मकम्।।७९।।**

शान्ति, विचार, सन्तोष, खाने वाला, खाने के पदार्थ, यम-नियम आदि से युक्त अष्टांग योग, आना-जाना।

**आदिमध्यान्तरङ्गं च ग्राह्यं त्याज्यं हरिः शिवः।**
**इन्द्रियाणि मनश्चैव अवस्थात्रितयं तथा।।८०।।**

प्रारम्भ, बीच, अन्तरंग, लेने योग्य, छोड़ने योग्य, विष्णु, शिव, इन्द्रियां, मन, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ।

**चतुर्विंशतितत्त्वं च साधनानां चतुष्टयम्।**
**सजातीयं विजातीयं लोकाः भूरादयः क्रमात्।।८१।।**

प्रकृति के २४ तत्त्व, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार साधन, सजातीय और विजातीय पदार्थ भूः, भुवः, स्वः आदि लोक।

**सर्ववर्णाश्रमाचारं मन्त्रतन्त्रादिसंग्रहम्।**
**विद्याविद्यादिरूपं च सर्ववेद्यं जडाजडम्।।८२।।**

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास ये चारों आश्रम, मन्त्र-तन्त्र आदि का संग्रह, विद्या-अविद्या, सभी वेद, जड़-चेतन।

**बन्धमोक्षविभागं च ज्ञानविज्ञानरूपकम्।**
**बोधाबोधस्वरूपं द्वैताद्वैतादिभाषणम्।।८३।।**

बन्धन और मुक्ति का भेद, ज्ञान-विज्ञान की चर्चा, बोध-अबोध का स्वरूप तथा द्वैत-अद्वैत की चर्चा।

**सर्ववेदान्तसिद्धान्तं सर्वशास्त्रार्थनिर्णयम्।**
**अनेकजीवसद्भावमेकजीवादिनिर्णयम्।।८४।।**

वेदान्त के सभी सिद्धान्त; सभी शास्त्रों के अर्थों के निर्णय, अनेक जीव हैं या एक जीव है इस प्रश्न का निर्णय।

**यत् यत् ध्यायति चित्तेन यत् यत् संकल्पते क्वचित्।**
**बुद्धया निश्चीयते यत् यत् गुरुणा संशृणोति यत्।।८५।।**

चित्त से जो कुछ सोचा जाता है। मन से जो संकल्प-विकल्प किये जाते हैं। बुद्धि से जो निश्चय किया जाता है। गुरु से जो सुना जाता है।

**यत् यत् वाचा व्याकरोति यत् यत् आचार्य भाषणम्।**
**यत् यत् स्वरेन्द्रियैर्भाव्यं यत् यत् मीमांस्यते पृथक्।।८६।।**

वाणी से जो बोला जाता है, आचार्य जो उपदेश करते हैं। इन्द्रियों से जो अनुभव किया जाता है। जो कुछ विचार-विनिमय किया जाता है।

**यत् यत् न्यायेन निर्णीतं महद्भिः वेदपारगैः।**
**शिवः क्षरति लोकान् वै विष्णुः पाति जगत् त्रयम्।।८७।।**

वेदों के धुरन्धर विद्वानों द्वारा जो न्यायसंगत निर्णय किये जाते हैं। रुद्र लोकों का संहार करते हैं और विष्णु तीनों लोकों की रक्षा करते हैं।

**ब्रह्मा सृजति लोकान् वै एवमादिक्रियादिकम्।**
**यत् यत् अस्ति पुराणेषु यत् यत् वेदेषु निर्णयम्।।८८।।**
**सर्वोपनिषदां भावं सर्वं शशविषाणवत्।**

ब्रह्मा लोकों की सृष्टि करते हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार की ये सारी क्रियाएँ, पुराणों का ज्ञान और वेदों का निर्णय, सारी उपनिषदों का ज्ञान ये सारी बातें खरगोश के सींग की तरह मिथ्या हैं।

**देहोऽहमिति संकल्पं तदन्तःकरणं स्मृतम्।।८९।।**

'मैं देह हूँ' यह विचार भी अन्तःकरण की उपज है।

**देहोऽहमिति संकल्पो महत् संसार उच्यते।**
**देहोऽहमिति संकल्पस्तद् बन्धमिति चोच्यते।।९०।।**

'मैं देह हूँ' यह विचार इस संसार की प्रतीति कराता है। 'मैं देह हूँ' यह संकल्प आत्मा का बन्धन बनता है।

**देहोऽहमिति संकल्पस्तद्दुःखमिति चोच्यते।**
**देहोऽहमिति यद्भानं तदेव नरकं स्मृतम्।।९१।।**

'मैं देह हूँ' यह संकल्प ही शरीर के दुख का कारण है। 'मैं देह हूँ' यह प्रतीति ही नरक की याद दिलाती है।

**देहोऽहमिति संकल्पो जगत् सर्वम् इति ईर्यते।**
**देहोऽहमिति संकल्पो हृदयग्रन्थिः ईरितः।।९२।।**

'मैं देह हूँ' यह संकल्प इस सारे जगत् का कारण कहा जाता है। 'मैं देह हूँ' यह विचार हृदय का संशय पैदा करता है।

**देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेवाज्ञानमुच्यते।**
**देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तद् असद् भावमेव च।।९३।।**

'मैं देह हूँ' यह ज्ञान ही वास्तव में अज्ञान है। 'मैं देह हूँ' यह ज्ञान ही असत् भाव है।

**देहोऽहमिति या बुद्धिः सा च अविद्येति भण्यते।**
**देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेव द्वैतम् उच्यते।।९४।।**

'मैं देह हूँ' यह बुद्धि ही अविद्या कहलाती है। 'मैं देह हूँ' यह ज्ञान ही द्वैत की भावना कहलाता है।

**देहोऽहमिति संकल्पः सत्यजीवः स एव हि।**
**देहोऽहमिति यज्ज्ञानं परिच्छिन्नम् इति ईरितम्।।९५।।**

'मैं देह हूँ' यह संकल्प सत्यजीव ही है। 'मैं देह हूँ' यह ज्ञान ही सीमित ज्ञान है।

**देहोऽहमिति संकल्पो महापापमिति स्फुटम्।**
**देहोऽहमिति या बुद्धिः तृष्णादोषामयः किल।।९६।।**

'मैं देह हूँ' यह संकल्प स्पष्ट ही महापाप है। 'मैं देह हूँ' यह बुद्धि ही तृष्णा दोष का रोग या कारण है।

**यत्किंचिदपि संकल्पस्तापत्रयमितीरितम्।**
**कामं क्रोधं बन्धनं सर्वदुःखं विश्वं दोषं कालनानास्वरूपम्।**
**यत् किंचेदं सर्वसंकल्पजालं तत् किंचेदं मानसं सोम्य विद्धि।।९७।।**

हमारे जो भी संकल्प हैं वे ही आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन दुख हैं। काम, क्रोध, बन्धन, सारे दुख-दर्द, सारी बुराइयाँ, तरह-तरह के समय यह जो भी कुछ है वह सब हमारे संकल्पों का जंजाल है। हे सोम्य! यह सारा प्रपंच मन की उपज है।

**मन एव जगत् सर्वं मन एव महारिपुः।**
**मन एव हि संसारो मन एव जगत् त्रयम्।।९८।।**

मन ही के कारण यह सारा जगत् है। मन ही हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। मन ही संसार बनाता है। मन ही तीनों लोकों की कल्पना करता है।

**मन एव महद्दुःखं मन एव जरादिकम्।**
**मन एव हि कालश्च मन एव मलं तथा।।९९।।**

मन ही बड़े-बड़े दुखों का कारण है। मन में ही बुढ़ापे आदि के विचार आते हैं। मन ही काल स्वरूप है। मन ही में बुरे विचार रहते हैं।

**मन एव हि संकल्पो मन एव हि जीवकः।**
**मन एव हि चित्तं च मनोऽहंकार एव च।।१००।।**

मन में ही संकल्प-विकल्प उठते हैं। मन में ही जीव आत्मा का भाव पैदा होता है। मन का ही नाम चित्त है। मन ही अहंकार है।

**मन एव महद् बन्धं मनोऽन्तःकरणं च तत्।**
**मन एव हि भूमिश्च मन एव हि तोयकम्।।१०१।।**

मन ही बन्धन का हेतु है। मन ही अन्तःकरण है। मन ही भूमि और जल है।

**मन एव हि तेजश्च मन एव मरुन्महान्।**
**मन एव हि चाकाशं मन एव हि शब्दकम्।।१०२।।**

मन ही तेज, वायु, आकाश और शब्द महाभूत हैं।

**स्पर्शं रूपं रसं गन्धं कोशाः पञ्च मनोभवाः।**
**जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि मनोमयमितीरितम्।।१०३।।**

स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; अन्नमय, प्राणमय आदि शरीर के पाँच कोश और शरीर की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ मन की उपज हैं।

**दिक्पाला वसवो रुद्रा आदित्याश्च मनोमयाः।**
**दृश्यं जडं द्वन्द्वजातमज्ञानं मानसं स्मृतम्।।१०४।।**

चार दिक्पाल, आठ वसु, रुद्र, १२ आदित्य ये सब मन के ही कारण हैं। दिखने वाला यह जगत्, द्वन्द्वों का झगड़ा और अज्ञान मानसिक ही है।

**संकल्पमेव यत् किंचित् तत् तत् नास्तीति निश्चिनु।**
**नास्ति नास्ति जगत् सर्वं गुरुशिष्यादिकं न हि।।१०५।।**

यह सब संकल्पमात्र है। वास्तव में इनकी सत्ता नहीं है। संसार और गुरु शिष्यादि सम्बन्ध कुछ भी यथार्थ नहीं है।

**।।पंचम अध्याय समाप्त।।**

## षष्ठ - अध्याय

**ऋभुः**

**सर्वं सच्चिन्मयं विद्धि सर्वं सच्चिन्मयं ततम्।**
**सच्चिदानन्दमद्वैतं सच्चिदानन्दमद्वयम्।।१।।**

ऋभु ने कहा– इस जगत में सब कुछ सत्, चित्मय है। ब्रह्म की सत्ता और चैतन्य शक्ति इस सारे संसार में व्याप्त है। जगत् में सच्चिदानन्द ब्रह्म एक ही है। यह सच्चिदानन्द ब्रह्म अद्वितीय है।

**सच्चिदानन्दमात्रं हि सच्चिदानन्दमन्यकम्।**
**सच्चिदानन्दरूपोऽहं सच्चिदानन्दमेव त्वम्।।२।।**

जगत् में केवल सत्, चित् और आनन्द ही है। भिन्न-रूप से प्रतीत होने वाली वस्तु भी वास्तव में सच्चिदानन्दमय है। मैं भी सच्चिदानन्द रूप हूँ और तुम भी सच्चिदानन्द रूप हो।

**सच्चिदानन्दमेव त्वं सच्चिदानन्दकोऽस्म्यहम्।**
**मनोबुद्धिरहंकार चित्त संघातका अमी।।३।।**

तुम सच्चिदानन्दस्वरूप ही हो, मैं भी सच्चिदानन्दरूप हूँ। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार भी सच्चिदानन्द से पृथक् या अलग नहीं हैं।

**न त्वं नाहं न चान्यद्वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।**
**न वाक्यं न पदं वेदं नाक्षरं न जडं क्वचित्।।४।।**

मेरा, तुम्हारा या किसी अन्य वस्तु का ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई अस्तित्व नहीं है। यह सब ब्रह्म ही है। वाक्य, पद, वेद, अक्षर और कोई जड़ पदार्थ भी ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है।

**न मध्यं नादि नान्तं वा न सत्यं न निबन्धनम्।**
**न दुःखं न सुखं भावं न माया प्रकृतिस्तथा।।५।।**

आदि, मध्य, अन्त, सत्य, कोई बन्धन, दुख-सुख, भाव, माया और प्रकृति वास्तव में ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है!

**न देहं न मुखं घ्राणं न जिह्वा न च तालुनी।**
**न दन्तोष्ठौ ललाटं च निश्वासोच्छ्वास एव च।।६।।**

शरीर, मुख, नाक, जीभ, तालु, दाँत, ओंठ, मस्तक, श्वास-प्रश्वास ये सब कुछ नहीं हैं।

**न स्वेदमस्थि मांसं च न रक्तं न च मूत्रकम्।**
**न दूरं नान्तिकं नाङ्गं नोदरं न किरीटकम्।।७।।**

पसीना, हड्डी, मांस, रक्त, मूत्र, दूर-पास, अंग, पेट, मुकुट कुछ नहीं हैं।

**न हस्तपादचलनं न शास्त्रं न च शासनम्।**
**न वेत्ता न वेदं न वेद्यं न जाग्रतस्वप्नसुषुप्तयः।।८।।**

हाथ-पैर, चलना-फिरना, शास्त्र, आदेश, जानने वाला, जानने योग्य, वेद और शरीर की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ भी नहीं है।

**तुर्यातीतं न मे किंचित् सर्वं सच्चिन्मयं ततम्।**
**नाध्यात्मिकं नाधिभूतं नाधिदैवं न मायिकम्।।९।।**

मेरी तुरीयातीत अवस्था भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है। सभी पदार्थों में ब्रह्म की सत् और चित् स्वरूप सत्ता समायी हुई है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक और माया से व्याप्त किसी वस्तु की सत्ता नहीं है।

**न विश्वस्तैजसः प्राज्ञो विराट्सूत्रात्मकेश्वराः।**
**न गमागमचेष्टा च न नष्टं न प्रयोजनम्।।१०।।**

विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट्, सूत्रात्मा, ईश्वर आदि की ब्रह्म से भिन्न कोई सत्ता नहीं है। जाना, न जाना, कोई क्रिया, नाश, प्रयोजन आदि कुछ भी नहीं है।

**त्याज्यं ग्राह्यं न दूष्यं वा ह्यमेध्यामेध्यकं तथा।**
**न पीनं न कृशं क्लेदं न कालं देशभाषणम्।।११।।**

छोड़ने योग्य, ग्रहण करने योग्य, दूषित करने योग्य, अपवित्र, पवित्र, मोटा-पतला, गीला, काल, देश, बात कुछ भी नहीं है।

**न सर्वं न भयं द्वैतं न वृक्षतृणपर्वताः।**
**न ध्यानं योगसंसिद्धिर्न ब्रह्मक्षत्रवैश्यकम्।।१२।।**

सब-कुछ का विचार, भय, द्वैत, वृक्ष, तिनके, पहाड़, ध्यान, योग की सिद्धियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण कुछ नहीं हैं।

**न पक्षी न मृगो नाङ्गी न लोभो मोह एव च।**
**न मदो न च मात्सर्यं कामक्रोधादयस्तथा।।१३।।**

पशु-पक्षी, अंगों या अवयवों वाले जीव जन्तु, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य या ईर्ष्या, काम, क्रोध आदि कुछ नहीं है।

**न स्त्री शूद्रबिडालादि भक्ष्यभोज्यादिकं च यत्।**
**न प्रौढहीनो नास्तिक्यं न वार्ताऽवसरोऽस्ति हि।।१४।।**

स्त्री, शूद्र, बिलाव, खाने योग्य, भोगने योग्य, कुछ नहीं है। प्रौढ या बड़ी आयु का पुरुष, छोटा व्यक्ति, ईश्वर में अविश्वास, बात चीत का अवसर यह सब भी नहीं है।

**न लौकिको न लोको वा न व्यापारो न मूढता।**
**न भोक्ता भोजनं भोज्यं न पात्रं पान पेयकम्।।१५।।**

कोई लोक-व्यवहार, संसार, कार्य-कलाप, अज्ञानावस्था, कुछ नहीं है। खाने वाला, भोजन, खाने योग्य पदार्थ, बर्तन, पीने की वस्तु आदि कुछ भी वास्तविक नहीं है।

**न शत्रुमित्रपुत्रादिर्न माता न पिता स्वसा।**
**न जन्म न मृति र्वृद्धि र्न देहोऽहमिति विभ्रमः।।१६।।**

शत्रु-मित्र, पुत्र-पिता, माता, बहिन, जन्म-मृत्यु, बढ़ना, शरीर और मैं, यह भ्रम के सिवाय कुछ नहीं है।

**न शून्यं नापि च अशून्यं नान्तःकरणसंसृति।**
**न रात्रिर्न दिवा नक्तं न ब्रह्मा न हरिः शिवः।।१७।।**

शून्य, अशून्य, अन्तःकरण का प्रवाह, दिन-रात, ब्रह्मा, विष्णु, महेश कुछ नहीं हैं।

**न वारपक्षमासादि वत्सरं न च चञ्चलम्।**
**न ब्रह्मलोको वैकुण्ठो न कैलासो न चान्यकः।।१८।।**

दिन, शुक्ल और कृष्ण पक्ष, महीने, वर्ष, गतिशील पदार्थ, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलाश या अन्य स्थान नहीं हैं।

**न स्वर्गो न च देवेन्द्रो नाग्निलोको न चाग्निकः।**
**न यमो यमलोको वा न लोका लोकपालकाः।।१९।।**

स्वर्ग, इन्द्र, अग्निलोक, अग्निलोक का स्वामी, यम, यमलोक, लोक और लोकरक्षक भी नहीं हैं।

**न भूर्भुवः स्वस्त्रैलोक्यं न पातालं न भूतलम्।**
**नाविद्या न च विद्या च न माया प्रकृतिर्जडा।।२०।।**

भूः, भुवः, स्वः ये तीन लोक, पाताल, पृथ्वी, विद्या-अविद्या, माया और निश्चेतन प्रकृति भी नहीं है।

**न स्थिरं क्षणिकं नाशं न गतिर्न धावनम्।**
**न ध्यातव्यं न मे ध्यानं न मन्त्रो न जपः क्वचित्।।२१।।**

स्थायी रहने वाला, पल मात्र रहने वाला, नष्ट होने वाला, भाग-दौड़ कुछ नहीं है। मेरा कोई ध्यान योग्य पदार्थ, ध्यान, मन्त्र या जप नहीं है।

**न पदार्था न पूजार्हो नाभिषेको न चार्चनम्।**
**न पुष्पं न फलं पत्रं गन्धपुष्पादि धूपकम्।।२२।।**

कोई वस्तु, पूजा के योग्य कोई देव, उसका स्नान, पूजा, पत्र-पुष्प, फल, धूप आदि सुगन्धित पदार्थ नहीं हैं।

**न स्तोत्रं न नमस्कारो न प्रदक्षिणमण्वपि।**
**न प्रार्थना पृथग्भावो न हविर्नाग्निवन्दनम्।।२३।।**

कोई स्तोत्र, नमस्कार, प्रदक्षिणा, प्रार्थना, अलगाव, आहुति, अग्नि की स्तुति भी नहीं है।

**न होमो न च कर्माणि न दुर्वाक्यं सुभाषणम्।**
**न गायत्री न वा सन्धिर्न मनस्यं न दुःस्थितिः।।२४।।**

हवन, कर्म-काण्ड, दुर्वचन, मीठी वाणी, गायत्री मन्त्र, शब्दों के बीच सन्धि, मनन करने योग्य या दुरवस्था भी नहीं है।

**न दुराशा न दुष्टात्मा न चाण्डालो न पौल्कसः।**
**न दुःसहं दुरालापं न किरातो न कैतवम्।।२५।।**

निराशा, बुरे लोग, चाण्डाल, पौल्कस या संस्कारहीन व्यक्ति, सहन न कर सकने योग्य, गाली-गलौज, भील या जुआरी कुछ नहीं है।

**न पक्षपातं पक्षं वा न विभूषणतस्करौ।**
**न च दम्भो दाम्भिको वा न हीनो नाधिको नरः।।२६।।**

किसी से पक्षपात, किसी का पक्ष, आभूषण और आभूषण चुराने वाला, घमण्ड, घमण्डी, छोटा या बड़ा व्यक्ति भी नहीं है।

**नैकं द्वयं त्रयं तुर्यं न महत्वं न चाल्पता।**
**न पूर्णं न परिच्छिन्नं न काशी न व्रतं तपः।।२७।।**

एक, दो, तीन, चार, कम-अधिक, पूर्ण, सीमित, काशी, व्रत, तप कुछ भी वास्तविक नहीं है।

**न गोत्रं न कुलं सूत्रं न विभुत्वं न शून्यता।**
**न स्त्री न योषिन्नो वृद्धा न कन्या न वितन्तुता।।२८।।**

गोत्र, कुल, पहिचान, व्यापकता, खालीपन, स्त्री, पत्नी, बुढ़िया, कन्या और वंशलोप भी नहीं है।

**न सूतकं न जातं वा नान्तर्मुखसुविभ्रमः।**
**न महावाक्यमैक्यं वा नाणिमादिविभूतयः।।२९।।**

उत्पन्न करने वाला, उत्पन्न होने वाला, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति आदि सब भ्रम ही हैं। 'सोऽहम्' आदि महावाक्य, एकता का भाव, अणिमा -महिमा आदि सिद्धियां भी नहीं हैं।

**सर्वचैतन्यमात्रत्वात् सर्वदोषः सदा न हि।**
**सर्वं सन्मात्ररूपत्वात् सच्चिदानन्दमात्रकम्।।३०।।**

यह सब चैतन्य के अतिरिक्त कुछ नहीं अतः इसमें कोई दोष या कमी नहीं है। यह सब सत् मात्र होने के कारण सच्चिदानन्द ही है।

**ब्रह्मैव सर्वं नान्योऽस्ति तदहं तदहं तथा।**
**तदेवाहं तदेवाहं ब्रह्मैवाहं सनातनम्।।३१।।**

यह सब ब्रह्म ही है, ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मैं भी ब्रह्म हूँ, मैं भी वही सनातन ब्रह्म हूँ।

**ब्रह्मैवाहं न संसारी ब्रह्मैवाहं न मे मनः।**
**ब्रह्मैवाहं न मे बुद्धि र्ब्रह्मैवाहं न चेन्द्रियः।।३२।।**

मैं ब्रह्म ही हूँ संसार के व्यवहारों से मैं अलग हूँ। मेरा मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ भी ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।

**ब्रह्मैवाहं न देहोऽस्मि ब्रह्मैवाहं न गोचरः।**
**ब्रह्मैवाहं न जीवोऽस्मि ब्रह्मैवाहं न भेदभूः।।३३।।**

मैं ब्रह्म ही हूँ, यह देह मैं नहीं हूँ। मेरी इन्द्रियां, आत्मा आदि सभी कुछ मेरी नहीं हैं ये ब्रह्म ही हैं। मुझमें और ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद नहीं है।

**ब्रह्मैवाहं जडो नाहमहं ब्रह्म न मे मृतिः।**
**ब्रह्मैवाहं न च प्राणो ब्रह्मैवाहं परात्परः।।३४।।**

मैं ब्रह्म ही हूँ जड़ पदार्थ नहीं हूँ। ब्रह्म होने के कारण मेरी मृत्यु नहीं होती। ब्रह्म होने के कारण मेरे प्राण नहीं हैं मैं तो ब्रह्म का श्रेष्ठतम रूप हूँ।

**इदं ब्रह्म परं ब्रह्म सत्यं ब्रह्म प्रभुर्हि सः।**
**कालो ब्रह्म कला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयं प्रभम्।।३५।।**

यह ब्रह्म है, वह ब्रह्म है, सत्य ब्रह्म है। ब्रह्म ही प्रभु है। काल ब्रह्म है। कला अर्थात् नाद का एक अंश ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है। ब्रह्म स्वयं ज्योति है।

**एकं ब्रह्म द्वयं ब्रह्म मोहो ब्रह्म शमादिकम्।**
**दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं विभुः प्रभुः।।३६।।**

ब्रह्म एक है। जहाँ दो की या द्वित्व की भेददृष्टि है वहाँ भी ब्रह्म है। मोह, शम आदि सभी कुछ ब्रह्म है। गुण-दोष, दम, और शान्त भाव भी ब्रह्म हैं। ब्रह्म सर्वव्यापक और सबके प्रभु हैं।

**लोको ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः।**
**पूर्वं ब्रह्म परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम्।।३७।।**

यह संसार ब्रह्म है। गुरु-शिष्य; ब्रह्म हैं। ब्रह्म सदाशिव हैं। पहिला और पिछला ब्रह्म है। ब्रह्म शुद्ध है। शुभ-अशुभ भी ब्रह्म है।

**जीव एव सदा ब्रह्म सच्चिदानन्दमस्म्यहम्।**
**सर्वं ब्रह्ममयं प्रोक्तं सर्वं ब्रह्ममयं जगत्।।३८।।**

जीव सदैव ब्रह्म है। मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ। सब कुछ ब्रह्ममय ही कहा जाता है। सारा संसार ब्रह्ममय है।

**स्वयं ब्रह्म न सन्देहः स्वस्मादन्यन्न किंचन।**
**सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम्।।३९।।**

मैं स्वयं ब्रह्म हूँ इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। स्वयं से भिन्न कुछ भी नहीं है। सभी आत्माएँ शुद्धात्मा हैं। सब कुछ चिन्मात्र अर्थात् चैतन्य स्वरूप और द्वैत से रहित है।

**नित्यनिर्मलरूपात्मा ह्यात्मनोऽन्यन्न किंचन।**
**अणुमात्रलसद्रूपमणुमात्रमिदं जगत्।।४०।।**

मेरा आत्मा, नित्य और निर्मल है। आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है। दिखाई देने वाला यह जगत् ब्रह्म का अणु अर्थात् कण मात्र है।

**अणुमात्रं शरीरं वा ह्यणुमात्रमसत्यकम्।**
**अणुमात्रमचिन्त्यं वा चिन्त्यं वा ह्यणुमात्रकम्।।४१।।**

शरीर भी ब्रह्म का कण मात्र है। यह असत् जगत् और चिन्तनीय-अचिन्तनीय तत्त्व सभी अणुमात्र हैं।

**ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत् त्रयम्।**
**आनन्दं परमानन्दमन्यत् किंचित् न किंचन।।४२।।**

ब्रह्म ही सब हैं, ब्रह्म; चिन्मात्र अर्थात् चैतन्य स्वरूप मात्र हैं। तीनों लोक ब्रह्म के ही अंश है। आनन्द वस्तुतः परमानन्द ही है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।

**चैतन्यमात्रमोंकारं ब्रह्मैव सकलं स्वयम्।**
**अहमेव जगत् सर्वम् अहमेव परं पदम्।।४३।।**

ओंकार भी चैतन्यमात्र है। ब्रह्म ही स्वयं सम्पूर्ण है। यह सारा जगत् मैं ही हूँ और मैं ही श्रेष्ठ पद या परमपद हूँ।

**अहमेवगुणातीत अहमेव परात्परः।**
**अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः।।४४।।**

मैं ही तीनों गुणों से परे हूँ। मैं ही परात्पर अर्थात् श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हूँ। मैं ही परब्रह्म हूँ। मैं ही गुरु का भी गुरु हूँ।

**अहमेवाखिलाधारः अहमेव सुखात्सुखम्।**
**आत्मनोऽन्यज्जगन्नास्ति आत्मनोऽन्यत्सुखं न च।।४५।।**

मैं ही सब का आधार हूँ। मैं ही सर्वश्रेष्ठ सुख हूँ। आत्मा के अतिरिक्त जगत् नहीं है। आत्मा के अतिरिक्त और कोई सुख नहीं है।

**आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत्।**
**आत्मनोऽन्यन्नहि क्वापि आत्मनोऽन्यत् तृणं न हि।।४६।।**

आत्मा के सिवाय कोई उपाय नहीं है। यह सारा जगत् आत्मा से युक्त है। आत्मा के अतिरिक्त कोई भी नहीं है। आत्मा से अलग तिनका भी नहीं है।

**आत्मनोऽन्यत् तुषं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत्।**
**ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्न हि।।४७।।**

आत्मा के अतिरिक्त भूसा तक नहीं है। यह सब आत्ममय है। यह सब ब्रह्म ही है। ब्रह्ममात्र का यह भाव असत् नहीं है।

**ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मैव केवलम्।**
**ब्रह्ममात्रं वृत्तं सर्वं ब्रह्ममात्रं रसं सुखम्।।४८।।**

सब सुना हुआ ब्रह्म ही है। यहाँ केवल ब्रह्म ही है। वरण करने योग्य सभी वस्तुएँ ब्रह्म ही हैं। रसात्मक सुख भी ब्रह्ममात्र है।

**ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सच्चिदानन्दमव्ययम्।**
**ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यज्जगन्न च।।४९।।**

चिदाकाश ब्रह्ममात्र है। सत्, चित्, आनन्द स्वरूप और निर्विकार ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है। ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् भी नहीं है।

**ब्रह्मणोऽन्यदहं नास्मि ब्रह्मणोऽन्यत् फलं न हि।**
**ब्रह्मणोऽन्यत्तृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत् पदं न हि।।५०।।**

मैं भी ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ। ब्रह्म के अतिरिक्त किसी काम का कोई फल नहीं है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई पद या तिनका भी नहीं है।

**ब्रह्मणोऽन्यत् गुरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत् असद् वपुः।**
**ब्रह्मणोऽन्यन्न चाहंता त्वत्तेदन्ते न हि क्वचित्।।५१।।**

ब्रह्म के सिवाय कोई गुरु नहीं है। ब्रह्म को छोड़कर शरीर का भी अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म के अतिरिक्त मेरा-तेरा या यह वह का विचार भी नहीं है।

**स्वयं ब्रह्मात्मकं विद्धि स्वस्मादन्यन्न किंचन।**
**यत्किंचित् दृश्यते लोके यत्किंचित् भाष्यते जनैः।।५२।।**

तुम अपने को ब्रह्ममय जानो। अपने से भिन्न कुछ नहीं है। संसार में जो भी कुछ दीखता है या लोग जो कुछ बोलते हैं।

**यत्किंचित् भुज्यते क्वापि तत्सर्वमसदेव हि।**
**कतृभेदं क्रियाभेदं गुणभेदं रसादिकन्।।५३।।**

कहीं भी जो कुछ खाया जाता है वह सब असत् ही है। कर्त्ता का भेद, क्रिया का भेद, गुणों का भेद और रस आदि का भेद—

**लिङ्गभेदमिदं सर्वमसदेव सदा सुखम्।**
**कालभेदं देशभेदं वस्तुभेदं जयाजयम्।।५४।।**

लिंग भेद, देश भेद, काल भेद, वस्तु भेद, जय-पराजय और सुख आदि सभी असत् ही हैं।

**यत् यत् भेदं च तत्सर्वमसदेव हि केवलम्।**
**असदन्तःकरणमसदेवेन्द्रियादिकम्।।५५।।**

जो कुछ भेद दिखाई देता है वह सब असत् ही है। अन्तःकरण और शरीर की इन्द्रियादि सभी असत् या मिथ्या हैं।

**असत् प्राणादिकं सर्वं संघातमसदात्मकम्।**
**असत्यं पञ्चकोशाख्यमसत्यं पञ्च देवताः।।५६।।**

सभी प्राण आदि यह संघात अर्थात् शरीर आदि स्थूल पदार्थ और शरीर के पाँच कोश तथा पाँच इन्द्रियाँ असत् हैं।

**असत्यं षड्विकारादि असत्यमरिवर्गकम्।**
**असत्यं षड्ऋतुश्चैव असत्यं षड् रसस्तथा।।५७।।**

प्रकृति के छह विकार, काम-क्रोध, लोभ-मोह, ईर्ष्या-द्वेष आदि शत्रु, ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त, शिशिर, शरद, वसन्त ये छह ऋतुएँ और खट्टा-मीठा, चरपरा आदि छह रस असत् ही हैं।

**सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्।**
**आत्मैवाहं परं सत्यं नान्याः संसारदृष्टयः।।५८।।**

मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ। यह संसार कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ है। मैं आत्मा हूँ यही विचार परम सत्य है। सांसारिक विचार सत्य नहीं है।

**सत्यमानन्दरूपोऽहं चिद्घनानन्दविग्रहः।**
**अहमेव परानन्द अहमेव परात्परः।।५९।।**

मैं आनन्दरूप और चैतन्यमात्र आनन्द स्वरूप तथा परमानन्द स्वरूप हूँ। मैं परात्पर ब्रह्म का अंश हूँ।

**ज्ञानाकारमिदं सर्वम् ज्ञानानन्दोऽहमद्वयः।**
**सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वभावस्वरूपकम्।।६०।।**

यह सब ज्ञानस्वरूप है। मैं ज्ञान में रमने वाला अद्वितीय आत्मा हूँ। मैं सर्वप्रकाशरूप हूँ। मैं सभी भावों का प्रकाशक हूँ।

**अहमेव सदा भामीत्येवं रूपं कुतोऽप्यसत्।**
**त्वमित्येवं परं ब्रह्म चिन्मयानन्दरूपवान्।।६१।।**

मैं ही सदा प्रकट हो रहा हूँ। यह वस्तु इस तरह दिखती है, क्यों दिखती है ये सब बातें असत् हैं। आप ही चिन्मयानन्दरूप परमब्रह्म हैं।

**चिदाकारं चिदाकाशं चिदेव परमं सुखम्।**
**आत्मैवाहममसन्नाहं कूटस्थोऽहं गुरुः परः।।६२।।**

मैं चैतन्यस्वरूप, चिदाकाश हूँ। मेरा चैतन्यस्वरूप ही श्रेष्ठ सुख है। मैं ही आत्मा हूँ। मैं असत् नहीं हूँ। मैं कूटस्थ या अपरिवर्तनीय हूँ और श्रेष्ठ गुरु हूँ।

**सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्।**
**कालो नास्ति जगन्नास्ति मायाप्रकृतिरेव न।।६३।।**

मैं सच्चिदानन्दमात्र हूँ। यह जगत् कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ। जगत् और काल की सत्ता नहीं है। माया और प्रकृति का भी अस्तित्व नहीं है।

**अहमेव हरिः साक्षात् अहमेव सदाशिवः।**
**शुद्धचैतन्यभावोऽहं शुद्धसत्त्वानुभावनः।।६४।।**

मैं ही साक्षात् विष्णु और सदाशिव हूँ। मैं शुद्धचैतन्य भाव से युक्त हूँ और शुद्ध सत्व गुण की अनुभूति करता हूँ।

**अद्वयानन्दमात्रोऽहं चिद्घनैकरसोऽस्म्यहम्।**
**सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।।६५।।**

मैं किसी अन्य भावना से रहित आनन्द मात्र हूँ। मैं चिद्घन या चैतन्यपुंज एक रस हूँ। यह सब केवल और निरन्तर ब्रह्म ही है।

**सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव चेतनम्।**
**सर्वान्तर्यामिरूपोऽहं सर्वसाक्षित्वलक्षणम्।।६६।।**

यह सब कुछ निरन्तर ब्रह्म और चैतन्यस्वरूप ब्रह्म है। मैं सर्वान्तर्यामी हूँ अर्थात् सभी के अन्तःकरणों में बैठा हूँ। मैं केवल साक्षिरूप हूँ।

**परमात्मा परं ज्योतिः परं धाम परा गतिः।**
**सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्रसुनिश्चितः।।६७।।**

परमात्मा; श्रेष्ठतम ज्योति, श्रेष्ठतम स्थान और श्रेष्ठतम गति हैं। मैं वेदान्त के सभी सिद्धान्तों का साररूप हूँ यह बात सभी शास्त्र निश्चयपूर्वक कहते हैं।

**योगानन्दस्वरूपोऽहं मुख्यानन्दमहोदयः।**
**सर्वज्ञानप्रकाशोऽस्मि मुख्यविज्ञानविग्रहः।।६८।।**

मैं योगानन्दस्वरूप हूँ। मैं मुख्य आनन्द का महान स्रोत हूँ। मैं सभी ज्ञानों का प्रकाश हूँ और मेरा स्वरूप विशिष्ट विज्ञान है।

**तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादिवर्जितः।**
**चिदक्षरोऽहं सत्योऽहं वासुदेवोऽजरोऽमरः।।६९।।**

मैं तुरीय अवस्था और अतुरीय अवस्था का बोध कराता हूँ। तुरीयावस्था आत्मा की चतुर्थ अवस्था है जिसमें वह ब्रह्म के साथ तदाकार हो जाता है। मैं तुरीय और अतुरीय अवस्थाओं से रहित हूँ। मैं चैतन्य, अविनाशी, सत्य, वासुदेव, अजर और अमर हूँ।

**अहं ब्रह्म चिदाकाशं नित्यं ब्रह्म निरञ्जनम्।**
**शुद्धं बुद्धं सदामुक्तमनामकमरूपकम्।।७०।।**

मैं ब्रह्म; चिदाकाश, नित्य, निरंजन हूँ अर्थात् शोक, मोह आदि और माया के आवरण से रहित निगुर्ण चैतन्य रूप हूँ। मैं शुद्ध, बुद्ध या ज्ञानमय, सदामुक्त और नाम-रूप से रहित हूँ।

**सच्चिदानन्दरूपोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्।**
**सत्यासत्यं जगन्नास्ति संकल्पकलनादिकम्।।७१।।**

मैं सच्चिदानन्दरूप हूँ। यह जगत् पैदा नहीं हुआ। यह जगत् सत्य या असत्य भी नहीं है। संकल्प-विकल्प भी असत् हैं।

**नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम्।**
**अनन्तमव्ययं शान्तमेकरूपमनामयम्।।७२।।**

ब्रह्म नित्यानन्दस्वरूप है। वे स्वयं सदा विराजमान हैं। ब्रह्म, अनन्त, अव्यय, शान्त, एकरूप और विकारशून्य हैं।

**मत्तोऽन्यदस्ति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका।**
**वन्ध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्ति किंचन।।७३।।**

यदि मुझसे भिन्न कुछ है तो वह मृगमरीचिका या मृगतृष्णा की तरह मिथ्या है। बांझ स्त्री का पुत्र कहने में यदि संशय है तो ठीक ही है।

**शशशृङ्गेण नागेन्द्रोमृतश्चेज्जगदस्ति तत्।**
**मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेदस्त्विदं जगत्।।७४।।**

यदि खरगोश के सींग से हाथी मर गया यह बात ठीक है तो संसार भी है। मृगतृष्णा का पानी पीकर प्यास बुझ गई यदि यह बात सत्य है तो जगत् भी सत्य है।

**नरशृङ्गेण नष्टश्चेत् कश्चिदस्त्विदमेव हि।**
**गन्धर्वनगरे सत्ये जगत् भवति सर्वदा।।७५।।**

मनुष्य के सींग से कोई मारा गया यदि यह बात सत्य है तो जगत् भी सत्य है। यदि गन्धर्वनगर वास्तव में है जो जगत् की सत्ता भी सदा है।

**गगने नीलिमा सत्ये जगत् सत्यं भविष्यति।**
**शुक्तिकारजतं सत्यं भूषणं चेज्जगद्भवेत्।।७६।।**

यदि आकाश को नीले रंग का मान लिया जाता है तो जगत् को भी सत्य माना जायेगा। सीपी की चांदी से गहना बना है यदि यह बात सत्य है तो जगत् का अस्तित्व भी है।

**रज्जुसर्पेण दष्टश्चेन्नरो भवतु संसृतिः।**
**जातरूपेण बाणेन ज्वालाग्नौ नाशिते जगत्।।७७।।**

रस्सी के सांप ने मनुष्य को काट लिया यदि यह बात सत्य है और

सोने के बाण से आग की लपटें बुझ गईं यदि यह सत्य है तो जगत् भी मिथ्या नहीं है।

**विन्ध्याटव्यां पायसान्नमस्ति चेज्जगदुद्भवः।**
**रम्भास्तम्भेन काष्ठेन पाकसिद्धौ जगद् भवेत्।।७८।।**

विन्ध्याचल के जंगल में खीर पैदा होती है और केले के तने की लकड़ी से खाना बन गया यदि ये बातें सत्य हैं तो जगत् भी सत्य है।

**सद्यः कुमारिकारूपैः पाके सिद्धे जगद् भवेत्।**
**चित्रस्थदीपैःस्तमसो नाशश्चेदस्त्विदं जगत्।।७९।।**

तुरन्त उत्पन्न हुई लड़की ने भोजन पका लिया और चित्र में बने दीपक से अन्धेरा दूर हो गया यदि ये बातें सत्य हैं तो जगत् भी सत्य है।

**मासात् पूर्वं मृतो मर्त्यो ह्यागतश्चेज्जगद् भवेत्।**
**तक्रं क्षीरस्वरूपं चेत् क्वचिन्नित्यं जगद् भवेत्।।८०।।**

एक महीने पहिले मरा हुआ मनुष्य फिर आ गया और मट्ठा दूध होता है यदि ये बातें सत्य हैं तो जगत् भी सत्य है।

**गोस्तनाद् उद्भवं क्षीरं पुनरारोपणे जगत्।**
**भूरजोऽब्धौ समुत्पन्ने जगद् भवतु सर्वदा।।८१।।**

यदि गाय के थन से निकाला हुआ दूध फिर गाय के स्तन में डाल दिया गया है और पृथ्वी की धूल से समुद्र पैदा हुआ है तो जगत् भी सत्य है।

**कूर्मरोम्णा गजे बद्धे जगदस्तु मदोत्कटे।**
**नालस्थतन्तुना मेरुश्चालितश्चेज्जगद् भवेत्।।८२।।**

यदि कछुए के रोएँ से मतवाला हाथी बांध लिया जाय और कमल नाल के तागे से मेरु को खींच लिया जाय तो जगत् भी सत्य है।

**तरङ्गमालया सिन्धुर्बद्धश्चेदस्त्विदं जगत्।**
**अग्नेरधश्चेज्ज्वलनं जगद् भवतु सर्वदा।।८३।।**

यदि लहरों की पंक्ति से समुद्र को रोक लिया जाय और अग्नि की लपटें नीचे जाने लगें तो जगत् भी सत्य है।

**ज्वालावह्निः शीतलश्चेदस्ति रूपमिदं जगत्।**
**ज्वालाग्निमण्डले पद्मवृद्धिश्चेज्जगदस्त्विदम्।।८४।।**

यदि आग की लपटें ठण्डी हैं। और आग की लपटों के बीच कमल का फूल खिलने लगे तो यह संसार भी सत्य है।

**महच्छैलेन्द्रनीलं वा सम्भवेच्चेदिदं जगत्।**
**मेरुरागत्य पद्माक्षे स्थितश्चेदस्त्विदं जगत्।।८५।।**

यदि हिमालय इन्द्रनील मणि बन जाय और मेरु पर्वत आकर पद्मकोश में बैठ जाय तो जगत् भी सत्य है।

**निगिरेच्चेद् भृङ्गसूनुर्मेरुं चलवदस्त्विदम्।**
**मशकेन हते सिंहे जगत् सत्यं तदास्तु ते।।८६।।**

यदि मेरु पर्वत को भौंरे का बच्चा निगल जाय और मच्छर; शेर को मार डाले तो जगत् सत्य है।

**अणुकोटरविस्तीर्णे त्रैलोक्यं चेज्जगद् भवेत्।**
**तृणानलश्च नित्यश्चेत् क्षणिकं तज्जगद् भवेत्।।८७।।**

यदि तीनों लोक छोटे से छेद में समा जायें और पल भर रहने वाली तिनकों की आग सदा जलती रहे तो जगत् भी सत्य है।

**स्वप्नदृष्टं च यद् वस्तु जागरे चेज्जगद् भवः।**
**नदीवेगो निश्चलश्चेत् केनापीदं भवेज्जगत्।।८८।।**

यदि स्वप्न में देखी हुए वस्तु जागने पर भी दीखे और नदी का बहाव रुका हुआ माना जाय तो जगत् भी सत्य है।

**क्षुधितस्याग्निर्भोज्यश्चेन्निमिषं कल्पिते भवेत्।**
**जात्यन्धै रत्नविषयः सुज्ञातश्चेज्जगत् सदा।।९९।।**

यदि पल भर के लिये भी यह बात सत्य है कि भूखे का भोजन अग्नि है और जन्म के अन्धों ने रत्न परख लिये तो जगत् भी सत्य है।

**नपुंसककुमारस्य स्त्रीसुखं चेत् भवेज्जगत्।**
**निर्मितः शशशृङ्गेण रथश्चेज्जगदस्ति तत्।।९०।।**

नपुंसक युवक ने स्त्रीसुख भोग लिया यदि यह बात सत्य है और खरगोश के सींग से रथ बन गया तो जगत् भी सत्य है।

**सद्योजाता तु या कन्या भोगयोग्या भवेज्जगत्।**
**वन्ध्या गर्भाप्ततत्सौख्यं ज्ञाता चेदस्त्विदं जगत्।।९१।।**

यदि नवजात कन्या भोगने लायक हो सकती है और बांझ स्त्री को गर्भ रहने का सुख मिल सकता है तो जगत् भी सत्य है।

**काको वा हंसवद् गच्छेज्जगद् भवतु निश्चलम्।**
**महाखरो वा सिंहेन युध्यते चेज्जगत् स्थितिः।।९२।।**

यदि कौआ हंस की चाल चलने लगे और गधा शेर से लड़ सके तो जगत् भी सत्य हो सकता है।

**महाखरो गजगतिं गतश्चेज्जगदस्तु तत्।**
**सम्पूर्णचन्द्रसूर्यश्चेज्जगद् भातु स्वयं जडम्।।९३।।**

यदि गधा हाथी की चाल चलने लगे और पूर्णचन्द्रमा तथा सूर्य दोनों एकसाथ उदय होने लगें तो जगत् सत्य है।

**चन्द्रसूर्यादिकौ त्यक्त्वा राहुश्चेद् दृश्यते जगत्।**
**भृष्टबीजसमुत्पन्नवृद्धिश्चेज्जगदस्तु सत्।।९४।।**

यदि सूर्य और चन्द्रमा को छोड़कर राहु अलग दिखने लगे और भुने हुए बीज से फसल बढ़ने लगे तो जगत् भी सत्य है।

**दरिद्रो धनिकानां च सुखं भुङ्क्ते तदा जगत्।**
**शुना वीर्येण सिंहस्तु जितो यदि जगत्तदा।।९५।।**

यदि गरीब व्यक्ति धनी लोगों जैसा सुख भोगने लगें और कुत्ता भौंक-भौंककर शेर को हरा दे तो जगत् भी सत्य है।

**ज्ञानिनो हृदयं मूढैर्ज्ञातं चेत् कल्पनं तदा।**
**श्वानेन सागरे पीते निःशेषेण मनो भवेत्।।९६।।**

यदि यह कल्पना की जा सकती है कि मूर्खों ने ज्ञानियों के हृदय की बातें जान लीं और कुत्ता सारा समुद्र पी गया।

**शुद्धाकाशो मनुष्येषु पतितश्चेत्तदा जगत्।**
**भूमौ वा पतितं व्योम व्योमपुष्पं सुगन्धकम्।।९७।।**

यदि सारा आकाश मनुष्यों पर गिर पड़े या भूमि पर गिर जाय और आकाशकुसुम सुगन्धित होता हो तो यह जगत् भी सत्य है।

**शुद्धाकाशे वने जाते चलिते तु तदा जगत्।**
**केवले दर्पणे नास्ति प्रतिबिम्बं तदा जगत्।।९८।।**

यदि साफ आकाश में जंगल उग आये और यह वन चलने-फिरने लगे तथा साफ दर्पण में कुछ दिखाई न दे तो जगत् भी सत्य है।

**अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि।**
**सर्वथा भेदकलनं द्वैताद्वैतं न विद्यते।।९९।।**

ब्रह्मा की कोख में जगत् नहीं है। आत्मा की कोख में भी संसार नहीं है। भेद की कल्पना और द्वैत-अद्वैत की भावना भी नहीं है।

**मायाकार्यमिदं भेदमस्ति चेद् ब्रह्मभावनम्।**
**देहोऽहमिति दुःखं चेद् ब्रह्माहमिति निश्चयः।।१००।।**

यह सब जगत् माया का कार्य है, यदि इसमें भेद प्रतीत होता है तो मन में ब्रह्म के अस्तित्व की भावना करो। यह मेरा शरीर है और मैं दुखी हूँ यदि ऐसा विचार मन में आता है तो 'मैं ही ब्रह्म हूँ' यह निश्चय कर लीजिये।

**हृदयग्रन्थिरस्तित्वे छिद्यते ब्रह्मचक्रकम्।**
**संशये समनुप्राप्ते ब्रह्मनिश्चयमाप्नुयात्।।१०१।।**

जब तक हृदय में अज्ञान रहता है तब तक ब्रह्म की भावना आती-जाती रहती है इसलिये कोई सन्देह उठने पर 'मैं ब्रह्म हूँ' और 'यह सब ब्रह्म ही है' यह भावना निश्चित रूप से करें।

**अनात्मरूपचोरश्चेद् आत्मरत्नस्य रक्षणम्।**
**नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम्।।१०२।।**

यदि मन में अनात्म भावना का चोर घुसे तो अपने आत्म-रत्न की रक्षा करनी चाहिये। ब्रह्म, नित्य, आनन्दस्वरूप, स्वयं सर्वदा विराजमान हैं।

**एवमादिसुदृष्टान्तैः साधितं ब्रह्ममात्रकम्।**
**ब्रह्मैव सर्वभवनं भुवनं नाम संत्यज।।१०३।।**

उपरोक्त दृष्टान्तों से सिद्ध हो गया कि 'सब कुछ ब्रह्म ही है।' यह जगत् है इस विचार को त्याग कर ब्रह्म ही सब कुछ है यह विचार मन में लाइये।

**अहं ब्रह्मेति निश्चित्य अहंभावं परित्यज।**
**सर्वमेव लयं याति सुप्तहस्तस्थपुष्पवत्।।१०४।।**

'मैं ब्रह्म हूँ' निश्चयपूर्वक यह भावना करके अहंभाव को या अहंकार को छोड़ देना चाहिये। यह सारा दृश्यमान जगत् उसी तरह विलीन हो जाता है जैसे सोये हुए व्यक्ति के हाथ का फूल गिर जाता है।

**न देहो न च कर्माणि सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।**
**न भूतं न च कार्यं च न चावस्थाचतुष्टयम्।।१०५।।**

न शरीर है, न ही शरीर के कर्म हैं। सब कुछ ब्रह्म ही है। न पंच महाभूत है और न ही इन महाभूतों के कार्य हैं। न ही शरीर की शिशु, बाल, युवा और वृद्ध चार अवस्थाएँ हैं।

**लक्षणात्रयविज्ञानं सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।**
**सर्वव्यापारमुत्सृज्य ह्यहं ब्रह्मेति भावय।।१०६।।**

तीन प्रकार की लक्षणा का ज्ञान भी ब्रह्म ही है। अतः सब बातें छोड़कर 'मैं ब्रह्म हूँ' यही भावना मन में स्थिर कीजिये।

**अहं ब्रह्म न सन्देहो ह्यहं ब्रह्म चिदात्मकम्।**
**सच्चिदानन्दमात्रोऽहमिति तत् त्यज।।१०७।।**

'मैं ब्रह्म हूँ' इसमें कोई सन्देह नहीं। मैं चैतन्यस्वरूप ब्रह्म हूँ। मैं सच्चिदानन्द ही हूँ। यह निश्चय कर संसार को त्याग दो।

**शांकरीयं महाशास्त्रं न देयं यस्य कस्यचित्।**
**नास्तिकाय कृतघ्नाय दुर्वृत्ताय दुरात्मने।।१०८।।**

शंकराचार्य रचित यह वेदान्त-शास्त्र जिस किसी को नहीं बताना चाहिये। नास्तिक, कृतघ्न, दुश्चरित्र और दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति को यह शास्त्र देना ही नहीं चाहिये।

**गुरुभक्त विशुद्धान्तःकरणाय महात्मने।**
**सम्यक् परीक्ष्य दातव्यं मासं षण्मासवत्सरम्।।१०९।।**

गुरुभक्त, पवित्र अन्त:करणवाले महात्मा व्यक्ति की एक महीने, छह महीने या वर्ष भर तक अच्छी तरह जांच-परख करके उसे यह वेदान्त शास्त्र पढ़ाना चाहिये।

**सर्वोपनिषदभ्यासं दूरतस्त्यज सादरम्।**
**तेजोबिन्दूपनिषदमभ्यसेत् सर्वदा मुदा।।११०।।**

सभी उपनिषदों का अध्ययन छोड़कर प्रसन्न चित्त से तेजोबिन्दूपनिषद् का पाठ सदा आदर पूर्वक करना चाहिये।

**सकृदभ्यासमात्रेण ब्रह्मैव भवति।**
**स्वयं ब्रह्मैव भवति स्वयमित्युपनिषत्।।**

यह उपनिषद् एक बार पढ़ लेने पर व्यक्ति स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है।

**ओ३म् सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।**
**तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।**
**ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।**

**।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।**

**।।तेजोबिन्दूपनिषत्समाप्त।।**

६

# त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्

## (शुक्लयजुर्वेदे)

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदम्.....इति शान्तिः!!

योगज्ञानैकसंसिद्धशिवतत्त्वतयोज्ज्वलम्।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तं परं ब्रह्म भवाम्यहम्।।

### आत्मा और ब्रह्म के विषय में प्रश्न

**ॐ त्रिशिखि ब्राह्मण आदित्यलोकं जगाम, तं गत्वोवाच।**
**भगवन् किं देहः किं प्राणः किं कारणं किमात्मा।।१।।**

त्रिशिखि नामवाले ब्राह्मण ने आदित्य लोक में जाकर आदित्य से पूछा-भगवन्! शरीर, प्राण और आत्मा क्या हैं? इनका कारण क्या है?

### सबका कारण शिव

**स होवाच सर्वमिदं शिव एव विजानीहि। किन्तु नित्यः शुद्धो निरञ्जनो विभुः अद्वयानन्दः शिव एकः स्वेन भासेदं सर्वं सृष्ट्वा तप्तायःपिण्डवत् ऐक्यं भिन्नवत् अवभासते। तद् भासकं किमिति चेत् उच्यते। सत् शब्द वाच्यं अविद्याशबलं ब्रह्म।।२।।**

**उन्होंने उत्तर दिया –** यह सब शिव ही है यह समझो। किन्तु नित्य, शुद्ध, निरञ्जन अर्थात् निर्गुण चैतन्य, विभु या सर्व व्यापक, अद्वितीयानन्द शिव एक ही हैं।

उन्होंने अपने तेज से यह सारा ब्रह्माण्ड रचा है जो गर्म लोहे के गोले की तरह एक होकर भी अलग-अलग सा प्रतीत होता है। यदि यह कहो कि शिव का प्रकाशक क्या है? अविद्या से युक्त (शबल) ब्रह्म जिसे सत् कहते हैं।

**ब्रह्मणोऽव्यक्तम्। अव्यक्तान्महत्। महतोऽहंकारः। अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि। पञ्चतन्मात्रेभ्यो पञ्चमहाभूतानि। पञ्चमहाभूतेभ्योऽखिलं जगत्।।३।।**

ब्रह्म से अव्यक्त अर्थात् प्रजननात्मक नियम का मूलतत्त्व या प्रकृति जिससे संसार के सारे तत्त्व विकसित हुए हैं। प्रकृति से महत् अर्थात् ब्रह्म के 'ईक्षण' से साम्यावस्थारूप प्रकृति में अपूर्व मन्थन या हलचल होने से नित्य महाकाश में परम जाज्वल्यमान तत्व का बहुत बड़ा पिण्ड उत्पन्न होता है। इसलिये यह महत् या महान् कहलाता है। इसमें ज्ञान, बल, क्रियाशक्ति सभी कुछ अतिमहान् होता है। यही **हिरण्यगर्भ** है। सत्वभाव से युक्त महत् से अहंकार अर्थात् सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों का द्वितीय विषम परिणाम। पुरुष से प्रकाशित महत् तत्त्व ही रजस् और तमस् की अधिकता से विकृत होकर व्यक्तरूप से बहिर्मुख होता है। अहंकार से पञ्चतन्मात्राएँ अर्थात् अहंकार के ग्राह्य सूक्ष्म विषम परिणाम:— शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्राएँ या परमाणु अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की सबसे सूक्ष्म अवस्था। तम:प्रधान इन पञ्चतन्मात्राओं से पाँच महाभूत पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश उत्पन्न होते हैं। इन पाँच महाभूतों से सारा जगत् बनता है।

## एक ही पिण्ड के अनेक विभाग

**तदखिलं किमिति। भूतविकारविभागादि इति। एकस्मिन् पिण्डे कथं भूतविकार विभाग इति। तत् तत् कार्यकारण भेदरूपेण अंश तत्त्व वाचक वाच्य स्थान भेद विषय देवताकोशभेदविभागा भवन्ति।।४।।**

सारे से क्या अभिप्राय है? पाँच महाभूतों के विकार या उनके विभिन्न रूप तथा उनके विभाग। किन्तु एक ही पिण्ड में पंचमहाभूतों के विभिन्न रूप और उनके विभाग कैसे होते हैं? जैसे आकाश आदि कार्य और पृथिवी आदि कारण। विभिन्न महाभूतों के कार्य कारणरूप से पाँच महाभूतों के विभाग होते हैं। आकाश आदि महाभूतों के अंश श्रवण शक्ति आदि तत्त्वों

के भेद से, इन श्रवणशक्तियों आदि अंशों के नाम-रूप भेद से, इन श्रवण आदि शक्तियों के कान, नाक, आँख आदि स्थान भेद से, शब्द आदि विषय भेद से, दिशा, देवता भेद से और आनन्दमय कोश आदि के भेद से अनेक प्रकार के विभाग हो जाते हैं। एक ही अविद्यारूपी अण्ड; पिण्ड में पंचभूतों के भौतिक विकार या विभिन्न नाम-रूप उत्पन्न हो जाते हैं।

## आकाश आदि के अंश भेद

**अथाकाशो अन्तःकरणमनोबुद्धि चित्ताहंकाराः। वायुः समानोदानो-व्यानापानप्राणाः। वह्निः श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानि। आपः शब्दस्पर्शरूप-रसगन्धाः। पृथिवी वाक्पाणिपादपायूपस्थाः।।५।।**

**आकाश के अंशभेद**— अन्त:करण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। वायु के **अंश भेद**—समान, उदान, व्यान, अपान, प्राण। अग्नि के **अंश भेद**— कान, त्वचा, आँख, जीभ, नाक। जल के **अंशभेद**— शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। पृथिवी के **अंश भेद**— वाणी, हाथ, पैर, गुदा, मूत्रेन्द्रिय।

## इनके विषय भेद

**ज्ञान संकल्प निश्चयानुसन्धानाभिमाना आकाशकार्यान्तःकरणविषयाः। समीकरणोन्नयनग्रहणश्रवणोच्छ्वासा वायुकार्य प्राणादिविषयाः। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा अग्निकार्यज्ञानेन्द्रिविषया अबाश्रिताः। वचनादान-गमनविसर्गानन्दाःपृथिवीकार्य कर्मेन्द्रियविषयाः। कर्मज्ञानेन्द्रियविषयेषु प्राणतन्मात्रविषया अन्तर्भूताः। मनो बुद्ध्योश्चित्ताहंकारौ चान्तर्भूतौ।।६।।**

ज्ञान, संकल्प, निश्चय, अनुसन्धान और अभिमान; आकाश के कार्य अन्त:करण या मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चार अन्दर की इन्द्रियों के विषय हैं। समीकरण (पचाना, आत्मसात् करना), उठाना, लेना, सुनना, श्वास-प्रश्वास; वायु के कार्य प्राण, अपान आदि के विषय हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; अग्नि के कार्य **ज्ञानेन्द्रियों** के विषय हैं। ये जल पर आश्रित हैं।

बोलना, लेना, जाना, मलमूत्र निकालना और आनन्द अनुभव करना पृथिवी के कार्य कर्मेन्द्रियों के विषय हैं।

कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के विषयों में प्राणतन्मात्र के या सूक्ष्म प्राण के विषय भी सम्मिलित हैं।

मन और बुद्धि में चित्त और अहंकार सम्मिलित हैं।

**सूक्ष्मभूतमात्राः**

**अवकाश विधूत दर्शन पिण्डीकरण धारणाः सूक्ष्मतमा जैवतन्मात्र विषयाः।।७।।**

अवकाश (खाली स्थान) विधूत (हिलाना या आन्दोलित करना), दर्शन, पिण्डीकरण (मिलाना), धारणा ये जीवतन्मात्रा के सूक्ष्मतम विषय हैं।

**आध्यात्मिक आदि विभाग**

**एवं द्वादशाङ्गानि आध्यात्मिकान्याधिभौतिकान्याधिदैविकानि। अत्र निशाकर चतुर्मुख दिग्वातार्कवरुणाश्वयग्नीन्द्रोपेन्द्रप्रजापति यमा इति अक्षाधिदेवतारूपैर्द्वादशनाड्यन्तःप्रवृत्ताः प्राणा एवाङ्गानि अङ्गज्ञानं तदेव ज्ञातेति।।८।।**

इस प्रकार आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक बारह अंग होते हैं। चन्द्रमा, ब्रह्मा, दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनौ, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति, यम, ये अक्ष अधिदेवता होते हैं।

इडा, पिंगला आदि बारह नाड़ियों के अन्दर चलने वाला प्राणवायु अन्तःकरण को सभी अंगों का ज्ञान कराता है। अन्तःकरण ही उपाधिभेद से जानने वाला जीवात्मा होता है।

**ज्ञातृव्यापाराभिव्यक्तिः**

**अथ व्योमानिलानलजलान्नानां पञ्चीकरणमिति। ज्ञातृत्वं समानयोगेन श्रोत्रद्वारा शब्दागुणो वागधितिष्ठतः आकाशे तिष्ठति आकाशस्तिष्ठति। मनो व्यानयोगेन त्वग्द्वारा स्पर्शगुणः पाण्यधितिष्ठितो वायौ तिष्ठति वायुस्तिष्ठति। बुद्धिरुदानयोगेन चक्षुर्द्वारा रूपगुणः पादधिष्ठितोऽग्नौ तिष्ठति अग्निः तिष्ठति।**

**चित्तमपानयोगेन जिह्वाद्वारा रसगुण उपस्थाधिष्ठितोऽप्सु तिष्ठति आपः तिष्ठन्ति। अहंकारः प्राणयोगेन घ्राणद्वारा गन्धगुणो गुदाधिष्ठितः पृथिव्यां तिष्ठति पृथिवी तिष्ठतीत्येवं वेद।।९।।**

अब आकाश, वायु, अग्नि, जल और अन्नों का पंचीकरण। ज्ञातृत्व या जानना; समानवायु के सम्बन्ध से कान के द्वारा शब्दगुण वाणी में रहकर आकाश में रहता है।

मन; व्यानवायु के सम्पर्क से त्वचा द्वारा स्पर्श गुण हाथ में रहकर वायु में रहता है। बुद्धि; उदानवायु के सम्पर्क से आँख के द्वारा रूप गुण पैर में रहकर अग्नि में रहता है। चित्त; अपानवायु के सम्पर्क से जिह्वा के द्वारा रस गुण मूत्रेन्द्रिय में रहकर जल में रहता है। अहंकार; प्राणवायु के सम्पर्क से नासिका के द्वारा गन्धगुण गुदा में रहकर पृथिवी में रहता है। जो व्यक्ति यह जानता है वह सर्वज्ञ हो जाता है।

**अत्रैते श्लोका भवन्ति –**

**पृथग्भूते षोडश कलाः स्वार्धभागान् परान् क्रमात्।**
**अन्तःकरण व्यानाक्षिरसपायुनभः क्रमात्।।१।।**

**मुख्यात् पूर्वोत्तरैर्भागै र्भूते भूते चतुश्चतुः।**
**पूर्वमाकाशमाश्रित्य पृथिव्यादिषु संस्थिताः।।२।।**

**मुख्यात् ऊर्ध्वे परा ज्ञेया न परानुत्तरान्विदुः।**
**एवमंशो अभूत् तस्मात् तेभ्यश्चांशो अभूत्तथा।।३।।**

**तस्मादन्योन्यमाश्रित्य ह्योतंप्रोतमनुक्रमात्।**

यदि ब्रह्म की पुरुष रूप में कल्पना करें तो पुरुषरूप ब्रह्म की सोलह कलाओं से ही यह मनुष्य शरीर बना है। इन कलाओं के निकल जाने पर जीवात्मा इस शरीर में नहीं रह सकता। १६ कलाओं वाला ब्रह्म भी इस शरीर में रहता है।

पुरुष ब्रह्म ने सबसे पहिले प्राण की उत्पत्ति की। प्राण द्वारा श्रद्धा, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक (रूप) और नाम इन सोलह कलाओं का सर्जन किया। इन सोलह कलाओं से ब्रह्माण्ड का तथा पिण्ड का निर्माण होता है। ये सोलह

कलाएँ ब्रह्म से अलग होकर अपना आधा भाग बाद की कलाओं को दे देती हैं। यह प्रक्रिया आकाश महाभूत से प्रारम्भ होती है और पृथिवी महाभूत तक चलती है।

उपरोक्त श्लोक में व्यान से वायु, अक्षि (आँख) से तेज, रस से जल, गुदा या पायु से पृथिवी और नभ से आकाश महाभूत अभिप्रेत हैं। प्रत्येक महाभूत अपने आधे भाग के चार हिस्से करके शेष चार महाभूतों को बांट देता है। इस प्रक्रिया से महाभूतों के गुण सभी महाभूतों में आ जाते हैं। यह प्रक्रिया पंचीकरण कहलाती है। प्रत्येक महाभूत का अंश दूसरे महाभूतों में समा जाने से पाँचों महाभूतों में एक-दूसरे के अंश ओत-प्रोत हो जाते हैं। महाभूतों के आधे अंश श्रेष्ठ होते हैं और चार हिस्सों में बंटे हुए अंश गौण।

**चराचरात्मक विश्वसृष्टि**

**पञ्चभूतमयी भूमिः सा चेतनसमन्विता।।४।।**
**तत ओषधयोऽन्नं च ततः पिण्डाश्चतुर्विधाः।**
**रसासृङ्मांसमेदोऽस्थि मज्जाशुक्राणि धातवः।।५।।**
**केचित्तद्योगतः पिण्डा भूतेभ्यः सम्भवाः क्वचित्।**
**तस्मिन्नन्नमयः पिण्डो नाभिमण्डलसंस्थितः।।६।।**
**अस्य मध्येऽस्ति हृदयं सनालं पद्मकोशवत्।**
**सत्वान्तर्वर्तिनो देवाः कर्त्रहंकार चेतनाः।।७।।**
**अस्य बीजं तमः पिण्डं मोहरूपं जडं घनम्।**
**वर्तते कण्ठमाश्रित्य मिश्रीभूतमिदं जगत्।।८।।**
**प्रत्यगानन्दरूपात्मा मूर्ध्नि स्थाने परे पदे।**
**अनन्तशक्तिसंयुक्तोः जगद्रूपेण भासते।।९।।**

पंचीकृत भूतों के चेतना से युक्त होने पर चर-अचर या स्थावर-जंगम जगत् उत्पन्न होता है। इन पंचमहाभूतों से अन्न और तरह-तरह की ओषधियाँ तथा चार प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते हैं। चार प्रकार के प्राणी उद्भिज या वृक्ष-वनस्पति, जरायुज - मनुष्य, पशु आदि, अण्डज - पक्षी आदि अण्डों

से उत्पन्न होने वाले और स्वेदज-पसीने से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म जीव। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये धातुएँ भी अन्न से उत्पन्न होती हैं। कुछ के अनुसार किन्हीं प्राणियों के शुक्र और शोणित अर्थात् रज और वीर्य से मनुष्य, पशु आदि शरीर उत्पन्न होते हैं। इन शरीरों में और विशेषरूप से पुरुष शरीर में अन्नमय कोश नाभि में है। इस अन्नमय कोश के बीच में हृदय है जिसका आकार नाल सहित कमल पुष्प जैसा है। अन्न खाने से ही शरीर में रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य बनते हैं। अन्न ही सभी प्राणियों के जीवन का आधार है। शरीर रूपी अन्नमय कोश में सत्वगुण प्रधान इन्द्रियरूपी देव और कर्ता, अहंकार तथा चेतना विद्यमान है। हृदय का बीज तमोगुणयुक्त मोहरूपी गहरे जड़ भाव से युक्त अपना अज्ञान या अविद्या है। यह अज्ञान मन के सहारे कण्ठ में रहता है। अज्ञान से युक्त मन से यह संसार व्याप्त है। किन्तु जीवात्मा अज्ञान से अछूता रहकर सिर में सहस्रार चक्र में रहता है। इसी स्थान पर अनन्तशक्तियुक्त परमात्मा भी इस जगत् के रूप में दिखाई देते हैं।

**चार अवस्थाएँ**

**सर्वत्र वर्तते जाग्रत्स्वप्नं जाग्रति वर्तते।**
**सुषुप्तं च तुरीयं च नान्यावस्थासु कुत्रचित्।।१०।।**
**सर्वदेशेष्वनुस्यूतश्चतूरूपः शिवात्मकः।**
**यथा महाफले सर्वे रसाः सर्वप्रवर्तकाः।।११।।**
**तथैवान्नमये कोशे कोशास्तिष्ठन्ति चान्तरे।**
**यथा कोशस्तथा जीवो यथा जीवस्तथा शिवः।।१२।।**
**सविकारस्तथा जीवो निर्विकारस्तथा शिवः।**
**कोशास्तस्य विकारास्ते ह्यवस्थासु प्रवर्तकाः।।१३।।**
**यथा रसाशये फेनं मथनादेव जायते।**
**मनोनिर्मथनादेव विकल्पा बहवस्तथा।।१४।।**

शरीर की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ये चार अवस्थाएँ होती हैं। जाग्रत अवस्था में आत्मा; इन्द्रियों के संयोग से जगत् की अनेक वस्तुएँ देखता है।

जैसे अन्नमयकोश में प्राणमय, मनोमय आदि कोश रहते हैं। इसी तरह जाग्रत अवस्था में स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ये तीन अवस्थाएँ भी रहती हैं। अन्य अवस्थाओं में जाग्रत आदि अवस्थाएँ नहीं रहतीं। व्यष्टि, समष्टि, जाग्रत्, स्वप्न, विश्व, विराट् आदि सभी अवस्थाओं में प्रत्यक् चैतन्य या परमात्मा सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। कल्याणकारी परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में उसी प्रकार समाये हुए हैं जैसे किसी बड़े फल में खट्टे-मीठे सभी प्रकार के रस होते हैं। जैसे शरीर के अन्नमय कोश में अन्य कोश समाये रहते हैं और अन्नमय कोश; शरीर का तथा सभी कोशों का आधार होता है उसी प्रकार जीवात्मा शरीर के सभी कोशों के गुण-दोषों में आत्मीय भाव से व्याप्त रहता है। साथ ही शरीर के गुण-दोषों से निर्लिप्त परमात्मा भी सभी जीवों के शरीरों में व्याप्त है। शरीर के कोशों के गुण-दोष या विकार शरीर में विभिन्न अवस्थाएँ समय-समय पर उत्पन्न करते रहते हैं किन्तु इन विकारों का परमात्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वे सदा निर्विकार-स्वरूप बने रहते हैं। जैसे दही को बिलोने से उसमें झाग पैदा हो जाते हैं उसी तरह मन के संकल्प-विकल्पों से तरह-तरह के विचार मन में उठने लगते हैं। इन्हीं संकल्प-विकल्पों के कारण शरीर की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाएँ आती-जाती रहती हैं।

## दक्षिणायन और उत्तरायण मार्ग

**कर्मणा वर्तते कर्मी तत् त्यागात् शान्तिमाप्नुयात्।**
**अयने दक्षिणे प्राप्ते प्रपञ्चाभिमुखं गतः।।१५।।**
**अहंकाराभिमानेन जीवः स्यात् हि सदाशिवः।**
**स च अविवेकप्रकृति सङ्गत्या तत्र मुह्यते।।१६।।**
**नानायोनिशतं गत्वा शेतेऽसौ वासनावशात्।**
**विमोक्षात्सञ्चरत्येव मत्स्यः कूलद्वयं यथा।।१७।।**
**ततः कालवशादेव ह्यात्मज्ञानविवेकतः।**
**उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थानात् स्थानान्तरं क्रमात्।।१८।।**
**मूर्ध्न्याधाय आत्मनः प्राणान् योगाभ्यासं स्थितश्चरन्।**

जीव; मन के नानाविध संकल्पों के कारण संसार के कामों में फंसा रहता है। अतः जीव इस अविद्या के कारण जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। किन्तु अपना स्वरूप पहिचान लेने पर जीव संसार के कार्य-

कलापों से मुँह मोड़कर मानसिक शान्ति प्राप्त कर लेता है।

दक्षिणायन या सकाम कर्म का मार्ग अपनाकर जीव संसार के इष्ट-आपूर्त कामों में लगकर इन कर्मों का फल पाना चाहता है। अनात्म विषयों और पदार्थों में आत्माभिमान समझकर परमात्मा का अंश जीवात्मा अपने को ही परमात्मा समझ बैठता है और अपने इस अविवेक या नासमझी से मोह में पड़ा रहता है। वह संसार के मोह जाल में बंधा अनेकों योनियों में जन्म लेता है और मरता है। जीव के अनेक योनियों में जन्म लेने का कारण उसकी पूर्व जन्मों की वासनाएँ होती हैं। किन्हीं कर्मों के भोगने से चित्त में बीज रूप से पड़े संस्कार ही वासनाएँ कहलाती हैं। इन वासनाओं के कारण जीव नदी के दो किनारों के बीच तैरती हुई मछली की तरह संसार-सागर में गोते खाता रहता है। अनुकूल अवसर आने पर जीव आत्मज्ञान का विवेक उत्पन्न होने पर अज्ञान के बन्धन से छूट जाता है। विवेक उत्पन्न होने पर जीवात्मा योगपथ पर चलने लगता है। वह उत्तर दिशा की ओर मुँह करके योगाभ्यास करता है। मन को एकाग्र और शरीर को स्थिर रखकर योगाभ्यास के द्वारा अपने प्राणों को मस्तक के सहस्त्रारचक्र में पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिये। सिद्धासन में बैठकर योगी सुषुम्नानाड़ी के द्वार से अपने प्राणों को सहस्त्रार में पहुँचाकर योगाभ्यास करता है। निश्चित समय आने पर योगी के प्राण सहस्त्रार चक्र को भेद कर देवयान मार्ग से या उत्तरायण पथ से जीवात्मा को ब्रह्मलोक में पहुँचा देते हैं जहाँ से योगी इस संसार में लौट कर नहीं आता।

**शीघ्र मुक्तिदायक ज्ञान**

**योगात् संजायते ज्ञानं ज्ञानात् योगः प्रवर्तते।।१९।।**
**योगज्ञानपरोनित्यं स योगी न प्रणश्यति।**
**विकारस्थं शिवं पश्येत् विकारश्चशिवे न तु।।२०।।**
**योगप्रकाशकं योगैर्ध्यायेच्चानन्यभावनः।**

सकाम कर्म करने से जीवात्मा दक्षिणायन के द्वारा चन्द्रलोक में जाता है। वहाँ अपने कर्मों के फल भोगकर वह संसार में लौट आता है। योगी योगाभ्यास और विवेक ज्ञान का सहारा लेते हैं। योगाभ्यास और विवेकज्ञान

एक दूसरे के सहायक होते हैं। विवेक ज्ञान और योगाभ्यास में नित्य लगे रहने वाले योगी का शरीर नष्ट नहीं होता। विवेकज्ञान का उपाय है कि योगी इस जगत् में व्याप्त परमात्मा की सत्ता अनुभव करे। परमात्मा का यह स्वरूप विकार युक्त है। किन्तु परमात्मा निर्विकार है। यह भावना करके योगी को योगाभ्यास के द्वारा इस निर्विकार ब्रह्म का निरन्तर चिन्तन करना चाहिये।

**योगज्ञाने न विद्येते तस्य भावो न सिध्यति।।२१।।**
**तस्मादभ्यासयोगेन मनःप्राणान्निरोधयेत्।**
**योगी निशितधारेण क्षुरेणैव निकृन्तयेत्।।२२।।**
**शिखाः ज्ञानमयी वृत्तिर्यमाद्यष्टाङ्गसाधनैः।**

यदि व्यक्ति उचित ढंग से योगाभ्यास नहीं करता तो उसे विवेकज्ञान की प्राप्ति और योगसिद्धि नहीं होती, इसलिये उचित योगाभ्यास के द्वारा योगी को अपने मन और प्राणों पर नियन्त्रण करना चाहिये। योगाभ्यास रूपी तेजधार वाले चाकू से योगी को ब्रह्मज्ञान में रुकावट डालने वाले अज्ञान को काट डालना चाहिये। यम-नियम, आसन-प्राणायाम आदि योग के आठ अंगों के द्वारा ज्ञानमयी वृत्ति मन में उदय होती है। यही योगशिखा कहलाती है।

## कर्मज्ञान और योगज्ञान

**ज्ञानयोगः कर्मयोगः कर्मयोग इति योगो द्विधा मतः।।२३।।**
**क्रियायोगमथेदानीं शृणु ब्राह्मणसत्तम।**
**अव्याकुलस्य चित्तस्य बन्धनं विषये क्वचित्।।२४।।**
**यत्संयोगो द्विजश्रेष्ठ स च द्वैविध्यमश्नुते।**
**कर्म कर्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु।।२५।।**
**बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते।**
**यतचित्तस्य सततमर्थे श्रेयसि बन्धनम्।।२६।।**
**ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः।**
**यस्योक्तलक्षणे योगे द्विविधेऽप्यव्ययं मनः।।२७।।**

**स याति परमं श्रेयो मोक्षलक्षणमञ्जसा।**

योग दो प्रकार का है– ज्ञानयोग और कर्मयोग। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! अब क्रियायोग के बारे में सुनो। किसी लक्ष्य पर शान्त मन को लगाना चाहिये और दो प्रकार के कर्म करने चाहियें। मन से ईश्वर की उपासना करनी चाहिये तथा शास्त्र द्वारा बताये गये करने योग्य या कर्त्तव्यकर्म किसी फल की इच्छा के बिना अवश्य करने चाहियें। निष्काम कर्म करते हुए मन में ईश्वर का चिन्तन करते रहना कर्मयोग कहलाता है। एकाग्र मन से श्रेय मार्ग पर चलते रहना ज्ञान योग कहलाता है। ज्ञानयोग; कल्याणकारी है और सभी प्रकार की सफलताएँ प्रदान करता है। जिस साधक का मन क्रियायोग और ज्ञानयोग में निरन्तर लगा रहता है उसे जल्दी ही मोक्ष मिलता है।

## निर्विशेष ब्रह्म को जानने का उपाय – अष्टाङ्ग योग

### यम

**देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः।।२८।।**

शरीर और इन्द्रियों के विषयों से वैराग्य या उदासीनता की भावना यम कहलाता है।

### नियम

**अनुरक्ति परे तत्त्वे सततं नियमः स्मृतः।**

परम तत्व अर्थात् सर्वश्रेष्ठ तत्व ब्रह्म का सदा स्मरण करते रहना योग का दूसरा अंग नियम कहलाता है।

### आसन

**सर्ववस्तुन्युदासीनभाव आसनमुत्तमम्।।२९।।**

संसार की सभी वस्तुओं से विरक्ति या वैराग्य आसन कहलाता है।

### प्राणायाम

**जगत् सर्वमिदं मिथ्याप्रतीतिः प्राणसंयमः।**

यह सारा संसार मिथ्या है, इसकी सत्ता क्षणिक या अस्थायी है, असत् है यह मानना प्राणायाम है।

### प्रत्याहार

**चित्तस्य अन्तर्मुखी भावः प्रत्याहारस्तु सत्तम।।३०।।**

मन को या चित्त को अन्तर्मुख रखना प्रत्याहार होता है। प्रत्याहार के अभ्यास में मन को बाह्य विषयों से हटाकर इन्द्रियों को वश में रखना होता है। इस प्रकार के निरन्तर अभ्यास से चित्त को अन्तर्मुख बनाया जाता है और आँख, कान, नाक, जीभ आदि प्रत्येक इन्द्रिय को अपने-अपने विषय से दूर करना होता है। ऐसे अभ्यास से इन्द्रियों पर संयम रखने के लिये अन्य किसी उपाय की आवश्यकता नहीं रहती।

### धारणा

**चित्तस्य निश्चलीभावो धारणा धारणं विदुः।**

चित्त की स्थिरता धारणा कहलाती है। धारणा के अभ्यास के लिये नाभि, हृदय, भ्रूमध्य के अन्दर (आध्यात्मिक देश) या बाहर किसी विषय में चित्त का बन्धन करने का या चित्त लगाने का प्रयत्न करना चाहिये। धारणा का प्रधान स्थान हृदय-पुण्डरीक है। ''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'' (पा०यो० ३/१) अर्थात् चित्तवृत्ति को किसी स्थान पर ठहराना धारणा का लक्षण है। **''धारणेत्युच्यते चेयं धार्यते यन्मनस्तया''।।याज्ञ० ३/२०१।।** जिस अभ्यास से मन की वृत्तियों या विचारों को एक ही विषय पर ठहराया जाता है वह प्रयत्न धारणा कहा जाता है। धारणा की अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय का समान प्रवाह जारी नहीं रहता। मन में रह-रह कर अन्य विचार भी उठते रहते हैं।

### ध्यान

**सोऽहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते।।३१।।**

मैं केवल चिन्मात्र, चैतन्यस्वरूप ही हूँ मन में यह विचार बनाये

रखना ध्यान कहलाता है। धारणा की एकतानता अर्थात् धारणा में खण्ड-खण्ड रूप से हो रहे ज्ञान का अखण्ड रूप में हो जाना ध्यान है। धारणा में ज्ञान पानी की बूंद के समान है किन्तु ध्यान में यह ज्ञान मधु या तेल की धारा के समान एकतान हो जाता है। चित्त को ध्येय विषय में निरन्तर लगाये रखना। धारणा में चित्तवृत्ति को जिस ध्येय पर लगाया जाता है उसी ध्येय के बारे में चित्तवृत्ति का प्रवाह लगातार बने रहना और बीच में किसी विचार का न उठना ध्यान। ध्यान के बीच मन में अन्य कोई वृत्ति नहीं उठती अपितु एक जैसी वृत्तियों का प्रवाह मन में लगातार बना रहता है।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्त्रार शरीर ये चक्र और कोमल तालु, जिह्वा का अगला भाग और ब्रह्मरन्ध्र ये ध्यान के स्थान हैं।

## समाधि

**ध्यानस्य विस्मृतिः सम्यक् समाधिरभिधीयते।**

मैं ध्यान कर रहा हूँ यह विचार पूरी तरह भूल जाना समाधि कहलाती है। अपने को भूले हुए की तरह इच्छित विषय पर चित्त स्थिर रखना। जैसे नमक पानी में घुल जाता है वैसे ही योगाभ्यास के द्वारा मन जब आत्मा में लीन हो जाता है उस स्थिति को समाधि कहा जाता है। योगाभ्यास से जब प्राणवायु क्षीण होकर मन के साथ समरस हो जाता है, वह भी समाधि की अवस्था होती है। जब मन के सारे संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं और मन; जीवात्मा के साथ परमात्मा में मिल जाता है, वह भी समाधि की अवस्था होती है। "**तदेव अर्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।।पा० यो० ३/३।।**"

ध्यान की अवस्था में जब ध्येय, अर्थमात्र भासता रहे और ध्यान स्वरूपशून्य हो जाय। ध्यान की अवस्था में ध्येय की वृत्ति का प्रवाह समानरूप से चित्त में लगातार बना रहता है और ध्याता, या ध्यान करने वाले को पता चलता रहता है कि मैं अमुक वस्तु या स्थान पर या ध्येय पर ध्यान लगा रहा हूँ अर्थात् उसके चित्त में ध्याता, ध्येय और ध्यान का भास होता रहता है। चित्त में ध्याता और ध्यान की वृत्ति बनी रहने से ध्येय पदार्थ

का ज्ञान पूरी तरह नहीं हो पाता। किन्तु ध्यान की अवस्था बढ़ने पर चित्तवृत्ति में ध्येय का स्वरूप और अधिक स्पष्ट होने लगता है तथा ध्येय वस्तु का स्पष्ट ज्ञान कराने के कारण ध्याता और ध्यान स्वरूप से अर्थात् अपनेपन से रहित (शून्य) भासने लगे और ध्येय का स्वरूप ध्याता और ध्यान के साथ मिलकर (अभिन्न होकर) ध्येयाकार वृत्ति में पूरी तरह से भासने लगे तब ध्यान की यह अवस्था समाधि कहलाती है। ध्यान की अवस्था में ध्येय पदार्थ का भान होता रहता है किन्तु समाधि की अवस्था में ध्यान; ध्येयमात्र से भासता है।

''**सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः**'' अर्थात् विक्षेपों को मन से हटाकर किसी विषय पर मन को एकाग्र करना समाधि कहलाता है। समाधि की अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय की इस त्रिपुटी का भान समाप्त हो जाता है और ध्याता तथा ध्यान भी ध्येयाकार या विषयाकार होकर अपने स्वरूप से शून्य जैसे भासने लगते हैं।

> ''**ध्यातृ ध्याने विहाय निवातस्थित दीपवत् ध्येयैकगोचरं चित्तं समाधिर्भवति।**''

ध्याता और ध्यान को भूलकर वायुरहित स्थान में रखे दीपक की निश्चल शिखा की तरह चित्त में ध्येय वस्तु का ही भान होने की अवस्था समाधि कहलाती है।

> ''**ध्यानादस्यन्दन बुद्धेः समाधिरभिधीयते।**'' विश्वरूपाचार्य

बुद्धि या चित्त से ध्यान का न टूटना समाधि कहलाता है।

ध्यान करते-करते जब हम अपने को भूल जाते हैं, जब केवल ध्येय पदार्थ की सत्ता ही पता चलती रहती है तथा अपनी सत्ता भूल जाती है। ध्येय वस्तु से अपना अलगाव पता नहीं चलता है। ध्येय वस्तु पर इस प्रकार निरन्तर चित्त लगे रहना ही समाधि है।

> ''**समाधीयतेऽस्मिन् पुरुषोपभोगाय सर्वमिति समाधिः**'' शंकराचार्य

पुरुष के भोग के लिये जिसमें सबकुछ स्थापित किया जाता है वह समाधि की अवस्था है।

**समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः।**
**संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।।**
**यत् समत्वं द्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः।**
**स नष्ट सर्वसंकल्पः समाधिरित्यभिधीयते।।**
**परमात्मात्मनोः योऽयमविभागः परन्तप।**
**स एव तु परो योगः समासात् कथितस्तव।।**

योगी याज्ञवल्क्यस्मृति

जीवात्मा और परमात्मा की समान अवस्था समाधि है। जीवात्मा और परमात्मा का मिलन योग है। जीवात्मा और परमात्मा इन दोनों का आपस में पूरी तरह मिल जाना और योगी के मन के सभी संकल्प-विकल्पों की पूरी तरह समाप्ति समाधि कहलाती है। आत्मा और परमात्मा का एक हो जाना ही श्रेष्ठ योग है जिसे हे अर्जुन! मैंने तुम्हें संक्षेप में बताया है।

समाधि के सम्बन्ध में उपनिषद के ये वाक्य स्मरणीय हैं— **"शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा आत्मनि एव आत्मानं पश्यति।।"** बृह०उप० ४/४/२३।।

मन को सुख-दुख के आवेगों से शान्त रखने वाला, अपनी इन्द्रियों का दमन करने वाला अर्थात् दान्त, उपरत यानी विषय भोगों से उदासीन, तितिक्षु– सुख-दुख, गर्मी-सर्दी, मान-अपमान, भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करने वाला, समाहित मन में उठने वाले तरह-तरह के विचारों को रोकने वाला बनकर आत्मवित् अर्थात् आत्मज्ञानी योगी अपने आत्मा में ही परमात्मा को देखता है।

**नाविरतो दुश्चरितात् न अशान्तो न असमाहितः।**
**न अशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेन एनम् आप्नुयात्।।**

कठ० २/२४

जो व्यक्ति दुराचार से हटा नहीं है, जो अशान्त है, जिसका मन विषयों में फंसा रहने के कारण चंचल रहता है और अस्थिर मानसिक स्थिति वाला व्यक्तिः परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता। योगी प्रकृष्ट ज्ञान से या प्रज्ञान से परमात्मा का साक्षात् कर सकता है।

समाधि के द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार या परमार्थ सिद्धि होती है।

**दस यम**

**अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।।३२।।**

**क्षमा धृतिर्मिताहार:शौचं चेति यमा दश।**

**अहिंसा** किसी प्राणी को न मारना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना, सभी प्राणियों पर दया करना, सरल व्यवहार करना, क्षमा, धैर्य, नपा-तुला भोजन करना, शरीर और मन को शुद्ध रखना ये दस बातें यम कहलाती हैं।

**तप: सन्तुष्टिरास्तिक्यं दानमाराधनं हरे:।।३३।।**

**वेदान्त श्रवणं चैव ह्रिर्मतिश्च जपो व्रतम् ।। इति।।**

तप; तपस्या अर्थात् विषय सुख का त्याग। भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्वों को सहन करने का अभ्यास, "**द्वन्द्व सहनं तप:।" सुखत्यागे तपोयोगं सर्वत्यागे समापनम्।।**शान्तिपर्व २१९/१८।।

शरीर, इन्द्रियों और मन तथा प्राण को उचित रीति और अभ्यास से वश में करना। ज्ञानमय तप सेवनीय है—

**"तच्च चित्तप्रसादनं बाधमानमनेनऽऽसेव्यमिति मन्यन्ते।"**

जो तप चित्त की प्रसन्नता का कारण हो तथा शरीर और इन्द्रियों को पीड़ा न पहुँचाये वही सेवनीय है।

**"तपसाऽनाशकेन"** शरीर का नाश न करने वाला तप ही सेवनीय होता है। तपस्या से शरीर और मन की अशुद्धि नष्ट होने पर शरीर से सम्बद्ध अणिमा आदि सिद्धियाँ और दूर का शब्द सुनने जैसी इन्द्रियों की सिद्धियाँ होती हैं। यम-नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने से और तपस्या से देह तथा इन्द्रियों की अशुद्धि नष्ट होकर शरीर और इन्द्रियाँ अध्यात्म की दिशा में सर्वोच्च प्रगति के लिये सशक्त बनती हैं।

मन में सन्तोष की भावना, ईश्वर की सत्ता में विश्वास, दान देना, प्रभु स्मरण, वेदान्त के शास्त्रों का सुनना, संकोच पूर्वक रहना अर्थात् किसी तरह का दिखावा या घमण्ड न करना, नियमित रूप से हरिनाम का जप करना और व्रतों का पालन करना।

## आसन

**आसनानि तदङ्गानि स्वस्तिकादीनि वै द्विज।।३४।।**
**वर्ण्यन्ते स्वस्तिकं पादतलयोरुभयोरपि।**
**पूर्वोत्तरे जानुनी द्वे कृत्वासनमुदीरितम्।।३५।।**

## स्वस्तिक आसन

स्वस्तिक आदि आसन और इनके अंगों का वर्णन इस प्रकार है। दोनों पैरों के पंजे दायीं और बायीं जांघों तथा दोनों पिण्डलियों के बीच फंसाकर सीधे बैठना स्वस्तिक आसन है।

## गोमुखासन

**सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।**
**दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोर्मुखं यथा।।३६।।**

बायीं जांघ पर दायें पैर की एड़ी लाकर एड़ी को पीठ की ओर ले जाना चाहिये। दोनों घुटने मुड़ने से और एक दूसरे के पास होने से गाय के मुँह जैसे दीखने लगते हैं इसीलिये यह आसन गोमुखासन कहा जाता है।

हठयोग प्रदीपिका के प्रथम उपदेश के बीसवें श्लोक में भी गोमुखासन की यही पद्धति बताई गई है। किन्तु इन दोनों ही स्थलों पर गोमुखासन की पूरी विधि स्पष्ट नहीं की गई है।

इन दिनों प्रचलित विधि के अनुसार दायां पैर, बायीं जांघ पर रखते हैं। बायां पैर मोड़कर इसकी एड़ी योनि स्थान अर्थात् मूत्रेन्द्रिय और गुदा के बीच में सीवनी पर रखनी चाहिये। अब बांया हाथ पीठ के पीछे ले जाकर दांये कन्धे की ओर बढ़ाना चाहिये और दांया हाथ गर्दन तथा दांये कन्धे के बीच से पीछे ले जाकर दोनों हाथों की अंगुलियाँ आपस में फंसा लेनी चाहियें। गर्दन उठाकर दांयी कोहनी का सिरा देखते रहना चाहिये। थोड़ी देर बाद इसी प्रकार बांया पैर दांये पैर की जांघ पर रखकर बांयी एड़ी को योनिस्थान पर लगाया जाता है। दांया हाथ पीठ के पीछे ले जाकर बांये कन्धे की ओर बढ़ाकर पीछे आये हुए बांये हाथ की अंगुलियाँ पकड़ने का

प्रयत्न करना चाहिये और गर्दन उठाकर बांयी कोहनी देखनी चाहिये।

गोमुखासन के नियमित अभ्यास से कन्धों और गर्दन का दर्द दूर हो जाता है। जकड़े हुए कन्धे खुल जाते हैं। कम्प्यूटर पर देर तक लगातार काम करने वालों को यह आसन करना चाहिये। यह आसन दिन में किसी भी समय कुर्सी पर बैठे-बैठे भी किया जा सकता है। गोमुखासन से स्पोण्डिलाइटस (Spondilitus) ठीक हो जाती है।

**वीरासन**

**एकं चरणम् अन्यस्मिन् ऊरौ आरोप्य निश्चलः।**
**आस्ते यदि दमेनोघ्नं वीरासमुदीरितम्।।३७।।**

गोमुखासन की तरह एक पैर मोड़कर मुड़े हुए पैर की जांघ पर दूसरा पैर रखकर सीधे और बिना हिले-डुले बैठना वीरासन कहलाता हैं। इस आसन में बैठने का अभ्यास करने से शरीर के अंगों का दर्द दूर हो जाता है।

**योगासन**

**गुदं नियम्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।**
**योगासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः।।३८।।**

पैरों की एड़ियों से गुदा को दबाकर बैठना चाहिये और मन एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिये। दोनों पैरों की किसी भी एड़ी से गुदा को दबाकर बैठना योगासन कहलाता है।

**पद्मासन**

**ऊर्वोरुपरि वै धत्ते यदा पादतले उभे।**
**पद्मासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविषापहम्।।३९।।**

दोनों पैर मोड़कर पंजों को दोनों पैरों की जांघों पर रखकर बैठने से पद्मासन लग जाता है। पद्मासन में देर तक बैठने से शरीर की सारी बीमारियाँ और विष का प्रभाव दूर हो जाता है।

**बद्धपद्मासन**

**पद्मासनं सुसंस्थाप्य तदङ्गुःष्ठद्वयं पुनः।**
**व्युत्क्रमेण हस्ताभ्यां बद्धपद्मासनं भवेत्।।४०।।**

पद्मासन में बैठकर दोनों हाथ पीठ के पीछे ले जाकर दोनों पैरों के अंगूठे पकड़कर बद्ध पद्मासन किया जाता है।

**कुक्कुटासन**

**पद्मासनं सुसंस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।**
**निवेश्य भूमौ आतिष्ठेत् व्योमस्थः कुक्कुटासनः।।४१।।**

पद्मासन लगाकर दोनों हाथों को जांघों और घुटनों के बीच से निकालकर दोनों हाथों को जांघों और घुटनों के बीच से निकालकर दोनों हाथ जमीन पर रखकर और दोनों हाथों के सहारे सारा शरीर आकाश में उठाकर कुक्कुटासन किया जाता है।

**उत्तान कूर्मासन**

**कुक्कुटासनबन्धस्थो दोर्भ्यां सम्बध्य कन्धरम्।**
**शेते कूर्मवदुत्तान एतत् उत्तान कूर्मकम्।।४२।।**

कुक्कुटासन लगाकर दोनों हाथों से गर्दन पकड़े रखकर कछुए की तरह बैठे रहने से उत्तानकूर्मासन होता है।

**धनुरासन**

**पादांगुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।**
**धनुराकर्षकाकृष्टं धनुरासनमीरितम्।।४३।।**

पेट के बल लेटकर दोनों हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़ कर इन्हें कानों तक लाना चाहिये। पैरों के अंगूठों को कान तक लाने के लिये कमर धनुष की तरह मुड़ जाती है और सारे शरीर का भार पेट पर आ जाता है।

## सिंहासन

**सीवनीं गुल्फदेशाभ्याम् निपीड्य व्युत्क्रमेण तु।**
**प्रसार्य जानुनो हस्ताजासनं सिंहरूपकम्।।४४।।**

दांये और बांये पैरों की एड़ियाँ अण्डकोशों के नीचे और सीवनी की बगल में इस तरह रखनी चाहियें कि दांयी एड़ी; बांयी जांघ और नितम्ब के नीचे आ जाय और बांयी एड़ी दांयी जांघ तथा नितम्ब के बीच आ जाय। दोनों हथेलियाँ और अंगुलियाँ फैलाकर घुटनों पर रखकर और शेर की तरह मुख खोलकर बैठना सिंहासन होता है।

## भद्रासन

**गुल्फौ च वृषणस्याधः सीविन्युभयपार्श्वयोः।**
**निवेश्य भूमौ हस्ताभ्यां बद्धवा भद्रासनं भवेत्।।४५।।**

दांये और पैर की एड़ियाँ अण्डकोशों के नीचे और सीवनी के पास लगानी चाहियें। हाथों को भूमि पर रखकर बैठने से भद्रासन होता है।

## मुक्तासन

**सीवनीपार्श्वमुभयं गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण तु।**
**निपीड्यासनमेतच्च मुक्तासनमुदीरितम्।।४६।।**

दांये और बांये पैरों की एड़ियाँ सीवनी की बगल में इस तरह रखनी चाहियें कि दांयी एड़ी बांयी जांघ के नीचे और बांयी एड़ी दांयी जांघ के नीचे आ जाय। एड़ियों का दबाव सीवनी पर रहना चाहिये। यही मुक्तासन की विधि है।

## मयूरासन

**अवष्टम्य धरां सम्यक् तलाभ्यां हस्तयोर्द्वयोः।**
**कूर्परौ नाभिपार्श्वे तु स्थापयित्वा मयूरवत्।।४७।।**
**समुन्नत शिरः पादं मयूरासनमिष्यते।**

दोनों हथेलियाँ जमीन पर रखकर और कोहनियों से नाभि दबाकर हाथों के सहारे सारा शरीर उठाना चाहिये। अब दोनों पैर फैलाने चाहियें और सिर उठाना चाहिये। यही मयूरासन कहलाता है।

**मत्स्येन्द्रासन**

**वामोरूमूले दक्षाङ्घ्रिं जान्वोः वेष्टितपाणिना।।४८।।**
**वामेन वामाङ्गुष्ठं तु गृहीतं मत्स्यपीठकम्।**

बांयी जांघ की जड़ (मूल) पर दाहिने पैर का तलुआ जमाकर लगाना चाहिये। बांया हाथ पीठ के पीछे से लाकर और दांयी जांघ से आगे ले जाकर दांये पैर को पंजे से ऊपर बांये हाथ से पकड़ना चाहिये। दांये हाथ को बांये पैर के घुटने से आगे ले जाकर बांये पैर का अंगूठा पकड़कर बैठना मत्स्येन्द्रासन कहलाता है। इसके बाद बांये पैर के तलुए के पास दांये पैर का घुटना लाया जाता है और बांये पैर का तलुआ दांये घुटने के पार ले जाया जाता है। यह आसन बहुत कठिन है, इसलिये बड़ी आयु में इसे करना कठिन होता है क्योंकि शरीर में लचक नहीं रहती। इसलिये अर्धमत्स्यासन करने से भी मत्स्येन्द्रासन के कुछ लाभ मिल जाते हैं। **हठयोग प्रदीपिका।।**१/२७।। के अनुसार मत्स्येन्द्रासन के अभ्यास से भूख बढ़ती है। शरीर के रोग नष्ट हो जाते हैं। कुण्डलिनी शक्ति जगाने में सहायता मिलती है। यह आसन ब्रह्मरन्ध्र से कोमल तालु पर टपकने वाले अमृत रस को नाभि में गिरकर नष्ट होने से रोकता है।

**सिद्धासन**

**योनिं वामेन संपीड्य मेढ्रादुपरि दक्षिणम्।।४९।।**
**ऋजुकायः समासीनः सिद्धासनमुदीरितम्।**

गुदा और मूत्रेन्द्रिय (लिंग) के बीच का स्थान योनि या सीवनी कहलाता है। यहाँ पर बांये पैर की एड़ी लगाकर और मेढ्र या लिंगमूल पर अर्थात् नाभि से नीचे पेडू के पास दांयी एड़ी रखनी चाहिये। दोनों पैरों के पंजों को जांघों और पिण्डलियों के बीच फंसा लेना चाहिये। ऐसा करने से शरीर का सारा भार बांयी एड़ी के ऊपर आ जाता है। कमर सीधी रखकर बैठे रहना चाहिये। सिद्धासन में बैठने का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिये। सभी आसनों में सिद्धासन सबसे अधिक अच्छा है। ध्यान करने में यह आसन बहुत सहायक और उपयोगी है।

**पश्चिमोत्तान आसन**

**प्रसार्य भुवि पादौ तु दोर्भ्यामङ्गुष्ठमादरात्।।५०।।**
**जानूपरि ललाटं तु पश्चिमंतानमुच्यते।**

जमीन पर दोनों पैर सीधे फैलाकर बैठना चाहिये। हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ने चाहियें और आगे झुककर माथे को दोनों घुटनों पर लगाने से पश्चिमोत्तान आसन होता है। हठयोगप्रदीपिका।।१/२९।। के अनुसार पश्चिमोत्तानासन के नियमित अभ्यास से प्राणवायु; सुषुम्ना नाड़ी में चलने लगता है। भूख बढ़ जाती है, बढ़ा हुआ पेट अन्दर चला जाता है और शरीर नीरोग रहता है।

**सुखासन**

**येनकेन प्रकारेण सुखं धार्यं च जायते।।५१।।**
**तत् सुखासनमित्युक्तम् अशक्त स्तत् समाचरेत्।**
**आसनं विजितं येन तेन जितं जगत् त्रयम्।।५२।।**

शरीर को कष्ट दिये बिना जिस किसी भी तरह आराम से बिना हिले-डुले बैठा जा सके वह आसन सुखासन कहलाता है। दुर्बल व्यक्ति को सुखासन में बैठना चाहिये। जो साधक आसन अच्छी तरह करने लगते हैं उन्हें योगाभ्यास में सफलता मिलती है।

**प्राणायाम**

**यमैश्च नियमैश्चैव आसनैश्च सुसंयतः।**
**नाडीशुद्धिं च कृत्वादौ प्राणायामं समाचरेत्।।५३।।**

यम-नियमों का भली भांति पालन करते हुए और आसनों का अभ्यास करते हुए तथा षट् कर्मों से नाड़ी शुद्धि करने के बाद प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

**देहमानं स्वाङ्गुलिभिः षण्णवत्यङ्गुलायतम्।**
**प्राणः शरीरादधिको द्वादशाङ्गुलमानतः।।५४।।**

**देहस्थमनिलं देहसमुद्भूतेन वह्निना।**
**न्यूनं समं वा योगेन कुर्वन् ब्रह्मविद् इष्यते।।५५।।**

शरीर को अपनी अंगुलियों से मापने पर पता चलता है कि शरीर ९६ अंगुलि लम्बा होता है। हमारी प्राणवायु सामान्यरूप से शरीर से १२ अंगुलि तक बाहर जाती है। शरीर की अग्नि या गर्मी को शरीर में उत्पन्न उष्णता से योगी आवश्यकतानुसार कम या समान कर लेते हैं।

### श्वास-प्रश्वास व आयु

श्वास-प्रश्वास के साथ प्राणियों की आयु का निकट सम्बन्ध है। जिस प्राणी का श्वास-प्रश्वास जितना कम होता है उसकी आयु उतनी ही अधिक हो जाती है। श्वास-प्रश्वास जितना अधिक होगा, उतनी ही आयु कम हो जाती है। प्राचीन योगियों ने समय के परिमाण और श्वास-प्रश्वास की संख्या के अनुपात से आयु का हिसाब निकाला था। आधुनिक योगियों ने एक मिनट के अनुसार जो अनुपात निश्चित किया है उसके अनुसार कछुआ एक मिनट में ४ से ५ बार तक श्वास-प्रश्वास लेता है इसलिये उसकी आयु १५०-१५५ वर्ष तक होती है। सांप एक मिनट में ७ से ८ बार तक श्वास-प्रश्वास लेता है अत: उसकी आयु १२०-१२२ वर्ष तक होती है। मनुष्य एक मिनट में १२-१३ बार श्वास-प्रश्वास लेता है इस कारण उसकी आयु १०० से १५० वर्ष तक होती है। उपरोक्त श्लोक में भी कहा गया है कि "**प्राणः शरीरात् अधिको द्वादशाङ्गुलमानतः**" अर्थात् हमारी प्राणवायु शरीर से बारह अंगुल तक बाहर जाती है इस का अभिप्राय यही हो सकता है कि साधारण अवस्था में मनुष्य एक मिनट में १२ बार श्वास-प्रश्वास लेता है। यह बात आधुनिक योगियों के हिसाब से ठीक भी लगती है।

मनुष्य एक दिन-रात में १८ हजार ७ सौ २० बार श्वास-प्रश्वास लेता है। एक मिनट में १३ बार श्वास-प्रश्वास के हिसाब से २४ घण्टों में या १४४० मिनटों में मनुष्य १८७२० बार श्वास-प्रश्वास लेता है। कुछ योगियों के अनुसार प्राचीन काल में मनुष्यों के श्वास-प्रश्वास की संख्या आजकल से कम थी इसलिये आयु अधिक होती थी। आजकल मनुष्य के

श्वास-प्रश्वास की संख्या अधिक होने से मनुष्य की आयु घटती जा रही है। यदि मनुष्य प्राणायाम का अभ्यास जितना अधिक करेंगे उसी अनुपात से उनकी आयु बढ़ती रहेगी। प्राणायाम का अच्छा अभ्यास होने से शरीर नीरोग रहता है। शरीर से बारह अंगुलि तक या बारह बार तक श्वास बाहर जाय तो यह स्वाभाविक है। चलते समय १६ अंगुलि तक, भोजन के समय २० अंगुलि तक, दौड़ते समय २४ अंगुलि तक, और सोते समय ३० अंगुलि तक प्राणवायु की स्वाभाविक गति है। इसमें गड़बड़ी होने से आयु घटती है। योगी जानते हैं यदि मनुष्य अपने श्वास को कम कर सके तो वह अपनी निश्चित आयु से भी अधिक समय तक जीवित रह सकता है।

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार शरीर की नस-नाड़ियों में प्राणवायु भली भांति नहीं आ-जा सकता, विशेषरूप से इडा और पिंगला के बीच वाली सुषुम्ना नाड़ी में प्राणवायु की गति नहीं हो पाती। इसलिये मन में उन्मनी भाव या मन की एकाग्रता नहीं आ सकती और न ही मोक्ष-प्राप्ति हो सकती है। मल से भरी हुई नस-नाड़ियाँ जब नेति, धौति, वस्ति आदि षट्कर्म की क्रियाओं से साफ हो जाती हैं तभी योगी प्राणवायु को रोक पाता है। इसलिये सात्विक गुण से युक्त बुद्धि से अर्थात् ईश्वर-चिन्तन, उत्साह, साहस, प्रयत्न आदि के साथ और अस्थिर मन, आलस्य आदि राजसिक और तामसिक गुणों से रहित, ज्ञान और विवेक-पूर्ण बुद्धि से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये, जिससे सुषुम्ना नाड़ी के मैल निकल कर सुषुम्ना नाड़ी साफ हो जाय।

### अग्निमण्डल का स्वरूप

**देहमध्ये शिखिस्थानं तप्त जाम्बूनदप्रभम्।**
**त्रिकोणं द्विपदाम् अन्यत् चतुरस्त्रं चतुष्पदाम्।।५६।।**
**वृत्तं विहङ्गमानां तु षडस्त्रं सर्पजन्मनाम्।**
**अष्टास्त्रं स्वेदजानां तु तस्मिन् दीपवत् उज्ज्वलम्।।५७।।**

हमारे शरीर के बीच में अग्नि मण्डल है, जिसकी कान्ति या चमक तपाये हुए सोने के रंग जैसी है। दोपायों के शरीरों में यह अग्निमण्डल

त्रिकोण के आकार का है। चौपायों में चार कोणों वाला है। पक्षियों के शरीरों में गोल आकृति का है। सांपों और रेंगकर चलने वाले जीवों के शरीरों में छह कोणों का और पसीने से उत्पन्न जूं, खटमल आदि में आठ कोणों का होता है। इसकी चमक दीपक की भांति होती है।

**कन्दस्थान**

**कन्दस्थानं मनुष्याणां देहमध्यं नवाङ्गुलम्।**
**चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतम्।।५८।।**
**अण्डाकृति तिरश्चां च द्विजानां च चतुष्पदाम्।**
**तुन्दमध्यंतदिष्टं वै तन्मध्यं नाभिरिष्यते।।५९।।**

मनुष्यों के शरीरों के बीच से नौ अंगुलि ऊपर कन्द होता है। यह चार अंगुलि चौड़ा तथा चार अंगुलि लम्बा और अण्डे जैसा होता है। सांपों, पक्षियों और चौपाये प्राणियों में कन्द पेट के बीच में होता है और इसके बीच में नाभि होती है।

याज्ञवल्क्य के अनुसार गुदा से दो अंगुलि ऊपर और मेढ्र अर्थात् लिङ्गमूल से दो अंगुलि नीचे मनुष्य के शरीर का मध्यभाग होता है। शरीर के मध्यभाग से नौ अंगुलि ऊपर कन्द का स्थान है। यह कन्द चार अंगुलि चौड़ा और चार अंगुलि लम्बा होती है। इसकी शक्ल अण्डे जैसी होती है। यह चमड़ी अर्थात् त्वक् और नाड़ियों आदि के गुच्छे जैसा होता है। चौपायों, पक्षियों और सांपों आदि के शरीर में कन्द उनके पेट के बीच में होता है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के श्लोक ५८ और ५९ का वर्णन याज्ञवल्क्य के वर्णन से मिलता है।

किन्तु हठयोगप्रदीपिका के अनुसार कन्द का स्थान मूलाधार से एक बालिश्त ऊपर है:-

**ऊर्ध्वं वितस्तिमात्रं तु विस्तारं चतुरङ्गुलम्।**।हठ०प्र० ३/११३।।

गोरक्षपद्धति में कन्द का स्थान मेढ्र अर्थात् लिंगमूल से ऊपर और नाभि से नीचे अण्डे जैसी आकृति वाला बताया गया है:-

**ऊर्ध्वं मेढ्रादधोः नाभेः कन्दयोनिः खगाण्डवत्।**।गोरक्ष १/२४।।

त्रिशिरिवब्राह्मणोपनिषद्, याज्ञवल्क्य, हठयोग प्रदीपिका और गोरक्षपद्धति में कन्द का स्थान एक जैसा ही बताया गया है। शक्ति चालन मुद्रा में कन्द को दबाया जाता है।

**नाड़ी चक्र में जीव की गति**

**तत्र चक्रं द्वादशारं तेषु विष्ण्वादिमूर्तयः।**
**अहं तत्र स्थितश्चक्रं भ्रामयामि स्वमायया।।६०।।**
**अरेषु भ्रमते जीवः क्रमेण जीवसत्तम।**
**तन्तुपञ्जरमध्यस्था यथा भ्रमति लूतिका।।६१।।**
**प्राणाधिरूढश्चरति जीवस्तेन विना न हि।**

नाभि के बीच में नाड़ीचक्र है जिसके बारह अरे हैं। अरे वे लकड़ियाँ हैं, जो चक्र (पहिये) को मजबूत बनाने के लिये चक्र और नाभि में लगी होती है। इन बारह अरों में विष्णु आदि देवता विराजमान हैं। मैं अर्थात् ब्रह्म या परमात्मा अपनी माया की शक्ति से इस चक्र या पहिये को घुमा रहा हूँ। गीता में कहा है—

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**
**भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि स्वमायया।।**

हे अर्जुन! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदयों में विराजमान हैं। वे अपनी माया की शक्ति से सभी प्राणियों को यन्त्र पर चढ़ा कर घुमा रहे हैं। यह यन्त्र 'ब्रह्मचक्र' या ब्रह्म का पहिया है। पहिये की परिधि को नेमि कहते हैं। इस नेमि पर ही पहिया घूमता है। ब्रह्म चक्र की नेमि प्रकृति है। प्रकृति पर ही ब्रह्म चक्र चल रहा है।

नाभि के बीच इस नाड़ी चक्र के बारह अरों में जीव क्रमशः उसी तरह घूमता रहता है जैसे जाले में मकड़ी ऊपर नीचे घूमती रहती है। जीव, प्राण के सहारे ही नाड़ी चक्र में घूमता है। प्राण के बिना जीव नाड़ी चक्र में नहीं घूम सकता।

## कुण्डली का स्थान और उसके कार्य

**तस्योर्ध्वे कुण्डलीस्थानं नाभेस्तिर्यगथोर्ध्वतः।।६२।।**
**अष्टप्रकृतिरूपा सा चाष्टधा कुण्डलीकृता।**
**यथावत् वायुसंचारं ज्वलनादि च नित्यशः।।६३।।**
**परितः कन्दपार्श्वे तु निरुध्यैव सदा स्थिता।**
**मुखेनैव समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा।।६४।।**
**योगकालेन मरुता साग्निना बोधिता सती।**
**स्फुरिता हृदयाकाशे नागरूपा महोज्ज्वला।।६५।।**

नाड़ीचक्र के ऊपर कुण्डलिनी का स्थान है। यह स्थान नाभि के चारों ओर, ऊपर और नीचे है। कुण्डलिनी शक्ति कन्द के ऊपर सांप की तरह आठ कुण्डली मारकर सुषुम्ना के द्वार पर सोती रहती है।

गीता के अनुसार प्रकृति का स्वरूप आठ प्रकार का है—

**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।**
**अहंकार इतीयं मे प्रकृतिरष्टधा।।**

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत तथा मन, बुद्धि और अहंकार ये तीन मिलकर प्रकृति के आठ प्रकार हैं। कुण्डली भी आठ लपेटे मारकर कन्द के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र के मुख को बन्द करके सोती रहती है। योगाभ्यास के समय प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु के झोंकों से शरीर की अग्नि जल उठती है। इस अग्नि की गर्मी से जागकर कुण्डलिनी शक्ति हृदयाकाश में नागिन की तरह चमक उठती है और सहस्रार की ओर सुषुम्ना के रास्ते ऊपर जाने लगती है। योगी कुण्डलिनी को जगाकर प्राण और अपान वायुओं को मिला देते हैं।

नाक के बांये स्वर में इडा और दांये स्वर में पिङ्गला नाड़ी से श्वास-प्रश्वास होता है। इन दोनों नाड़ियों के बीच सुषुम्ना नाड़ी है। सुषुम्ना के अन्दर कई सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं जिनमें चित्रिणी नाड़ी भी है। यह नाड़ी कुण्डलिनी शक्ति का मार्ग है। सुषुम्ना के दोनों ओर की नाड़ियाँ इडा और पिङ्गला; कुण्डलिनी शक्ति के दो कुण्डल (कान की बालियाँ) हैं इसीलिये

इस शक्ति का नाम कुण्डलिनी है। सम्पूर्ण सृष्टि को चलाने वाली शक्ति महाकुण्डलिनी है, जो अव्यक्त है। जीव को चलाने वाली कुण्डलिनी शक्ति व्यक्त है। कुण्डलिनी शक्ति के प्रकट होने पर वेग उत्पन्न होता है। इस वेग से जो प्रथम स्फोट (शब्द) होता है, उसे नाद कहते हैं। इस नाद से प्रकाश होता है। जीव सृष्टि में उत्पन्न नाद ही ओंकार है। इसी को शब्द ब्रह्म कहते हैं। निःशब्द स्थान में चित्त स्थिर करने से तथा कुछ प्राणायाम करने से शरीर के अन्दर नाद सुनाई देते हैं। सबसे पहिले नाद प्राय: दांये कान में सुनाई देता है। अभ्यास होने पर हृदय, मस्तिष्क और सारे शरीर में नाद अनुभव होने लगता है। हमारे मस्तिष्क में सहस्रार चक्र है। हमारे चैतन्यमय जीव को जीवन की चेतना, सहस्रार चक्र से अनाहत चक्र अर्थात् हृदय चक्र में आने पर होती है। सहस्रार चक्र में अव्यक्त नाद है। यह अव्यक्त नाद आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) में आकर ओंकार रूप से व्यक्त होता है। इस ओंकार से उत्पन्न होने वाली ५० मातृकाओं (वर्णों) की अव्यक्त स्थिति का स्थान सहस्रार चक्र है। इस स्थान को अकुल स्थान कहते हैं। यही श्री शिवशक्ति का स्थान है। श्री शिवशक्ति अर्धनारी-नटीश्वर है। शक्ति, व्यक्त और शिव, अव्यक्त हैं। ओंकार से पहिले स्वरोत्पत्ति (अ,इ,उ ए आदि) होती है और बाद में व्यञ्जन (क, ख, ग आदि) उत्पन्न होते हैं। आज्ञाचक्र के निचले चक्र; विशुद्ध, अनाहत आदि विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति के स्थान हैं।

कुण्डलिनी शक्ति, योनिस्थान में सोई रहती है। गुदा और लिंग के बीच का स्थान जहाँ सीवनी है वही योनिस्थान है। सोई हुई कुण्डलिनी को योग की क्रियाओं से जगाकर मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार तक ले जाने का अभ्यास कुण्डलिनी योग कहलाता है। शक्ति, ईश्वरी, अरुन्धती, बालरण्डा या बाल विधवा आदि कुण्डलिनी के अनेक नाम हैं। इसका आकार सांप जैसा होता है। शक्ति चालन मुद्रा से इसे जगाकर योगी सुषुम्ना के रास्ते इसे ब्रह्मरन्ध्र में ले जाते हैं। बिजली जैसी चमकीली कुण्डलिनी साढ़े तीन कुण्डलियाँ मारे सांप की तरह कन्द के ऊपर सुषुम्ना के द्वार पर सोती रहती है।

तैजस तत्त्व प्रधान सुषुम्ना के साथ मानसिक रश्मियों के संघर्षण से

उत्पन्न विद्युत जैसी ज्योति का आलंकारिक रूप ही कुण्डलिनी है। सूर्य की किरणों के स्पर्श से जैसे कमल खिल जाते हैं वैसे ही मन की रश्मियां पड़ने पर देहगत आभ्यन्तरिक केन्द्र प्रकाशित होकर दिखने लगते हैं। सम्भवतः इसी भाव के आधार पर इन केन्द्रों (चक्रों) को कमल का नाम दे दिया गया है।

### विशोकाऽज्योति

कन्द के ऊपर की ओर हृदय पिंजर के भीतर एक मांस पिण्ड है। उसका आकार कमल जैसा है, इसीलिये उसका नाम हृत्पद्म है। इस हृत् कमल को रेचक के द्वारा ऊर्ध्वमुख भावना करके उसके पीछे चित्त को धारण करने से एक प्रकार की ज्योति या आलोक का अनुभव होता है। इस ज्योति की तुलना नहीं है। वह तरंगहीन और निःशब्द समुद्र के समान प्रशान्त और मनोरम है, निर्मल और सुशुभ्र है। उसमें सूक्ष्म रूप से क्षण-क्षण में सूर्य-प्रभा, चन्द्र-प्रभा, मणि-प्रभा और अन्य अनेक आलोक स्फुरित होते देखे जाते हैं। इस आलोक या ज्योति के मन में प्रकाशित होने से किसी प्रकार का शोक नहीं रहता है, इसीलिये इस आलोक को या ज्योति को **'विशोका'** कहा जाता है। इस विशोका ज्योति का दूसरा नाम बुद्धि सत्त्व और चैतन्य प्रदीप्त अस्मिता (सात्विक अहंकार) है। हृत्कमल के अन्दर बुद्धि सत्व के ध्यान में निमग्न होने से सम्प्रज्ञात समाधि या अति उत्कृष्ट योग शीघ्र ही उत्पन्न होता है।

### शरीर के मध्य में नाड़ी कन्द का स्वरूप

**अपानाद् द्व्यङ्गुलादूर्ध्वमधो मेढ्रस्य तावता।**
**देहमध्यं मनुष्याणां हृन्मध्यं तु चतुष्पदाम्।।६६।।**
**इतरेषां तुन्दमध्यं नानानाडीसमावृतम्।**
**चतुष्प्रकारव्द्ययुते देहमध्ये सुषुम्नया।।६७।।**
**कन्दमध्ये स्थिता नाड़ी सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता।**
**पद्मसूत्र प्रतीकाशा ऋजुरूर्ध्व प्रवर्तिनी।।६८।।**
**ब्रह्मणो विवरं यावद् विद्युदाभासनाकलम्।**

**वैष्णवी ब्रह्मनाडी च निर्वाणप्राप्ति पद्धतिः।।६९।।**

अपान से अर्थात् गुदा से दो अंगुलि ऊपर और मेढ्र अर्थात् लिंगमूल से दो अंगुलि नीचे मनुष्यों के शरीरों का मध्य भाग होता है। चौपाये पशुओं के शरीरों का मध्यभाग हृदय के बीच में होता है। अन्य प्राणियों के शरीरों का मध्यभाग पेट के अन्दर होता है। यहाँ अनेक नाड़ियों का गुच्छा है।

मनुष्य शरीर के मध्य भाग से नौ अंगुलि ऊपर कन्द होता है। इस कन्द में सुषुम्ना नाड़ी है। यह नाड़ी कमलनाल के तन्तु जैसी पतली है, सीधी है और मूलाधार से ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक गई है। सुषुम्ना को स्थूल शरीर में नहीं देखा जा सकता किन्तु ध्यान के द्वारा इसे देखा जा सकता है। हृदय से मस्तिष्क को जाने वाली सूक्ष्म ज्ञानधारा ही ज्योतिर्मयी सुषुम्ना है। इस नाड़ी में विष्णु के अधिष्ठित होने के कारण इसे वैष्णवी नाड़ी भी कहते हैं। सुषुम्ना ब्रह्मलोक को प्राप्त कराने का साधन है। सुषुम्ना के अन्दर ही कैवल्य नाड़ी भी है।

**इडा च पिङ्गला चैव तस्याः सव्येतरे स्थिते।**
**इडा समुत्थिता कन्दाद् वामनासापुटावधिः।।७०।।**

**पिङ्गला चोत्थिता तस्माद् दक्षनासापुटावधिः।**
**गान्धारी हस्तिजिह्वा च द्वे चान्ये नाडिके स्थिते।।७१।।**

**पुरतः पृष्ठतस्तस्याः वामेतरदृशौ प्रति।**
**पूषा यशस्विनी नाड्यौ तस्मादेव समुत्थिते।।७२।।**

**सव्येतर श्रुत्यवधि पायुमूलादलम्बुसा।**
**अधोगता शुभा नाड़ी मेढ्रान्तावधिरायता।।७३।।**

**पादाङ्गुष्ठावधिः कन्दादधो याता च कौशिकी।**
**दश प्रकार भूतास्ताः कथिताः कन्दसम्भवाः।।७४।।**

**तन्मूला बहवो नाड्यः स्थूलाः सूक्ष्माश्च नाडिकाः।**
**द्वासप्ततिसहस्राणि स्थूलाः सूक्ष्माश्च नाडयः।।७५।।**

**संख्यातुं नैव शक्यन्ते स्थूलमूलाः पृथग्विधाः।**
**यथाऽश्वत्थदले सूक्ष्माः स्थूलाश्च विततास्तथा।।७६।।**

सुषुम्ना के बांयी ओर इडा और दांयी ओर पिंगला नाड़ियाँ हैं। ये दोनों नाड़ियाँ कन्द से शुरू होकर नाक तक जाती हैं। इडा नाक के बांये स्वर तक और पिंगला दांये स्वर तक जाती है। सुषुम्ना के आगे और पीछे गान्धारी और हस्तिजिह्वा नाम की नाड़ियाँ हैं। गान्धारी नाड़ी बांयी आंख की नाड़ी है और हस्तिजिह्वा दांयी आंख की। पूषा और यशस्विनी नाड़ियाँ भी कन्द से शुरू होती हैं। पूषा दांये कान की नाड़ी है और यशस्विनी बांये कान की। गुदा मूल से निकली अलम्बुसा नाड़ी लिंगमूल के अन्त तक फैली हुई है। कौशिकी नाड़ी लिंगमूल के अन्त तक फैली हुई है। कौशिकी नाड़ी कन्द से शुरू होकर पैर के अंगूठों तक जाती है। कन्द से उत्पन्न होने वाली दस नाड़ियों के स्थानों को बता दिया गया है। कन्द से हजारों छोटी-मोटी नाड़ियाँ भी निकलती हैं जो सारे शरीर में फैली हुई हैं। इनकी संख्या ७२ हजार है। स्थूल नाड़ियों से निकली हुई सूक्ष्म नाड़ियों की गिनती नहीं की जा सकती। ये सूक्ष्म नाड़ियाँ सारे शरीर में उसी तरह फैली हुई हैं जैसे पीपल के पत्ते में पतली-पतली नसें फैली रहती हैं।

**नाड़ियों में चलने वाली वायु**

**प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च।**
**नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः।।७७।।**
**चरन्ति दशनाडीषु दश प्राणादिवायवः।**
**प्राणादिपञ्चकं तेषु प्रधानं तत्र च द्वयम्।।७८।।**
**प्राण एवाथवा ज्येष्ठो जीवात्मानं बिभर्ति यः।**
**आस्यनासिकयोर्मध्यं हृदयं नाभिमण्डलम्।।७९।।**
**पादाङ्गुष्ठमिति प्राणस्थानानि द्विजसत्तम्।**
**अपानश्चरति ब्रह्मन् गुदमेढ्रोरुजानुषु।।८०।।**
**समानः सर्वगात्रेषु सर्वव्यापी व्यवस्थितः।**
**उदानः सर्वसन्धिस्थः पादयोर्हस्तयोरपि।।८१।।**
**व्यानः श्रोत्रोरुकट्यां च गुल्फस्कन्धगलेषु च।**

**नागादि वायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः।।८२।।**
**तुन्दस्थं जलमन्नं च रसादि च समीकृतम्।**
**तुन्दमध्यगतः प्राणस्तानि कुर्यात्पृथक्पृथक्।।८३।।**
**इत्यादि चेष्टनं प्राणः करोति च पृथक् स्थितः।**
**अपानवायुर्मूत्रादेः करोति च विसर्जनम्।।८४।।**
**प्राणपानादिचेष्टादि क्रियते व्यानवायुना।**
**उज्जीर्यते शरीरस्थमुदानेन नभस्वता।।८५।।**
**पोषणादि शरीरस्य समानः कुरुते सदा।**
**उद्गारादि क्रियाः नागः कूर्मोऽक्ष्यादि निमीलनः।।८६।।**
**कृकरः क्षुपयोः कर्ता दत्तो निद्रादिकर्मकृत्।**
**मृतगात्रस्य शोभादे र्धनञ्जय उदाहृतः।।८७।।**

प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, और धनञ्जय ये दस वायु शरीर की दस मुख्य नाड़ियों में घूमती हैं। प्राण से लेकर उदान तक पाँच वायुओं में प्राण और अपान ये दो ही प्रधान वायु हैं। इन दो में भी प्राण ही मुख्य है, क्योंकि प्राणवायु में जीवात्मा गति करता रहता है। मुख, नाक, हृदय, नाभि और पैरों के अंगूठे प्राणवायु के स्थान हैं। अपान वायु; गुदा, लिंगमूल, जांघों और घुटनों में रहता है। समान सारे शरीर में व्याप्त रहता है। उदान वायु शरीर के सभी जोड़ों में और हाथ-पैरों में रहता है। व्यान वायु; कान, जांघ, कमर, पैर की एड़ियों, कन्धों और गले में गति करता है। नाग आदि पाँच वायु त्वचा और हड्डियों में गति करती हैं। पेट में गये हुए अन्न, जल और रस आदि को प्राण पचाता है और अन्न-जल आदि को अलग करता है। अपान वायु; मल-मूत्र आदि को शरीर से निकालता है। व्यान वायु; प्राण-अपान आदि वायुओं की गति कराता है। मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर उदान प्राणवायु के द्वारा स्थूल शरीर से निकलता है। इसी के द्वारा शरीर के व्यक्तिगत प्राण (व्यष्टि) का समष्टि प्राण से सम्बन्ध बना रहता है। समान वायु शरीर का पालन-पोषण आदि करता है। नाग वायु शरीर में डकार लाती है और शरीर को चैतन्य बनाये रखती है। कूर्म वायु आंखों की पलकें झपकता है। कृकर वायु खांसी और छींक लाता है। गोरक्षपद्धति के अनुसार कृकर वायु

भूख का अनुभव कराती है। देवदत्त नींद और जमुहाई लाता है। धनञ्जय सारे शरीर में व्याप्त रहता है और मृत्यु के बाद भी शरीर में रहता है। यह वायु बोलने में सहायक होता है।

## नाड़ी शुद्धि

**नाडीभेदं मरुद्भेदं मरुतां स्थानमेव च।**
**चेष्टाश्च विविधास्तेषां ज्ञात्वैव द्विजसत्तम्।।८८।।**
**शुद्धौ यतेत नाडीनां पूर्वोक्तज्ञानसंयुतः।**

शरीर की नाड़ियों, शरीर में व्याप्त प्राण वायुओं, प्राण-अपान आदि शरीर की वायुओं इनके कार्यों और स्थानों को जानकर शरीर की नाड़ियों को साफ करने का प्रयत्न करना चाहिये।

## योगाभ्यास का स्थान और योगाभ्यास की विधि

**विविक्तदेशमास्थाय सर्वसम्बन्धवर्जितः।।८९।।**
**योगाङ्गद्रव्यसम्पूर्णं तत्र दारुमये शुभे।**
**आसने कल्पिते दर्भकुशकृष्णाजिनादिभिः।।९०।।**
**तावदासनमुत्सेधे तावद् पद्व्यसमायते।**
**उपविश्यासनं सम्यक् स्वस्तिकादि यथारुचि।।९१।।**

संसार और परिवार के सभी सम्बन्धों को त्याग कर एकान्त स्थान में लकड़ी के साफ-सुथरे फर्श पर दर्भ या कुशा की घास से बना अथवा कृष्णमृग की छाल का आसन बिछाना चाहियें और योगाभ्यास के लिये आवश्यक वस्तुएँ जुटा लेनी चाहिये। आसन पृथ्वी से कुछ ऊँचा होना चाहिये और दो व्यक्तियों के बैठने लायक होना चाहिये। इस आसन पर इच्छानुसार स्वस्तिक आदि किसी भी आसन में बैठना चाहिये।

## चिन्मुद्रासहित केवल कुम्भक

**बद्धवा प्रागासनं विप्र ऋजुकायः समाहितः।**
**नासाग्रन्यस्तनयनो दन्तैर्दन्तानसंस्पनृशन्।।९२।।**

**रसनां तालुनि न्यस्य स्वस्थचित्तो निरामयः।**
**आकुञ्चितशिरः किंचिन्निबध्नन् योगमुद्रया।।९३।।**
**हस्तौ यथोक्तविधिना प्राणायामं समाचरेत्।**

अपने अनुकूल किसी आसन पर सीधे बैठकर और मन एकाग्र करके, नाक के अगले भाग पर आँखें टिका कर, प्राणयाम का अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास के समय दांत आपस में मिले हुए नहीं होने चाहियें। जीभ, तालु से लगी रहनी चाहिये। मन प्रसन्न होना चाहिये। शरीर नीरोग होना चाहिये। सिर थोड़ा सा झुका रहना चाहिये। हाथ चिन्मुद्रा में एक दूसरे के ऊपर रहने चाहियें। योगमुद्रा लगानी चाहिये।

मूल बन्ध, उड्डीयान बन्ध और जालन्धर बन्ध ये तीनों बन्ध लगाकर प्राणायाम का अभ्यास करने से अधिक लाभ होता है। यहाँ पर नाक पर एकटक देखते रहने का अभ्यास योगमुद्रा कहा गया है। हाथ चिन्मुद्रा में रखने का निर्देश है। प्राणायाम और ध्यान आदि के लिये बैठते समय हथेलियाँ एक के ऊपर एक रखकर बैठने का विधान है। यह अंजलि मुद्रा या भैरवी मुद्रा कहलाती है। सम्भवतः इसे ही चिन्मुद्रा कहा गया है।

### सहित प्राणायाम

**रेचनं पूरणं वायोः शोधनं रेचनं तथा।।९४।।**
**चतुर्भिः क्लेशनं वायोः प्राणायाम उदीर्यते।**

प्राणायाम का अभ्यास शुरू करने पर सबसे पहिले शरीर में भरी गन्दी वायु को शरीर से निकाल देना या रेचन करना चाहिये। इसके बाद गहरा श्वास भरना चाहिये या पूरक करना चाहिये। श्वास कुछ देर तक रोककर फेफड़ों की प्राणवायु को साफ करना चाहिये अर्थात् फेफड़ों की प्राणवायु में भरी अशुद्धियों को स्वच्छ वायु से शुद्ध करना चाहिये। इसके बाद शरीर की अशुद्ध वायु को धीरे-धीरे झटका दिये बिना निकालना चाहिये। इस विधि से रेचक, पूरक, कुम्भक और शोधन का अभ्यास करके शरीर को प्राणायाम का अभ्यास करने के लिये तैयार किया जाता है।

### नाड़ीशोधक प्राणायाम

**हस्तेन दक्षिणेनैव पीडयेन्नासिकापुटम्।।९५।।**

**शनैः शनैरथ बहिः प्रक्षिपेत् पिङ्गलानिलम्।**
**इडया वायुमापूर्य ब्रह्मन् षोडशमात्रया।।९६।।**
**पूरितं कुम्भयेत् पश्चात् चतुः षष्ट्या तु मात्रया।**
**द्वात्रिंशत् मात्रया सम्यक् रेचयेत् पिङ्गलानिलम्।।९७।।**
**एवं पुनः पुनः कार्यं व्युत्क्रमानुक्रमेण तु।**
**सम्पूर्णकुम्भवत् देहं कुम्भयेत् मातरश्विना।।९८।।**
**पूरणान्नाडयः सर्वाः पूर्यन्ते मातरिश्वना।**
**एवं कृते सति ब्रह्मन् चरन्ति दश वायवाः।।९९।।**

सबसे पहिले दांये हाथ के अंगूठे से नाक का दांया सुर बन्द करके बांये सुर से, या इडा नाडी से पिंगला नाड़ी का या दांयें सुर का श्वास निकाल देना चाहिये। अब इडा नाड़ी या बांये सुर से वायु खींचनी चाहिये। जितनी अधिक वायु फेफड़ों में भरी जा सके उतना ही अच्छा है। लेकिन जबरदस्ती वायु खींचने से बीमारी हो सकती है। बांये सुर से यथाशक्ति वायु भरने के बाद ही बांया सुर बन्द करके दांये सुर से यथाशक्ति वायु निकालना। पूरक करने के तुरन्त बाद ही एकदम रेचन करना, बीच में कुम्भक नहीं करना। रेचक समाप्त होते ही दांये सुर से पूरक करना और दांया सुर बन्द करके बांये सुर से रेचक करना। पूरक और रेचक करते समय वायु को धीरे-धीरे खींचना और धीरे-धीरे छोड़ना। नाक के सामने रुई रखने से रुई न हिले, इस प्रकार वायु को धीरे-धीरे खींचना और छोड़ना। वायु को अचानक और झटके से नहीं खींचना और निकालना। वायु खींचने और छोड़ने या रेचन का समय बढ़ाया जा सकता है। नाड़ी शोधक प्राणायाम के अभ्यास के समय मन को श्वास-प्रश्वास में ही लगाना चाहियें।

नाड़ी शोधक प्राणायाम का अभ्यास कई दिन तक करने से एक ही आसन में देर तक बैठे रहने का अभ्यास या आसन जय होता है। शरीर में हल्कापन अनुभव होता है। तामसिक भाव या आलस्य दूर होता है। मन में आनन्द आता है। उच्च विषय का चिन्तन करने और याद रखने की शक्ति आती है और अन्य अनेक लाभ होते हैं। नाड़ीशोधक प्राणायाम से विशेषरूप से फेफड़ों में बल आने लगता है और फेफड़े प्राणायाम करने योग्य बन

जाते हैं। रक्तचाप अधिक-कम नहीं रहता। शरीर की रोगों को रोकने की शक्ति बढ़ती है। नाड़ी शुद्धि करने के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये—

१. ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना।
२. सात्विक और परिमित भोजन करना।
३. एकान्त स्थान में अभ्यास करना।
४. कसे कपड़े नहीं पहिनना।
५. घर का हवादार और साफ होना।
६. विधिपूर्वक ठीक आसन लगाकर बैठना।
७. वायु को यथाशक्ति धीरे-धीरे खींचना और छोड़ना।
८. मन को श्वास-प्रश्वास पर एकाग्र रखना।
९. मन में बाहर की चिन्ता को न आने देना।
१०. पेट में मल और दूषित वायु नहीं रहने देना।

असंयमी, अत्यन्त इन्द्रिय भोगी और ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति नाड़ी शोधक प्राणायाम करने से असाध्य रोगों से ग्रस्त हो जायेंगे। कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करने से पहिले आसन स्थिर, मन स्थिर और नाड़ी शुद्धि होने से बहुत लाभ होता है क्योंकि आसन-जय; चित्त की स्थिरता और प्राणायाम के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। चित्त को स्थिर न करके जो केवल नाक को बन्द करके कुम्भक करता है उसके हृदय, फेफड़े और पाचन यन्त्र आदि में कठिन रोग हो जाते हैं।

इन दिनों नाड़ी शोधक प्राणायाम के अनेक तरीके बताये जा रहे हैं। इनसे कितना लाभ होता है यह कहा नहीं जा सकता। इसीलिये सिद्धयोगियों द्वारा बताई गई प्रामाणिक विधि विस्तारपूर्वक बताई गई है।

९६ और ९७ श्लोकों में नाड़ी शोधक प्राणायाम की विधि संक्षेप में कही गई है और इसके साथ ही इन श्लोकों में कुम्भक प्राणायाम का भी वर्णन कर दिया गया है। इस कारण पाठक को नाड़ीशोधक प्राणायाम और सहित प्राणायाम का अन्तर समझने में कठिनाई हो सकती है। सहित प्राणायाम के

अभ्यास में इडा नाड़ी या बांये सुर से १६ मात्रा श्वास भरना चाहिये। श्वास को ६४ मात्रा तक अन्दर रोकना चाहिये। इसके बाद दांये सुर या पिंगला नाड़ी से ३२ मात्रा में श्वास निकाल देना चाहिये। सहित प्राणायाम में फेफड़ों में यथाशक्ति वायु भरने का अभ्यास करना चाहिये। पानी से पूरे भरे हुए घड़े की तरह फेफड़ों में वायु भर जाने से शरीर की सभी नाड़ियों में और विशेषरूप से इडा, पिङ्गला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा आदि दस मुख्य नाड़ियों में वायु भर जाने से नाड़ियों में भरा मैल निकल जाता है।

**घेरण्ड संहिता** के प्राणायाम प्रयोग नाम के पांचवे उपदेश में श्लोक ४७ से ५२ तक सहित प्राणायाम की विधि बताई गई है जो उपरोक्त विधि जैसी ही है। **घेरण्ड संहिता** में इस प्राणायाम को सगर्भ प्राणायाम कहा गया है। सगर्भ प्राणायाम में बीज मन्त्र जपने का निर्देश है। बीज मन्त्र प्रणव मन्त्र ओंकार ही बताया गया है। बीज मन्त्र या मात्रा का अभिप्राय समान ही है। १६ मात्रा श्वास भरने का अर्थ १६ बार मन ही मन ओ३म् का जप करना है। इसी प्रकार ६४ बार ओ३म् का जप करते हुए कुम्भक करना और ३२ बार ओ३म्-जप करते हुए रेचन करना।

सहित कुम्भक या सगर्भ प्राणायाम दांये-बांये सुरों से लगातार करना सम्भव नहीं होता, क्योंकि कुम्भक के बाद श्वास छोड़कर बिना रुके दूसरी बार प्राणायाम में कुम्भक करना कठिन होता है अत: थोड़ी देर विश्राम करके दूसरी बार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

**हृदयाम्भोरुहं चापि व्याकोचं भवति स्फुटम्।**
**तत्र पश्येत् परात्मानं वासुदेवमकल्मषम्।।१००।।**
**प्रातर्माध्यन्दिने सायमर्धरात्रे च कुम्भकान्।**
**शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत्।।१०१।।**
**एकाहमात्रं कुर्वाणः सर्वपापैः प्रमुच्यते।**
**संवत्सरत्रयादूर्ध्वं प्राणायामपरो नरः।।१०२।।**
**योगसिद्धो भवेत् योगी वायुजित् विजितेन्द्रियः।**
**अल्पाशी स्वल्पनिद्रश्च तेजस्वी बलवान् भवेत्।।१०३।।**
**अपमृत्युम् अपक्रम्य दीर्घमायुरवाप्नुयात्।**

प्राणायाम के नियमित अभ्यास से हृत्पद्म खिल जाता है। हृदय पद्म विकसित होने पर निष्कल ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास सवेरे, दोपहर, शाम और आधी रात में चार बार करना चाहिये। प्रतिदिन प्राणायाम की संख्या एक-एक बढ़ाकर अस्सी बार तक प्राणायाम करना चाहिये। दिन में चार बार अस्सी-अस्सी प्राणायाम करने से शरीर की नाड़ियों की सारी अशुद्धियाँ और रोग आदि नष्ट हो जाते हैं। एक पक्ष या पन्द्रह दिन में शरीर की पूरी शुद्धि हो जाती है। तीन वर्ष तक प्राणायाम करने से साधक सिद्ध योगी बन जाता है। शरीर की प्राणवायु पर योगी का अधिकार या नियन्त्रण हो जाता है। वह जितेन्द्रिय बन जाता है। जो योगी कम भोजन करता है। थोड़ी देर तक सोता है। वह तेजस्वी और बलवान बन जाता है। असामयिक मृत्यु को जीतकर दीर्घायुष्य प्राप्त करता है।

**प्राणायाम का फल**

**प्रस्वेदजननं यस्य प्राणायामेषु सोऽधमः।।१०४।।**
**कम्पनं वपुषो यस्य प्राणायामेषु मध्यमः।**
**उत्थानं वपुषो यस्य स उत्तम उदाहृतः।।१०५।।**
**अधमे व्याधिपापानां नाशः स्यात् मध्यमे पुनः।**
**पापरोग महाव्याधिनाशः स्यादुत्तमे पुनः।।१०६।।**

प्राणायाम का अभ्यास करते समय जब शरीर में पसीना आने लगता है तब साधक का प्राणायाम अभ्यास अधम या निचले स्तर का होता है। जब शरीर में कभी-कभी कंपकपी आने लगती है, तब साधक प्राणायाम के दूसरे स्तर या मध्यम स्तर पर पहुँच जाता है। इसके बाद जब अभ्यास करते रहने से सारा शरीर भूमि से आकाश में उठ जाता है तब उत्तम प्राणायाम की अवस्था आती है। अधम या निचले स्तर के प्राणायाम में शरीर के रोग नष्ट हो जाते हैं। मध्यम स्तर पर मानसिक चिन्ताएँ और तनाव, अवसाद आदि दूर हो जाते हैं। उत्तम स्तर के प्राणायाम में मानसिक, शारीरिक रोग और कठिन से कठिन रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

प्राणायाम के उपरोक्त लाभ वास्तविक हैं। कोई भी साधक प्राणायाम

के नियमित अभ्यास से तथा अपने खान-पान और रहन-सहन की आदतों में आवश्यक परिवर्तन करके पसीने और कंपकंपी का अनुभव कर सकता है। जहाँ तक आसन उत्थान का प्रश्न है इसके लिये कठिन साधना और इन्द्रियसंयम अत्यन्त आवश्यक है। इस श्रेणी के योगी बहुत कम हैं।

मेरे सद्गुरु को आसन उत्थान सिद्ध था। उनपर श्वेताश्वतर उपनिषद् का यह श्लोक पूरी तरह घटता था:-

**लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।**
**गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृतिं प्रथमां वदन्ति।।**

उनके शरीर में हल्कापन था। उन्हें कोई रोग नहीं था। उनके मन में लोभ-लालच लेशमात्र भी नहीं था। उनकी बातचीत से घमण्ड नहीं झलकता था। उनके शरीर से सदैव सुगन्ध आती रहती थी और उन्हें मल-मूत्र बहुत कम होता था।

हठयोग के ग्रन्थों में प्राणायाम के निम्नलिखित स्तर या अवस्थाएँ बताई गई है:-

घर्म, स्वेद, कम्प, उत्कूर्दन और आसन उत्थान। प्राणायाम का थोड़ा सा भी अभ्यास करने के बाद शरीर में गर्मी आ जाती है। अभ्यास बढ़ने पर पसीना आने लगता है। अभ्यास और अधिक बढ़ने पर शरीर में और विशेष रूप से पीठ, मेरुदण्ड तथा कन्धों में कंपकपी अनुभव होने लगती है। गर्मी, पसीना और कम्पन की स्थिति कोई भी साधक सरलता से प्राप्त कर सकता है। कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास तीन मिनट से अधिक होने पर उत्कूर्दन या शरीर के आसन से अचानक उछल जाने और आसन उत्थान की स्थिति आती है।

**अल्पमूत्रोऽल्पविष्ठश्च लघुदेहो मिताशनः।**
**पटुइन्द्रियः पटुमतिः कालत्रयविद् आत्मवान्।।१०७।।**
**रेचकं पूरकं मुक्त्वा कुम्भीकरणमेव यः।**
**करोति त्रिषु कालेषु नैव तस्यास्ति दुर्लभम्।।१०८।।**

प्राणायाम का अभ्यास करने से योगाभ्यासी के शरीर में मल-मूत्र कम हो जाता है। उसके शरीर में हल्कापन आ जाता है। वह नपा-तुला भोजन करता है। उसकी आँख, कान आदि इन्द्रियाँ और बुद्धि शक्तिसम्पन्न हो जाती हैं। वह भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों का जानकार बन जाता

है तथा उसे परमात्मा की साक्षात् अनुभूति होने लगती है। जो योगी रेचक और पूरक प्राणायामों को छोड़कर केवल कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करता है उसे तीनों कालों में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।

**प्राणायाम से रोगों का नाश**

**नाभिकन्दे च नासाग्रे पादाङ्गुष्ठे च यत्नवान्।**
**धारयेन्मनसा प्राणान् सन्ध्याकालेषु वा सदा।।१०९।।**

**सर्वरोगैर्विनिर्मुक्तो जीवेत् योगी गतक्लमः।**
**कुक्षिरोगविनाशः स्यात् नाभिकन्देषु धारणात्।।११०।।**

योगी को नाभि-कन्द, नाक के अगले भाग और पैर के अंगूठे पर मानसिक रूप से प्राणवायु को लगाना चाहिये। यह अभ्यास शाम के समय या कभी भी किया जा सकता है। नाभि-कन्द पर प्राणवायु केन्द्रित करने से पेट के रोग ठीक हो जाते हैं। शरीर के उपरोक्त ध्यान केन्द्रों पर प्राणवायु लगाने से योगी के सारे रोग नष्ट हो जाते हैं और वह दीर्घायु प्राप्त करता है। उसे बुढ़ापे की कमजोरी अनुभव नहीं होती।

**नासाग्रे धारणात् दीर्घमायुः स्यात् देहलाघवम्।**

प्राणवायु को नाक के अगले भाग पर केन्द्रित करने से योगी दीर्घायु हो जाता है और उसके शरीर में हलकापन आ जाता है।

**ब्राह्मे मुहूर्त्ते सम्प्राप्ते वायुमाकृष्य जिह्वया।।१११।।**
**पिबतस्त्रिषु मासेषु वाक्सिद्धिर्महती भवेत्।**
**अभ्यस्यतश्च षण्मासान् महारोगविनाशनम्।।११२।।**

**यत्र यत्र धृतो वायुः अङ्गे रोगादिदूषिते।**
**धारणादेव मरुतः तत् तत् आरोग्यमश्नुते।।११३।।**

ब्राह्म मुहूर्त में अर्थात् सूर्योदय से भी पहिले जीभ से वायु खींचकर वायु पीने का अभ्यास तीन मास तक करने पर योगी को वाक्सिद्धि अर्थात् उसकी वाणी में मधुरता, सत्यवादिता आदि गुण आ जाते हैं। यदि जीभ से वायु पीने का अभ्यास लगातार छह महीनों तक किया जाय तो असाध्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं। रोग से पीड़ित जिस-जिस अंग पर प्राणवायु को

मानसिक रूप से लगाने का अभ्यास किया जायेगा उस-उस अंग के रोग नष्ट होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

## षण्मुखी मुद्रा से मनोजय

**मनसो धारणादेव पवनो धारितो भवेत्।**
**मनसः स्थापने हेतुरुच्यते द्विजपुङ्गव।।११४।।**
**करणानि समाहृत्य विषयेभ्यः समाहितः।**
**अपानमूर्ध्वमाकृष्येत् उदरोपरि धारयेत्।।११५।।**
**बध्नन् कराभ्यां श्रोत्रादिकरणानि यथातथम्।**
**युञ्जानस्य यथोक्तेन वर्त्मना स्ववशं मनः।।११६।।**
**मनोवशात् प्राणवायुः स्ववशे स्थाप्यते सदा।**

मन को किसी विषय पर या अंग आदि पर केन्द्रित करने से प्राणवायु उसी विषय या शरीर के अंग पर केन्द्रित हो जाती है। मन को किसी वस्तु, अंग या विषय पर लगाने की पद्धतिं इस प्रकार है। मन को एकाग्र करके और सभी विषयों से इन्द्रियों को हटाकर अपान वायु ऊपर खींचकर उसे पेट में धारण करना चाहिये। हाथ की अंगुलियों और अंगूठों से आँख, कान, नाक, मुँह को बन्द करके अर्थात् षण्मुखी मुद्रा लगाकर ध्यान करने से मन एकाग्र हो जाता है और प्राणवायु पर भी अधिकार हो जाता है।

## षण्मुखी मुद्रा की विधि

पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर हाथों के अंगूठों से दोनों कानों, तर्जनी अंगुलियों से पलकों, मध्यमा अंगुलियों से नाक के दोनों स्वरों और अनामिका तथा कनिष्ठिका अंगुलियों से मुख बन्द कर लेना चाहिये। ओठों को गोल बनाकर तेजी से वायु भरनी चाहिये। भरी हुई वायु को मुख में ही रोके रहने से गाल फूल जायेंगे। इसके बाद ठोडी को कण्ठकूप में लगाकर जालन्धर बन्ध लगाना चाहिये। साथ ही मूल बन्ध और उड्डीयान बन्ध भी लगाने चाहियें। मुख में ही श्वास यथाशक्ति रोके रहना चाहिये। फिर तीनों बन्ध खोलकर और गर्दन उठाकर श्वास को धीरे-धीरे नाक से छोड़ना चाहिये। यह अभ्यास थोड़े विश्राम के बाद फिर करना चाहिये।

**प्राणगति**

**नासिका पुटयोः प्राणः पर्यायेण प्रवर्तते।।११७।।**
**तिस्रश्च नाडिकाः तासु स यावन्तश्चरत्ययम्।**
**शंखिनीविवरे याम्ये प्राणः प्राणभृतां सताम्।।११८।।**
**तावन्तं च पुनः कालं सौम्ये चरति संततम्।**

प्राणवायु नाक के दोनों सुरों में बारी-बारी से चलता है। जब प्राण वायु दांये सुर में चल रहा होता है तब बांया सुर बन्द रहता है। बांया सुर चलने पर दांया सुर बन्द रहता है। मूलाधार से लेकर भ्रूमध्य तक इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन प्राणवहा नाड़ियाँ हैं। इनमें प्राणवायु चलता रहता है। सुषुम्ना में प्राण की गति योगियों में ही होती है। नाक के दांये और बांये सुरों में पिङ्गला और इडा नाड़ियाँ हैं। दांये सुर की पिंगला नाड़ी में जितने समय तक प्राणवायु चलती है उतने ही समय तक बांये सुर की इडा नाड़ी में भी प्राणवायु चलता है।

**प्राणगति के ज्ञान से योग प्राप्ति**

**इत्थं क्रमेण चरता वायुना वायुजित् नरः।।११९।।**
**अहश्च रात्रिं पक्षं च मासं ऋतु अयनादिकम्।**
**अन्तर्मुखो विजानीयात् कालभेदं समाहितः।।१२०।।**

शरीर में प्राणवायु की गति जानने वाला योगी स्वरशास्त्र के द्वारा अपने देहान्त का समय जान लेता है कि वह कितने दिन-रात, पक्ष, महीने और दक्षिणायन-उत्तरायण तक जीवित रहेगा। यह जानकर वह अन्तर्मुख होकर ध्यान लगाकर आत्म चिन्तन में मन लगा देता है।

**अङ्गुष्ठादिस्वावयवस्फुरणादर्शनैरपि।**
**अरिष्टैः जीवितस्यापि जानीयात् क्षयमात्मनः।।१२१।।**
**ज्ञात्वा यतेत कैवल्यप्राप्तये योगवित्तमः।**
**पादाङ्गुष्ठे कराङ्गुष्ठे स्फुरणं यस्य नश्यति।।१२२।।**
**तस्य सम्वत्सरादूर्ध्वं जीवितव्यक्षयो भवेत्।**
**मणिबन्धे तथा गुल्फे स्फुरणं यस्य नश्यति।।१२३।।**

**षण्मासावधिः एतस्य जीवितस्य स्थिति र्भवेत्।**
**कूर्परास्फुरणं यस्य तस्य त्रैमासिकी स्थितिः।।१२४।।**
**कुक्षि मेहनपार्श्वे च स्फुरणानुपलम्भने।**
**मासावधि जीवितं स्यात् तदर्धं सत्वदर्शने।।१२५।।**
**आश्रिते जठरद्वारे दिनानि दशजीवितम्।**
**ज्योतिः खद्योतवत् यस्य तदर्धं तस्य जीवितम्।।१२६।।**
**जिह्वाग्रादर्शने त्रीणि दिनानि स्थितिरात्मनः।**
**ज्वालाया दर्शने मृत्युः द्विदिने भवति ध्रुवम्।।१२७।।**
**एवमादीन्यरिष्टानि दृष्ट्वाऽऽयुःक्षय कारणम्।**
**निःश्रेयसाय युञ्जीत जपध्यानपरायणः।।१२८।।**
**मनसा परमात्मनं ध्यात्वा तद्रूपतामियात्।**

अपने अंगूठे आदि अंगों में नाड़ी का स्फुरण या फड़कना बन्द हो जाने आदि अरिष्टों या अपशकुनों से भी मृत्यु का समय पता चल जाता है। अपनी मृत्यु का समय जानकर व्यक्ति को कैवल्य प्राप्ति या मोक्ष के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

जिस व्यक्ति के हाथ-पैरों के अंगूठों में फड़कन बन्द हो जाती है उसकी मृत्यु एक वर्ष बाद हो जाती है। मणिबन्ध या कलाई और एड़ी में नाड़ी की धड़कन रुक जाने से छह महीने में मृत्यु हो जाती है। जिसकी कोहनी में धड़कन नहीं रहती वह तीन महीने तक जीवित रहता है। कोख और मूत्रेन्द्रिय के पास धड़कन बन्द हो जाने पर व्यक्ति महीने भर तक ही जीवित रहता है। यदि धड़कन पेट तक ही अनुभव हो तो दस दिन तक ही जीवन रहता है।

जिसकी आँख की चमक जुगनू जैसी हो जाती है वह पाँच दिन बाद मर जाता है। जो व्यक्ति अपनी जीभ का अगला भाग नहीं देख पाता वह तीन दिन बाद मर जाता है। आग दिखाई देने पर दो दिन में मृत्यु हो जाती है। इस तरह के अरिष्ट मृत्यु के सूचक होते हैं। इसलिये हमें जप और ध्यान में समय लगाकर निःश्रेयस या कल्याण का मार्ग अपनाना चाहिये। मन में परमात्मा का ध्यान करके हमें परमात्मस्वरूप बन जाना चाहिये।

## मृत्यु का दिन जानना

महर्षि पतञ्जलि (पा०यो० ३/२२) ने कहा है कि सोपक्रम या निरुपक्रम

कर्मों में जो पहिले जन्मों में प्राप्त धर्म-अधर्म है उनपर संयम करने से या अरिष्ट दर्शन से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। कर्म दो प्रकार के हैं:-

सोपक्रम और निरुपक्रम। जो कर्म फल देने के लिये प्रवृत्त हैं वे सोपक्रम कर्म हैं। जो कर्म अभी फल देने वाले नहीं हैं वे निरुपक्रम कर्म हैं।

इन सोपक्रम और निरुपक्रम कर्मों के संस्कारों को लेकर ही मनुष्य जन्म लेते हैं। इन संस्कारों के अनुसार ही वे जन्म, आयु और भोगों को प्राप्त करते हैं। हमारे जिस प्रकार के संस्कार हैं उसी प्रकार के भोग और आयु भी हमें प्राप्त होंगे। इन सोपक्रम और निरुपक्रम कर्मों के ऊपर संयम करने से हमारी मृत्यु का ज्ञान होगा। आयु के दो अन्त है- एक जन्म और दूसरा मृत्यु। जन्म के दिन से ही आयु शुरू होती है और मृत्यु के दिन आयु समाप्त हो जाती है। चित्त में रहने वाले इन दो प्रकारों के कर्मों पर संयम का प्रयोग करने से योगी को मृत्यु का पता चल जाता है।

अरिष्टों या अपशकुनों को देखने से भी मृत्यु का पता चलता है। जिन्हें सोपक्रम और निरुपक्रम कर्मों पर संयम के प्रयोग की पद्धति की जानकारी नहीं होती है वे अरिष्टों से मृत्यु का दिन और समय जान सकते हैं। अरिष्ट तीन प्रकार के होते हैं- आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। अरिष्ट मृत्यु के पूर्व लक्षण हैं। अपने शरीर, मन और आत्मा के बारे में अरिष्ट आध्यात्मिक हैं। दूसरे प्राणियों के बारे में अरिष्ट आधिभौतिक हैं। आकाश, ग्रह नक्षत्रादि के बारे में अरिष्ट आधिदैविक हैं।

## योग बल से देह त्याग

योगी अरिष्ट लक्षणों को देखकर समाधि-बल से देह त्याग के लिये तैयार हो जाते हैं। इसी को इच्छा-मृत्यु कहते हैं। धार्मिक लोग योगासन में बैठे हुए देह को छोड़ना चाहते हैं। क्षत्रिय राजा राज्य भार छोड़कर महाप्रस्थान में चले जाते हैं और निर्जन वनों में तपस्या करने के बाद योगबल से देह छोड़ देते हैं। साधारण गृहस्थ लोग रोग पीड़ित होकर या दुर्घटनाओं से मृत्यु पास ही समझ कर देह को छोड़ना चाहते हैं। जो लोग इस प्रणाली को नहीं जानते वे भगवान के स्वरूप चिन्तन, भगवान के नाम या मन्त्र का जप करते हुए देह छोड़ देते हैं। दूसरे लोग अचेतन होकर देह छोड़ते हैं।

रामायण, महाभारत और पुराणों में इस प्रकार से देह छोड़ने का बहुत उल्लेख है। युद्ध भूमि में भीष्म, द्रोण और भूरिश्रवा का योग बल से देह त्यागने को तैयार होना इसके उदाहरण हैं। आज भी कोई-कोई योगी मृत्यु से बहुत पहिले ही मृत्यु के लिये तैयार हो जाते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आबू पर्वत पर दो योगियों का योगासन पर ही देह त्याग देखा था। उनके समाधि-योग की शिक्षा के गुरु स्वामी मोक्षानन्द ने दयानन्दजी के सामने ही योगबल से देह छोड़ दिया था।

योगी के लिये निर्जन पर्वत गुफा, जंगल, भूमि की गुफा या शान्त स्थान देह त्याग के लिये अनुकूल होता है। पर्वत गुफा और भूमि की गुफा में गर्मी-सर्दी में बहुत परिवर्तन नहीं होता। कुम्भक के बल से या प्राणवायु की वेग वृद्धि से योगी समाधिस्थ या बाह्यज्ञान शून्य हो जाते हैं। उस समय लगातार कुम्भक करने से समाधि आ जाती है। उनका बाह्य ज्ञान लुप्त हो जाता है। भूख-प्यास, सुख-दुख से परे रहते हुए योगी देह छोड़ सकते हैं। ठीक मृत्यु के समय यह देखा जाता है कि योगी को चेतना आ गई है। वे अपनी इच्छा से प्राणों को देह से निकाल देते हैं। मृत्यु से योगी को शारीरिक कष्ट नहीं होता। मृत्यु योगी के वश में आ जाती है। देह छोड़ते समय योगी को अपार आनन्द मिलता है।

### योग बल से देह त्याग आत्म हत्या नहीं है

पहली बात तो यह है कि आत्मा की हत्या होती ही नहीं है। आत्मा अमर है। मानसिक स्थिति विकृत हो जाने के कारण या अपने जीवन के कर्त्तव्यों से बचने के लिये या मानसिक दुर्बलता के कारण देह को छोड़ना पाप अवश्य है। लेकिन देह से जो कुछ पूरा करना था उसे पूरा करके महान उद्देश्य पूरे करने के लिये पूर्ण वैराग्य के साथ परमगति पाने के लिये देह को समाधि योग से छोड़ने की आप्त पुरुषों ने निन्दा नहीं की है। श्रुति या स्मृति भी इसकी विरोधी नहीं है।

### मर्मस्थानों पर प्राण का प्रत्याहार

**यद्यष्टादशभेदेषु मर्मस्थानेषु धारणम्।।१२९।।**
**स्थानात् स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारः स उच्यते।**

**पादाङ्गुष्ठं तथा गुल्फं जंघामध्यं तथैव च।।१३०।।**
**मध्यमूर्वोश्च मूलं च पायुर्हृदयमेव च।**
**मेहनं देहमध्यं च नाभिं च गलकूर्परम्।।१३१।।**
**तालुमूलं च मूलं च घ्राणस्याक्ष्णोश्च मण्डलम्।**
**भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च मूलमूर्ध्वं च जानुनी।।१३२।।**
**मूलं च करयोर्मूलं महान्त्येतानि वै द्विज।**

शरीर के १८ मर्म स्थानों पर मन लगाया जाता है। ये अठारह मर्म हैं– पैर का अंगूठा, एड़ी, जांघ का मध्य भाग, जांघ का मूल स्थान, गुदा, हृदय, मूत्रेन्द्रिय, शरीर का मध्य, नाभि, कण्ठ, कोहनी, तालुमूल, नासिका मूल, आँखों का मध्य भाग, भ्रूमध्य, मस्तक, घुटने, हाथों का अन्तिम छोर या बगल। इन मर्मस्थानों पर प्राणवायु को केन्द्रित करने और किसी मर्म से प्राणवायु हटाने को प्रत्याहार कहते हैं।

### धारणा का प्रकार

**पञ्च भूतमये देहे भूतेष्वेतेषु पञ्चसु।।१३३।।**
**मनसो धारणं यत्तद्युक्तस्य च यमादिभिः।**
**धारणा सा च संसारसागरोत्तारकारणम्।।१३४।।**

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों से बने शरीर में इन महाभूतों पर मन लगाना धारणा कहलाता है। धारणा का अभ्यास संसार सागर के पार उतरने में अर्थात् संसार से विरक्त होने में सहायता करता है।

### देह के अंगों में पंच भूतों की धारणा

**आजानु पादपर्यन्तं पृथिवीस्थानमिष्यते।**
**पित्तला चतुरस्रा च वसुधा वज्रलाञ्छिता।।१३५।।**
**स्मर्तव्या पञ्चघटिकास्तत्रारोप्य प्रभञ्जनम्।**

घुटनों से लेकर पैरों तक पृथिवी महाभूत का स्थान है। पृथिवी का रंग पीला है। पृथिवी माता के हाथों में चार अस्त्र हैं और उनका मुख्य अस्त्र वज्र है। पृथिवी-स्थान पर प्राणवायु लगाकर पाँच घड़ी तक ध्यान करना चाहिये।

**आजानुकटिपर्यन्तम् अपां स्थानं प्रकीर्त्तितम्।।१३६।।**
**अर्धचन्द्रसमाकारं श्वेतमर्जुनलाञ्छितम्।**
**स्मर्तव्यमम्भः श्वसनमारोप्य दशनाडिकाः।।१३७।।**

घुटनों से कमर तक जल महाभूत का स्थान है। जल महाभूत की आकृति आधे चन्द्रमा जैसी है। जल का वर्ण या रंग सफेद है।

इस स्थान पर प्राणवायु केन्द्रित कर दस नाड़ी समय तक जल महाभूत का ध्यान करना चाहिये।

**आदेहमध्य कट्यन्तमग्नि स्थानमुदाहृतम्।**
**तत्र सिन्दूरवर्णोऽग्निर्ज्वलनं दशपञ्च च।।१३८।।**
**स्मर्तव्यो नाडिकाः प्राणं कृत्वा कुम्भे तथेरितम्।**

देहमध्य से पीठ के अन्तिम सिरे तक अग्नि का स्थान है। अग्नि सिन्दूर वर्ण की और जाज्वल्यमान आकृति की है। इस स्थान पर प्राणवायु को पन्द्रह नाड़ी की अवधि तक रोककर ध्यान लगाना चाहिये।

**नाभेरुपरि नासान्तं वायुस्थानं तु तत्र वै।।१३९।।**
**वेदिकाकारवद् धूम्रो बलवान् भूतमारुतः।**
**स्मर्तव्यः कुम्भकेनैव प्राणमारोप्य मारुतम्।।१४०।।**
**घटिकाविंशतिः तस्माद् घ्राणात् ब्रह्मबिलावधि।**
**व्योमस्थानं नभस्तत्र भिन्नाञ्जनसमप्रभम्।।१४१।।**
**व्योम्नि मारुतमारोप्य कुम्भकेनैव यत्नवान्।**

नाभि से नाक के अन्त तक वायु का स्थान है। वायु महाभूत की आकृति यज्ञवेदि जैसी है और रंग धुएँ जैसा है। यहाँ पर प्राणवायु रोककर बीस घड़ी तक ध्यान करना चाहिये।

नाक से ब्रह्मरन्ध्र तक आकाश का स्थान है। आकाश का रंग गहरा नीला है। यहाँ पर प्राणवायु केन्द्रित कर बीस घड़ी तक ध्यान करना चाहिये।

पृथिवी आदि पाँच महाभूतों पर धारणा का अभ्यास करने से योगी का पाँच महाभूतों पर अधिकार हो जाता है।

### पृथिवी आदि पर अनिरुद्ध आदि के ध्यान का फल

**पृथिव्यंशे तु देहस्य चतुर्बाहुं किरीटिनम्।।१४२।।**
**अनिरुद्धं हरिं योगी यतेत भवमुक्तये।**

शरीर के पृथिवी अंश पर चतुर्भुज, मुकुटधारी अनिरुद्ध रूप नारायण का ध्यान संसार से मुक्त होने के लिये करना चाहिये।

**अबंशे पूरयेत् योगी नारायणमुदग्रधीः।।१४३।।**
**प्रद्युम्नमग्नौ वाय्वंशे संकर्षणमतः परम्।**
**व्योमांशे परमात्मानं वासुदेवं सदा स्मरेत्।।१४४।।**

शरीर के जल अंश पर नारायण के प्रद्युम्न रूप का ध्यान करना चाहिये। अग्नि और वायु के अंश पर नारायण के संकर्षण रूप का ध्यान करना चाहिये। आकाश अंश पर परमात्मस्वरूप वासुदेव का स्मरण सदा करना चाहिये।

**अचिरादेव तत् प्राप्तिर्युञ्जानस्य न संशयः।**

वासुदेव का ध्यान करने वाले को शीघ्र ही परमात्मा का साक्षात् दर्शन अवश्य प्राप्त होता है।

### परमात्मा का ध्यान और उसका फल

**बद्ध्वा योगासनं पूर्वं हृद्देशे हृदयाञ्जलिः।।१४५।।**
**नासाग्रन्यस्तनयनो जिह्वां कृत्वा च तालुनि।**
**दन्तैर्दन्तानसंस्पृश्य ऊर्ध्वकायः समाहितः।।१४६।।**
**संयमेच्चेन्द्रियग्रामात्मबुद्ध्या विशुद्धया।**
**चिन्तनं वासुदेवस्य परस्य परमात्मनः।।१४७।।**
**स्वरूपव्याप्तरूपस्य ध्यानं कैवल्यसिद्धिदम्।**
**याममात्रं वासुदेवं चिन्तयेत् कुम्भकेन यः।।१४८।।**
**सप्तजन्मार्जितं पापं नश्यति तस्य योगिनः।**

योगासन लगाकर हृदय में परमात्मा का ध्यान कर, नाक के अगले भाग पर दृष्टि स्थिर रखकर, जीभ को तालु पर लगाकर, ऊपर नीचे के दांत आपस में न मिलाकर, सीधे बैठकर, अपनी सभी इन्द्रियों को वश में

करके, अपनी सात्विक और पवित्र बुद्धि से परमश्रेष्ठ वासुदेव रूप परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। परमात्मस्वरूप का ध्यान मोक्ष प्रदान करता है। जो साधक प्राणायाम के साथ एक पहर तक वासुदेव का ध्यान करता है उसके सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

### तुरीयातीत वासुदेव चैतन्य

**नाभिकन्दात् समारभ्य यावद् हृदयगोचरम्।।१४९।।**
**जाग्रद् वृत्तिं विजानीयात् कण्ठस्थं स्वप्नवर्तनम्।**
**सुषुप्तं तालुमध्यस्थं तुर्यं भ्रूमध्य संस्थितम्।।१५०।।**
**तुर्यातीतं परं ब्रह्म ब्रह्मरन्ध्रे तु लक्षयेत्।**
**जाग्रद् वृत्तिं समारभ्य यावद् ब्रह्मबिलान्तरम्।।१५१।।**
**तत्रात्मायं तुरीयस्य तुर्यान्ते विष्णुरुच्यते।**

नाभिकन्द से लेकर हृदय तक जाग्रत् वृत्ति होती है। कण्ठ में स्वप्नवृत्ति, तालु के बीच में सुषुप्ति वृत्ति और भौंहो के बीच में तुरीय वृत्ति होती है। ब्रह्मरन्ध्र में तुरीय अवस्था के पार या तुरीयातीत श्रेष्ठ ब्रह्म के स्वरूप पर ध्यान लगाना चाहिये। जाग्रत वृत्ति से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक ध्यानस्थ और तुरीयावस्था को प्राप्त साधक की आत्मा तुरीयातीत अवस्था में विष्णुपद प्राप्त कर लेती है।

### सगुण ध्यान

**ध्यानेनैव समायुक्तो व्योम्नि चात्यन्तनिर्मले।।१५२।।**
**सूर्यकोटिद्युतिरथं नित्योदितमधोक्षजम्।**
**हृदयाम्बुरुहासीनं ध्यायेत् वा विश्वरूपिणम्।।१५३।।**

अत्यन्त निर्मल आकाश में करोड़ों सूर्यों की प्रभायुक्त रथ पर विराजमान हृदयकमल में विराजमान अनन्तरूपों वाले ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिये।

**अनेकाकारखचितम् अनेकवदनान्वितम्।**
**अनेकभुजसंयुक्तम् अनेकायुधमण्डितम्।।१५४।।**
**नानावर्णधरं देवं शान्तम् उग्रम् उदायुधम्।**
**अनेकनयनाकीर्णं सूर्यकोटिसमप्रभम्।।१५५।।**

**ध्यायतो योगिनः सर्वमनोवृत्तिर्विनश्यति।**

अनेक रूपों से शोभित, अनेक मुखों वाले, अनेक भुजाओं वाले, हाथों में अनेक शस्त्रास्त्र धारण किये हुए, अनेक प्रभाओं से शोभायमान, शान्त, उग्र और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, अनेक आँखों वाले और करोड़ों सूर्यों की दीप्ति से युक्त परमात्मा का ध्यान करने वाले योगी की सम्पूर्ण मनोवृत्तियाँ या संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं।

## निर्गुण ध्यान

**हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं चैतन्यज्योतिरव्ययम्।।१५६।।**
**कदम्ब गोलकाकारं तुर्यातीतं परात्परम्।**
**अनन्तम् आनन्दमयं चिन्मयं भास्करं विभुम्।।१५७।।**
**निवातदीपसदृशम् अकृत्रिममणिप्रभम्।**
**ध्यायतो योगिनस्तस्य मुक्तिः करतले स्थिता।।१५८।।**

अपने हृदय पद्म में विराजमान, चैतन्य ज्योति युक्त, अविकारी, कदम्ब पुष्प के गोल आकार जैसे सहस्रार चक्र वाले तुरीयातीत परात्पर ब्रह्म अनन्त हैं। वे आनन्दमय हैं। चैतन्य-स्वरूप हैं। ज्योतिष्मान् हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं। उनका स्वरूप वायु रहित स्थान में आलोकित दीपक की स्थिर ज्योति जैसा है। ऐसे निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान करने वाले योगी को जल्दी ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

## सगुण ध्यान से भी मुक्ति

**विश्वरूपस्य देवस्य रूपं यत् किंचिदेव हि।**
**स्थवीयः सूक्ष्मम् अन्यत् वा पश्यन् हृदयपङ्कजे।।१५९।।**
**ध्यायतो योगिनो यस्तु साक्षादेव प्रकाशते।**
**अणिमादिफलं चैव सुखेनैवोपजायते।।१६०।।**

विश्वरूप देव के स्थूल, सूक्ष्म या अन्य किसी भी रूप का अपने हृदय पद्म में ध्यान करने वाले योगी को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है और उसे अणिमा आदि सभी सिद्धियाँ बिना किसी प्रयत्न के मिल जाती हैं।

**जीवात्मनः परस्यापि यद्येवमुभयोरपि।**
**अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः।।१६१।।**
**समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः।**
**ब्रह्म संपद्यते योगी न भूयः संसृतिं व्रजेत्।।१६२।।**

जीवात्मा और परब्रह्म इन दोनों का वास्तविक स्वरूप एक ही है। जीवात्मा की वास्तविक स्थिति 'मैं परब्रह्म स्वरूप' ही हूँ। मन का सम्पूर्ण वृत्तियों से शून्य हो जाना ही समाधि कहलाती है। ऐसा योगी ब्रह्म को प्राप्त कर पुनर्जन्म नहीं लेता।

**एवं विशोध्य तत्वानि योगी निस्पृहचेतसा।**
**यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयमेव प्रशाम्यति।।१६३।।**

इस प्रकार सभी तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करके निष्काम हृदय योगी उसी प्रकार शान्त हो जाता है जैसे ईंधन समाप्त हो जाने पर आग स्वयं बुझ जाती है।

**ग्राह्याभावे मनः प्राणो निश्चयज्ञानसंयुतः।**
**शुद्धसत्वे परे लीनो जीवः सैन्धवपिण्डवत्।।१६४।।**
**मोहजालकसंघातो विश्वं पश्यति स्वप्नवत्।**
**सुषुप्तिवद् यः चरति स्वभाव परिनिश्चलः।।१६५।।**
**निर्वाणपदमाश्रित्य योगी कैवल्यमश्नुते इत्युपनिषत्।**

स्थूल और सूक्ष्म भूत आदि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के प्रति उदासीन योगी के मन और प्राणों में शुद्ध पुरुष के साथ समानता का भाव निश्चयपूर्वक आ जाने पर योगी पानी में घुली नमक की डली की तरह ब्रह्मभाव में लीन हो जाता है। उसे यह सारा संसार मोह जाल में फंसा हुआ दिखता है। वह इस संसार को स्वप्न की भांति मिथ्या जान लेता है। इस भाव से विचलित न होने वाला योगी मोक्षपद प्राप्त कर कैवल्य सुख अनुभव करता है।

**।।त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषद् समाप्त।।**

७

# दर्शनोपनिषद्

## (सामवेदीया उपनिषद्)

### प्रथम खण्ड

जीवन्मुक्ति का साधन अष्टांग योग

दत्तात्रेयो महायोगी भगवान् भूतभावनः।
चतुर्भुजो महाविष्णु र्योगसाम्राज्यदीक्षितः।।१।।
तस्य शिष्यो मुनिवरः सांकृतिःनाम भक्तिमान्।
पप्रच्छ गुरुम् एकान्ते प्राञ्जलिः विनयान्वितः।।२।।
भगवन् ब्रूहि मे योगं साष्टांगम् सप्रपञ्चकम्।
येन विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवाम्यहम्।।३।।
सांकृते श्रृणु वक्ष्यामि योगं साष्टाङ्गदर्शनम्।
यमाद्यष्टाङ्गयोगेद्ध ब्रह्ममात्रप्रबोधतः।
योगिनो यत्पदं यान्ति तत् कैवल्यपदं भजे।।

महायोगी दत्तात्रेय प्राणियों की रक्षा करने वाले चतुर्भुज विष्णु के योग में दीक्षित थे। एक दिन दत्तात्रेय के शिष्य सांकृति ने एकान्त में अपने गुरु से सविनय अनुरोध किया कि आप मुझे अष्टाङ्ग योग और उसकी विधियां सिखाने की कृपा कीजिये जिन्हें जानकर मैं जीवन्मुक्त हो जांऊ।

दत्तात्रेय जी ने उत्तर दिया हे सांकृते! मैं तुझे अष्टांग योग का उपदेश दूँगा। इसे जानने वाले योगी ब्रह्मज्ञानी बनकर कैवल्य पद प्राप्त करते हैं।

## योग के आठ अंग

**यमश्च नियमश्चैव तथैवासनमेव च।।४।।**
**प्राणायामस्तथा ब्रह्मन् प्रत्याहारस्ततः परम्।**
**धारणा च तथा ध्यानं समाधिश्चाष्टमं मुनेः।।५।।**

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं।

## दस प्रकार के यम

**अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयाऽऽर्जवम्।**
**क्षमा धृतिः मिताहारः शौचं चेति यमा दश।।६।।**

अहिंसा, सत्य, अस्तेय या चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, सरल-व्यवहार, क्षमा, धैर्य, नपा-तुला भोजन और शौच अर्थात् शरीर और मन की स्वच्छता ये दस यम हैं।

## अहिंसा

**वेदोक्तेन प्रकारेण विना सत्यं तपोधन।**
**कायेन मनसा वाचा हिंसा हिंसा न चान्यथाः।।७।।**
**आत्मा सर्वगतोऽच्छेद्यो न ग्राह्य इति या मतिः।**
**सा चाहिंसा वरा प्रोक्ता मुने वेदान्तवेदिभिः।।८।।**

वेदों में बताई गई हिंसा, अहिंसा ही है। मन, वचन, शरीर से की गई किसी भी प्रकार की हिंसा या वध, हिंसा ही है। हे मुनि! वेदान्त शास्त्र के जानकारों के अनुसार सभी प्राणियों में रहने वाली आत्मा को नष्ट नहीं करना चाहिये यही सबसे अच्छी अहिंसा होती है।

उपरोक्त श्लोक में यज्ञों में की जाने वाली पशु बलि को अहिंसा बताया गया है। यही बात 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' अर्थात् वेदों में बताये गये कर्मकाण्डों या यज्ञों में की गई हिंसा; हिंसा नहीं होती। किन्तु किसी भी वेद में यज्ञों में पशु बलि देने की बात कहीं भी नहीं कही गई है। प्राचीन काल में जब वेदों के मन्त्रों के अर्थ समझ में नहीं आने लगे तब

स्वार्थी लोग वेदमन्त्रों के अर्थ कर्मकाण्डों या यज्ञों के पक्ष में करने लगे और कहने लगे कि यज्ञों में की गई पशुबलि ठीक है।

श्रुति कहती है "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" अर्थात् किसी भी प्राणी को नहीं मारो। प्राणियों को अपना प्राण सबसे प्यारा होता है, इसलिये किसी की जान ले लेना सबसे बुरी हिंसा है। दूसरे के मांस से अपना शरीर जीवित रखना हिंसा का मुख्य कारण है। किसी को डराना या कड़वी बात कहकर किसी को दुखी करना आदि सारे काम हिंसा ही हैं। क्रूरता, द्वेष, मारने की इच्छा आदि बुरे विचारों से हिंसा की जाती है। ऐसे विचारों को त्यागते रहना ही अहिंसा है।

सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अद्रोह; अहिंसा का पालन करने में सहायता करते हैं। सुखी के प्रति मित्रता, दुखी के प्रति करुणा या दया, पुण्यवान के प्रति मुदिता या प्रसन्नता और पापी के प्रति उपेक्षा की भावना से अहिंसा साधना की उन्नति होती है। अहिंसा-साधना करने के लिये स्वार्थ त्याग की आवश्यकता है। जो दूसरों की हिंसा करता है, दूसरे लोग भी उसकी हिंसा करेंगे। सब उसके शत्रु बन जाते हैं। अहिंसा पालन करके चित्त को शुद्ध करना चाहिये। गुस्से में भरकर किसी को मार डालना, धन सम्पत्ति के लालच से किसी की जान ले लेना या पुण्य के मोह से मन्दिर में बकरी भैंसों का बलिदान करना हिंसा ही है।

कई लोग बुढ़ापे में असाध्य रोगों के कारण छटपटाते रहते हैं। ये मरना ही चाहते हैं किन्तु मृत्यु नहीं आती। इस जीवन में हो या पिछले जन्मों में हो ये लोग हिंसा के घोर कार्य करके इस स्थिति को प्राप्त करते हैं। हिंसा का फलभोग जबतक पूरा नहीं होता, तब तक इनकी मृत्यु नहीं होती।

अहिंसा का व्रत प्रतिष्ठित होने से सब प्राणी योगी के प्रति वैरभाव छोड़ देते हैं। शेर, भालू आदि हिंसक पशु भी उनके प्रति वैरभाव को छोड़ देते हैं। ऋषि-मुनियों के आश्रमों में हरिण और शेर के बच्चे एक साथ खेलते हैं। अहिंसा साधना की सिद्धि के कारण योगी के आश्रम का वातावरण अहिंसामय हो जाता है।

### सत्य

**चक्षुरादीन्द्रियैः दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर।**
**तस्यैवोक्तिः भवेत् सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत्।।९।।**
**सर्वं सत्यं वरं ब्रह्म न चान्यदिति या मतिः।**
**तच्च सत्यं वरं प्रोक्तं वेदान्तज्ञानपारगैः।।१०।।**

हे मुनीश्वर! आँख, कान आदि इन्द्रियों से जो देखा, सुना या सूंघा है उसे वैसा ही कहना सत्य कहलाता है। इसके विपरीत कहना सत्य नहीं होता। परब्रह्म परमेश्वर ही सत्य है और अन्य सब मिथ्या है इस प्रकार का विचार वेदान्तियों के अनुसार सर्वश्रेष्ठ सत्य है।

मन, वचन, आचरण से सत्य का पालन करने से सत्य-साधना होती है। सत्य की प्रतिष्ठा होने पर योगी वाक् सिद्ध होते हैं। उनके वाक्य अमोघ होते हैं। उनके आशीर्वाद और अभिशाप दोनों ही सफल होते हैं। योगी आशीर्वाद से शुभ फल दे सकते हैं। योगी इच्छा करने से बीमारों की कठिन पीड़ा भी दूर कर सकते हैं। महापापी के हृदय में शुभ इच्छा के द्वारा पुण्य की भावना जगा सकते हैं। सत्य प्रतिष्ठित योगी अधिक नहीं बोलते और कभी-कभी मौन भी धारण करते हैं। सत्यस्वरूप परमात्मा के ध्यान में ही योगी अधिक समय बिताते हैं। ऐसे योगी का सब विश्वास करते हैं।

### अस्तेय

**अन्यदीये तृणे रत्ने काञ्चने मौक्तिकेऽपि च।**
**मनसा विनिवृत्तिः या तद् अस्तेयं विदुः बुधाः।।११।।**
**आत्मन्यनात्मभावेन व्यवहार विवर्जितम्।**
**यत्तदस्तेयमित्युक्तमात्मविद्भिः महामुने।।१२।।**

पराये तिनके, रत्न, सोने और मोती को ले लेने की इच्छा न करना अस्तेय या चोरी न करना कहलाता है।

आत्मवेत्ता लोगों के अनुसार चित्त, शरीर आदि को आत्मा समझ बैठने की भावना से निवृत्ति अस्तेय है।

लोभ के कारण दूसरे की वस्तु की चोरी करना स्तेय है और इससे उल्टा 'अस्तेय' अर्थात् चोरी न करना है। बिना बताये दूसरे की वस्तु ले लेना भी चोरी है। जिस वस्तु पर हमारा अधिकार नहीं उसे किसी तरह ले लेना चोरी है। व्यापारी का धोखा देना, चिकित्सक का रोगी के इलाज में धोखा देना और गुरु-शिष्यों में एक दूसरे को धोखा देना भी चोरी है। चोरी का फल अविश्वास और डर है। अस्तेय प्रतिष्ठित होने पर प्रकृति के सब रत्न साधक के सामने उपस्थित हो जाते हैं। शरीर, मन, वचन से दूसरे का धन चुराने की मनोवृत्ति न रहने से ईश्वर, साधक को सभी आवश्यक वस्तुएँ दे देते हैं। अस्तेय प्रतिष्ठित होने से साधक को देखकर ही दानी दान करके अपने को धन्य समझते हैं। अस्तेय साधक सबके विश्वास पात्र और प्रिय बन जाते हैं और चोरी करके दूसरों के अविश्वास पात्र और घृणा करने योग्य बन जाते हैं।

**ब्रह्मचर्य**

**कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम्।**
**ऋतौ भार्यां तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते।।१३।।**
**ब्रह्मभावे मनश्चारं ब्रह्मचर्यं परन्तप।**

शरीर, मन और वचन से स्त्रियों का परित्याग और अपनी ऋतुमती पत्नी से समागम ब्रह्मचर्य होता है।

मन को ब्रह्म के चिन्तन में सदा लगाना ब्रह्मचर्य होता है। काम भावना से कुछ स्मरण करना, देखना, बात करना, सुनना, संकल्प करना और व्यभिचार करना ये सब काम ब्रह्मचर्य के विरुद्ध हैं। शुद्ध भाव से, काम रहित भाव से सब काम करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होने से शारीरिक और मानसिक बल बढ़ता है। धार्मिक प्रवृत्ति भी बढ़ती है। सत्व, आयु, यश, उत्साह, उद्यम, आशा, त्याग, शान्ति और आनन्द के भाव बढ़ते हैं। ब्रह्मचर्य हीन और असंयमी व्यक्ति की मानवता समाप्त हो जाती है और पशुवृत्ति बढ़ जाती है। सब लोग दुराचारी से घृणा करते हैं और उसका अपमान करते हैं। ब्रह्मचर्य से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल बढ़ता है। इन्द्रियों का तेज बढ़ने से सूक्ष्म और अलौकिक विषयों का

प्रत्यक्ष होता है। तत्वज्ञान बढ़ता है। ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति का शरीर कमजोर और रोगों का घर बन जाता है। उसका मन उत्साहहीन, आशारहित और अकर्मण्य हो जाता है। ऐसा व्यक्ति निस्तेज बन जाता है। उसका जीवन पशुओं के स्तर से भी नीचे आ जाता है। वह अर्धमृत बन जाता है और अन्त में मरकर नष्ट हो जाता है।

**दया**

**स्वात्मवत् सर्वभूतेषु कायेन मनसा गिरा।।१४।।**
**अनुज्ञा या दया सैव प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः।।**

सभी प्राणियों के साथ मन, वचन, कर्म से अपनी तरह व्यवहार करना दया कहलाता है।

**आर्जव या सरलता**

**पुत्रे मित्र कलत्रे च रिपौ स्वात्मनि संततम्।।१५।।**
**एकरूपं मुने यत्तदार्जवं प्रोच्यते मया।**

पुत्र, मित्र, पत्नी, शत्रु और अपने प्रति एक जैसा व्यवहार करना आर्जव या सरल व्यवहार कहलाता है।

**क्षमा**

**कायेन मनसा वाचा शत्रुभिः परिपीडिते।।१६।।**
**बुद्धि क्षोभ निर्वृत्तिः या क्षमा सा मुनिपुङ्गव।**

मन, वचन, कर्म से किसी शत्रु से सताये जाने पर बुद्धि में किसी प्रकार की उद्विग्नता न आना क्षमा कहलाता है।

**धृति**

**वेदादेव विनिर्मोक्षः संसारस्य न चान्यथा।।१७।।**
**इति विज्ञाननिष्पत्तिः धृतिः प्रोक्ता हि वैदिकैः।**
**अहमात्मा न चान्योऽस्मीत्येवमप्रच्युता मतिः।।१८।।**

वेदों के विद्वानों के अनुसार जीवन के प्रारम्भ में ही संसार के प्रति

उदासीनता की भावना ज्ञानपूर्वक आ जाना ही धृति या धैर्य कहलाता है। धैर्यशाली व्यक्ति के मन में यही भाव सदा बना रहता है कि मैं आत्मा ही हूँ अन्य कुछ नहीं।

**मिताहार**

**अल्पमृष्टाशनाभ्यां च चतुर्थांशावशेषकम्।**
**तस्माद्योगानुगुण्येन भोजनं मितभोजनम्।।१९।।**

घी वाला और मीठा भोजन भूख से कम खाना चाहिये। पेट में जितनी जगह हो या जितनी भूख हो उसका आधा भाग अन्न खाना चाहिये और चौथाई भाग पानी पीना चाहिये। चौथा भाग खाली छोड़ देना चाहिये ताकि पेट में वायु के आने-जाने के लिये स्थान रहे। साधक यदि दूध पर ही निर्भर रहे तो साधना बहुत अच्छी चलती है। साधक को अपना भोजन प्रभु को निवेदित करके खाना चाहिये। उसे ईश्वर और जीवात्मा की प्रसन्नता के लिये भोजन करना चाहिये स्वाद के लिये नहीं।

**शौच**

**स्वदेहमलनिर्मोक्षो मृज्जलाभ्यां महामुने।**
**यत्तच्छौचं भवेत् बाह्यं मानसं मननं विदुः।।२०।।**
**अहं शुद्ध इति ज्ञानं शौचमाहुर्मनीषिणः।**
**अत्यन्तमलिनो देहो देहीचात्यन्तनिर्मलः।।२१।।**
**उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते।**
**ज्ञानशौचं परित्यज्य बाह्ये यो रमते नरः।।२२।।**
**स मूढः काञ्चनं त्यक्त्वा लोष्टं गृह्णाति सुव्रत।**

मिट्टी और पानी से अपने शरीर की सफाई करना बाह्य शौच कहलाता है। परमात्मा का चिन्तन करना मानसिक शौच होता है। मेरी आत्मा शुद्ध है यह ज्ञान मनीषियों की दृष्टि में शौच है। हमारा शरीर अत्यधिक मैला है किन्तु हमारी आत्मा अत्यन्त निर्मल है। शरीर और

आत्मा के बीच यह भेद जानकर भी जो व्यक्ति अपने शरीर की सफाई पर ही ध्यान देता है वह मूर्ख सोने को छोड़कर मिट्टी ले लेता है। बाह्य शौच से शरीर शुद्ध और स्वस्थ रहता है। शुद्ध भोजन, सत् चिन्ता और पवित्र मनोभाव अपनाने से आभ्यन्तर शौच सिद्ध होता है। साधकों को पवित्र वस्त्र पहिनने चाहियें। सज्जनों का संग करना चाहिये और सत् वातावरण में रहना चाहिये। राजसिक और तामसिक आहार तथा वातावरण को त्याग देना चाहिये। किसी प्रकार के उत्तेजक या मादक पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिये। अनेक साधु भ्रान्ति के कारण चित्त स्थिर करने के नाम पर मादक द्रव्यों का प्रयोग करते हैं। इससे चित्त अपने वश में कभी नहीं रहता। चित्त को वश में रखना ही तो योग का उद्देश्य है, इसलिये मादक द्रव्य योग साधना के लिये पूरी तरह विघ्नकारी हैं। भूल से भी मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिये।

शौच साधना से मल-मूत्र, स्वेद और श्लेष्मा भरे अपने शरीर से लगाव धीरे-धीरे हट जाता है। शौच साधना से शारीरिक मल के साथ मानसिक मल भी धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं। चित्त के मल दूर होने से मन भी शान्त होता है। मन शान्त रहने से चित्त एकाग्र होता है। शुद्ध और एकाग्र चित्त होने से इन्द्रियजय सम्भव हो जाता है। जितेन्द्रिय न होने से चित्त; धारणा, ध्यान, समाधि लाभ के योग्य नहीं बन सकता। इन तीनों से ही आत्मदर्शन की योग्यता आती है।

**ब्रह्म और आत्मा को जानने का उपाय**

**ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।।२३।।**
**न चास्ति किंचित् कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्ववित्।**
**लोकत्रयेऽपि कर्तव्यं किंचिन्नास्त्यात्मवेदिनाम्।।२४।।**
**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मुनेऽहिंसादिसाधनैः।**
**आत्मानमक्षरं ब्रह्म विद्धि ज्ञानात्तु वेदनात्।।२५।।**

ज्ञानामृत से तृप्त कृतार्थ योगी के लिये जगत् में कोई भी करने योग्य काम नहीं रहता। यदि वह कोई कर्तव्य बाकी समझता है तो समझना

चाहिये कि उसे अभी तत्वज्ञान नहीं हुआ है। इसलिये अहिंसा आदि साधनों से पूरी तरह प्रयत्न करके अपने को और अविनाशी ब्रह्म को ज्ञानपूर्वक जानो।

**(प्रथम खण्ड समाप्त)**

# द्वितीय खण्ड

**दस नियम**

**तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।**
**सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो व्रतम्।।१।।**
**एते च नियमाः प्रोक्ताः तान् वक्ष्यामि क्रमात् शृणु।**

तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर भक्ति, शास्त्रश्रवण, लज्जा, सद्बुद्धि, जप और व्रत ये दस नियम इस प्रकार हैं।

**वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।।२।।**
**शरीरशोषणं यत् तत् तप इत्युच्यते बुधैः।**
**को वा मोक्षः कथं केन संसारं प्रतिपन्नवान्।।३।।**
**इत्यालोकनमर्थज्ञास्तपः शंसन्ति पण्डिताः।**

वेदों में बताई गई विधियों के अनुसार कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों से शरीर को कष्ट देना तप कहा गया है। मोक्ष क्या है? हम संसार में क्यों आये हैं? हमें संसार में किसने भेजा है? इन बातों पर विचार करने की विद्वान् प्रशंसा करते हैं।

भोगवृत्ति; शरीर और इन्द्रियों में मलिनता लाती है। वैराग्य वृत्ति ही इसकी शुद्धि करती हैं। बाहर से देखने पर सबके शरीर और इन्द्रियाँ एक सी मालूम पड़ती हैं, लेकिन शरीर के अन्दर सात्त्विक, राजसिक और तामसिक संस्कार छिपे हुए हैं। इन संस्कारों के अधीन होकर हम मन, वचन और शरीर से कार्य करते हैं। तामसिक प्रकृति को राजसिक बनाना, और राजसिक प्रकृति (स्वभाव) को सात्त्विक बनाना ही तप है। सात्त्विक संस्कार

युक्त व्यक्ति देव-प्रकृति के होते हैं। राजसिक प्रकृति के लोग मनुष्य-स्वभाव के होते हैं और तामसिक प्रकृति के आदमी पशु प्रकृति के होते हैं। पशु स्वभाव के मनुष्यों को मनुष्य स्वभाव का बनाना, मनुष्य स्वभाव को देव प्रकृति का बनाना ही परम तप है। आत्म शुद्धि के लिये तप आवश्यक है। सबसे अच्छा तप, मन और ज्ञानेन्द्रियों का नियन्त्रण करना ही है। इन्द्रियों की स्वेच्छाचारिता रोकना, गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास, सुख-दुख, सम्पद्-विपत्, जय-पराजय आदि को सहन करना तितिक्षा है। यह तितिक्षा परम तप है। भोग-विलास, आलस्य-तन्द्रा, और सुखी जीवन के प्रभाव से अपने को मुक्त रखना परम तप है और असंयत इन्द्रियों को संयत बनाना परमोत्कृष्ट तप है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष मन के इन छह शत्रुओं को वश में रखना सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। इसकी साधना से मनुष्य, देवत्व की प्राप्ति करते हैं।

**सन्तोष**

**यदृच्छालाभतो नित्यं प्रीतिर्या जायते नृणाम्।।४।।**
**तत् सन्तोषं विदुः प्राज्ञाः परिज्ञानैकतत्पराः।**
**ब्रह्मावलोकपर्यन्तात् विरक्त्या यल्लभेत् प्रियम्।।५।।**
**सर्वत्र विगतस्नेहः सन्तोषं परमं विदुः।**

बिना किसी प्रयत्न के लाभ हो जाने में जिन लोगों की रुचि हो जाती है उसे विद्वान् सन्तोष कहते हैं। ब्रह्म साक्षात्कार के प्रति भी जिसका मन विरक्त है और जिसके मन में किसी के प्रति तनिक भी स्नेह नहीं है ऐसी भावना परम सन्तोष कहलाती है।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार सन्तोष से उत्कृष्ट सुख प्राप्त होता है। तृष्णा नष्ट न होने से सन्तोष की साधना नहीं होती। सन्तोष परम धन है। इसे लाखों रुपयों से भी नहीं खरीदा जा सकता। सन्तोषी सन्यासी फटे वस्त्र पहिनता हुआ, रुखी-सूखी रोटी खाकर और पुरानी टूटी-फूटी कुटिया में रहकर जो शान्ति पा सकता है वैसी शन्ति महलों में सुख से रहने वाले राजा-महाराजा और करोड़पति लोग भी प्राप्त नहीं कर सकते।

मन की तृप्ति और आसक्ति हीनता से ही सन्तोष आता है। सन्तोष से ही शान्ति मिलती है। भोग-विषयों में फंसे धनी और गरीबों के लिये सुख और सन्तोष स्वप्न ही है। विषयों में फंसे रहना ही सभी सुखों की बाधा है। अपनी हालत से सन्तुष्ट रहते हुए उन्नति करने का प्रयत्न करना चाहिये। पूर्वजन्मों में किये कर्मों के फल के अनुसार हमें इस जन्म में सब कुछ मिल गया है। पिछले जन्मों के संस्कारों के अनुसार हमें सुख और दुख भोगने ही पड़ेंगे। फल की कामना के साथ कर्म करने से हम सुख या दुख के संस्कार लेकर ही अगला जन्म लेंगे। प्राणपण से यथाशक्ति कर्तव्य पालन करना और मन में सन्तोष रखना ही परम कल्याणकारी है। विषय तृष्णा ही सन्तोष की शत्रु है। सन्तोषी व्यक्ति सदा सुखी है।

**आस्तिक्य**

**श्रौते स्मार्ते च विश्वासो यत् तद् आस्तिक्यमुच्यते।।६।।**

श्रौत और स्मार्त कर्मों में विश्वास आस्तिक्य या ईश्वर में विश्वास कहलाता है। यज्ञ आदि इष्ट कर्म श्रौत कर्म है। जनता के लिये पाठशाला, चिकित्सालय आदि बनवाना स्मार्त कर्म होते हैं। ऐसे कार्य पूर्त कार्य भी कहलाते हैं।

**दान**

**न्यायार्जितधनं श्रान्ते श्रद्धया वैदिके जने।**
**अन्यत् वा यत् प्रदीयन्ते तद्दानं प्रोच्यते मया।।७।।**

न्यायपूर्वक कमाये हुए धन को वेदों के विद्वान गरीब व्यक्ति को या अन्य किसी को श्रद्धा के साथ देना मेरी दृष्टि में दान कहलाता है।

**ईश्वर पूजा**

**रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टाऽनृतादिना।**
**हिंसारहितं कर्म यत् तत् ईश्वरपूजनम्।।८।।**

हृदय में राग-द्वेष आदि की भावना न रखना, झूठ आदि बोलकर वाणी को दूषित न करना और हिंसा रहित कर्म करना ईश्वर की पूजा है।

ईश्वर पूजा से हमारा चित्त सांसारिक बन्धनों से छूटकर परमात्मा के ध्यान में लगता है। अपने सभी कर्मों के फल ईश्वर में अर्पित करके निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म करना ही ईश्वर प्रणिधान या ईश्वर पूजन है। इससे चित्त के संस्कार नष्ट हो जाते हैं। असंख्य जीवनों के असंख्य कर्मों के संस्कार चित्त में जमा रहते हैं। इसीलिये हम विभिन्न योनियों में जन्म लेकर सुख-दुख भोगते हैं। ईश्वर प्रणिधान के द्वारा हमारे संचित कर्मसंस्कार दुर्बल होकर नष्ट हो जाते हैं। साधना के लिये ईश्वर प्रणिधान आवश्यक है। इसके द्वारा साधक अपने कर्मसंस्कारों की मलिनता से मुक्त हो जाता है और परमानन्द प्राप्ति के लिये परमात्मा की ओर आकृष्ट होता है। ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि होती है। शिशु अपनी माता की गोद में लेटकर जैसे निश्चिन्त और निर्भय हो जाता है उसी प्रकार हम अपनी अहंकार भावना छोड़कर भगवान में सब कुछ अर्पण करके पूरी तरह निश्चिन्त और निर्भय हो जाते हैं। ईश्वर प्रणिधान से सामयिक उद्वेग, अशान्ति और चिन्ता क्षणभर भी नहीं ठहर सकते।

**सिद्धान्तश्रवण**

**सत्यं ज्ञानमनन्तं च परानन्दं परं ध्रुवम्।**
**प्रत्यगित्यवगन्तव्यं वेदान्तश्रवणं बुधः।।९।।**

ईश्वर; सत्य है अर्थात् ईश्वर का अस्तित्व है। वे ज्ञानस्वरूप हैं, अनन्त हैं, निश्चय ही परमानन्द के स्रोत हैं, ये विचार ही सिद्धान्त श्रवण या शास्त्र चर्चा कहलाते हैं। मोक्ष शास्त्रों व वेदों का अध्ययन और आत्म चिन्तन शास्त्र श्रवण या स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय से इष्ट देवता के दर्शन होते हैं। इष्ट देवता परमात्मा हमारे हृदय में छिपे हुए हैं। स्वाध्याय के द्वारा हम उनका स्वरूपज्ञान प्रज्ञालोक से कर सकते हैं। अभ्यास का गुण असाधारण है। हम चित्त में जो कुछ अभ्यास करते हैं चित्त उसी में लगा रहता है। हम जिसका लगातार संग करते हैं वह अपना बन जाता है। स्वाध्याय के द्वारा परमात्मा का संग करते रहना चाहिये। इससे हम सत्य द्रष्टा ऋषि-मुनियों का भी संग कर सकेंगे। निरन्तर स्वाध्याय के द्वारा हमें ऋषि-मुनियों और परमात्मा को अपना साथी बनाना चाहिये। इससे जीवन
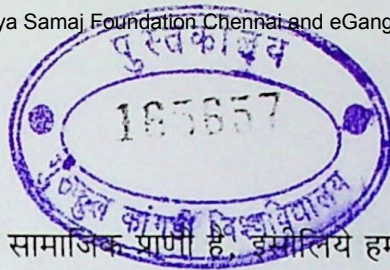
सफल हो जायेगा। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसीलिये हम दूसरे का साथ ढूँढते हैं। हमारे चिरसखा परमात्मा हमारे लिये अनन्त ज्ञान और आनन्द का भण्डार लेकर बैठे हुए हैं। वेदों के स्वाध्याय से परमात्मा के अनन्त और अपार ज्ञान की विभूति का दर्शन होता है। शास्त्रों का स्वाध्याय करते रहने से ऋषि-मुनि, अन्धकार से व्याप्त संसार में भटकते हुए मनुष्य को उसकी राह बता देते हैं। निराशा, शोक और दुख से भरे हमारे जीवन को ऋषि-मुनियों के ग्रन्थ अमृतधारा से संजीवित कर देते हैं। त्यागी-भोगी, संसारी-ब्रह्मचारी, बालक-बालिका, युवक-युवती और वृद्ध-वृद्धा सभी के लिये स्वाध्याय परम कल्याणकारी है। शास्त्रों के ज्ञानामृत का पान करते रहने से हमारे असंख्य जीवनों की भूख और तृष्णा मिट जायेगी। स्वाध्याय सभी के लिये परम साधना है। स्वाध्याय में एक दिन की भी छूट नहीं करनी चाहिये।

**लज्जा**

**वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं कर्म यद् भवेत्।**
**तस्मिन् भवति या लज्जा ह्रीः सैवेति प्रकीर्तिता।।१०।।**

वैदिक और लौकिक कर्मों के विपरीत कर्म करने से जो लज्जा अनुभव होती है उसे ही ह्री कहते हैं।

**मति**

**वैदिकेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत्।**
**गुरुणा चोपदिष्टोऽपि तत्र सम्बन्धवर्जितः।।११।।**

सभी वैदिक कर्मों या वेदों में बताये गये काम करने के लिये मन में जो श्रद्धा उत्पन्न होती है वही मति या सद्बुद्धि कहलाती है। यदि गुरु भी वेदों से विरुद्ध कोई काम करने को कहें तो भी वेदों में बताये गये अनुष्ठान या कर्म करने चाहिये।

**जप**

**वेदोक्तेनैव मार्गेण मन्त्राभ्यासो जपः स्मृतः।**
**कल्पसूत्रे यथा वेदे धर्मशास्त्रे पुराणके।।१२।।**

**इतिहासे च वृत्तिर्या स जपः प्रोच्यते मया।**
**जपस्तु द्विविधः प्रोक्तो वाचिको मानसस्तथा।।१३।।**
**वाचिकोपांशुरुच्चैश्च द्विविधः परिकीर्त्तितः।**
**मानसो मनन ध्यान भेदाद् द्वैविध्यमाश्रितः।।१४।।**
**उच्चैर्जपात् उपांशु च सहस्रगुणमुच्यते।**
**मानसश्च तथोपांशोः सहस्रगुणमुच्यते।।१५।।**
**उच्चैर्जपश्च सर्वेषां यथोक्तफलदो भवेत्।**
**नीचैः श्रोत्रेण चेन्मन्त्रः श्रुतश्चेन्निष्फलं भवेत्।।१६।।**

वेदों में बताई गई विधि के अनुसार मन्त्रों का अभ्यास करना जप कहलाता है। मेरे विचार में वेदों की तरह ही कल्पसूत्र, धर्मशास्त्र, पुराण और इतिहास में रुचि जप होता है।

जप दो तरह का होता है वाचिक अर्थात् बोलकर और मानसिक अर्थात् मन में ही किसी मन्त्र को बोलना। वाचिक जप दो तरह से किया जाता है – उपांशु अर्थात् ओंठ बन्द रखकर जीभ और कण्ठ से इस तरह जप करना कि पास बैठा व्यक्ति सुन न सके। दूसरी तरह का वाचिक जप उच्च जप कहलाता है। उच्च जप में बोल-बोलकर जप किया जाता है जिसे कोई भी सुन सकता है।

मानसिक जप भी मनन और ध्यान के भेद से दो प्रकार का होता है। उच्च जप से उपांशु जप हजार गुना फल देता है। उपांशु जप से मानसिक जप हजार गुना फल देता है। उच्च जप से भी सभी तरह के जपों जैसा ही फल मिलता है किन्तु धीमी आवाज में किया गया मन्त्र-जप व्यर्थ होता है।

## मन्त्रयोग

प्रणव आदि मन्त्रों का दीर्घकाल तक नियमपूर्वक जप करने से मन लीन हो जाता है। मन्त्रयोग का यही उद्देश्य है। इससे भी मोक्ष लाभ होता है। भृगु, कश्यप आदि ऋषि मन्त्रयोग के उपदेष्टा हैं।

**।।द्वितीय खण्ड समाप्त।।**

# तृतीय खण्ड

## नौ आसन

**स्वस्तिकं गोमुखं पद्मं वीरसिंहासनं तथा।**
**भद्रं मुक्तासनं चैव मयूरासनमेव च।।१।।**
**सुखासनसमाख्यं च नवमं मुनिपुंगव।**

स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीरासन, सिंहासन, भद्रासन, मुक्तासन, मयूरासन और सुखासन ये नौ मुख्य आसन हैं।

## स्वस्तिकासन

**जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक् पादतले उभे।।२।।**
**समग्रीव शिरःकायः स्वस्तिकं नित्यमभ्यसेत्।**

दोनों जांघों और घुटनों के बीच कुछ दूरी रखकर दोनों पैरों के पंजे दांयी और बांयी जांघों और पिण्डलियों के बीच में रखकर सीधे बैठना चाहिये। बैठते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि गर्दन, सिर और कमर सीधी रहे।

## गोमुखासन

**सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।।३।।**
**दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं तत् प्रचक्षते।**

बांयी जांघ पर दांये पैर की एड़ी लाकर दांया पैर पीठ की ओर ले जाना चाहिये। इसी प्रकार दांयी जांघ पर बांया पैर लाकर इसे पीछे ले जाना चाहिये।

उपरोक्त श्लोक में गोमुखासन की पूरी विधि नहीं बताई गई है।

गोमुखासन करने की विधि इस प्रकार है:-

जमीन पर बैठकर बांया पैर मोड़कर इस पैर की एड़ी को गुदा के नीचे लगाना चाहिये। दांया पैर भी मोड़कर पीछे ले जाना चाहिये और इस

पैर की एड़ी बांये नितम्ब से छू जानी चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि बांया पैर सीधा रहे और जमीन से लगा रहे। दांया पैर भी जमीन से लगा रहना चाहिये। दांया हाथ उठाकर और इसे कोहनी से मोड़कर कन्धे के पीछे से पीठ की ओर ले जाना चाहिये। बांया हाथ पीठ के पीछे ले जाकर ऊपर उठाना चाहिये और दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसा लेना चाहिये। गर्दन उठाकर दांयी कोहनी का सिरा देखते रहना चाहिये।

### लाभ

यह आसन प्रतिदिन करने से फेफड़ों की बीमारियों, दमा और तपेदिक में लाभ होता है। रीढ़ की हड्डी सीधी रहती है। कमर की और हाथों की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं। कमर का दर्द दूर होता है। गर्दन और कन्धों की मांसपेशियाँ खुलती हैं। बवासीर और गठिया के रोगियों के लिये भी यह आसन लाभदायक है।

### बद्ध पद्मासन

**अङ्गुष्ठावधि गृह्णीयात् हस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु।।४।।**
**ऊर्वोपरि विप्रेन्द्र कृत्वा पादतलद्वयं।**
**पद्मासनं भवेत् प्राज्ञ सर्वरोगभयापहम्।।५।।**

दोनों पैरों के पंजे जांघों पर रखकर दोनों हाथ पीठ के पीछे ले जाकर बांये हाथ से दांयी जांघ पर रखे पैर का अंगूठा और बांयी जांघ पर रखे पैर का अंगूठा दांये हाथ से पकड़ कर सीधे बैठने से **बद्धपद्मासन** होता है। अंगूठे बिना पकड़े बैठने पर **पद्मासन** होता है। पद्मासन से मन शान्त होता है। कमर सीधी रहती है। कब्ज दूर होता है और पाचन शक्ति बढ़ती है। पद्मासन में बैठकर मन एकाग्र करने में भी सहायता मिलती है। एड़ियाँ जांघ के अन्त तक पेट से छूती रहनी चाहियें।

### वीरासन

**एकं पादं तथैकस्मिन् विन्यसेत् उरुणि स्थितम्।**
**इतरस्मिन् तथा चोरूं वीरासनमितीरितम्।।६।।**

एक पैर को दूसरे पैर की जांघ पर रखकर सीधे बैठने से वीरासन लगता है। कुछ देर बाद पैर बदल कर वीरासन लगाना चाहिये। वीरासन अर्ध पद्मासन है।

इन दिनों प्रचलित विधि के अनुसार वीरासन; पहिले वज्रासन में बैठकर फिर दोनों जांघों को १८ इंच तक फैलाकर, अपने नितम्ब भूमि से लगाकर और सीधे बैठकर किया जाता है। इस स्थिति में पैरों के तलुए ऊपर आकाश की ओर रहने चाहियें।

### सिंहासन

**गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।**
**दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके।।७।।**
**हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुलीः सम्प्रसार्य च।**
**व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत् नासाग्रं सुसमाहितः।।८।।**
**सिंहासनं भवेद् एतत् पूजितं योगिपुङ्गवैः।**
**बन्धत्रितय सन्धानं कुरुते चासनोत्तमम्।।९।।**

दांये और बांये पैरों की एड़ियां अण्डकोशों के नीचे और सीवनी की बगल में इस तरह उलट कर रखनी चाहियें कि दांयी एड़ी, बांयी जांघ और नितम्ब की ओर आ जाये। हथेलियाँ और अंगुलियाँ फैला कर घुटनों के ऊपर रखनी चाहियें। शेर की तरह मुँह खोलकर और जीभ निकाल कर नाक के अगले भाग पर देखते हुए मन एकाग्र कर बैठे रहना चाहिये। श्रेष्ठ योगी सिंहासन को बहुत अच्छा मानते हैं। इस आसन में बैठने से तीनों बन्ध लगाना सरल हो जाता है। मूल बन्ध, उड्डीयान बन्ध और जालन्धर बन्ध ये तीन बन्ध हैं।

### भद्रासन

**गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।**
**सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे।।१०।।**
**पार्श्व पादौ च पाणिभ्यां बद्धवा सुनिश्चलम्।**
**भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशनम्।।११।।**

दांये और बांये पैरों की एड़ियाँ अण्डकोशों के नीचे और सीवनी के पास लगानी चाहियें। दांयी एड़ी, दांयी जांघ की ओर और बांयी एड़ी, बांयी जांघ की ओर रहनी चाहियें। उनके ऊपर दोनों हथेली रखकर स्थिर बैठने से भद्रासन होता है। भद्रासन के अभ्यास से सारे रोग नष्ट हो जाते हैं।

**गोरक्षासनमित्याहुरिदं वै सिद्धयोगिनः।**
**एवमासनबन्धेषु योगीन्द्रो विगतश्रमः।।१२।।**

सिद्धयोगी इस आसन को गोरक्ष आसन भी कहते हैं क्योंकि योगी गोरक्षनाथ प्रायः इसी आसन में बैठते थे। जो योगी आसनों और बन्धों को परिश्रम के बिना ही कर लेता है वह योगीन्द्र होता है।

## मुक्तासन

**पायुमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि।**
**शिरोग्रीवा समंकार्यं मुक्तासनं तु सिद्धिदम्।।१३।।**

गुदा के नीचे बांयी एड़ी रखकर इसके ऊपर दांयी एड़ी रखनी चाहिये। सिर और गर्दन सीधी रखनी चाहिये। यह आसन साधक को हर तरह की सफलता देता है।

## मयूरासन

**धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत् कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वः।**
**उच्चासनो दण्डवदुत्थितः स्यान्मायूरमेतत् प्रवदन्ति पीठम्।।१४।।**

दोनों हथेलियाँ जमीन पर रखकर और कोहनियाँ नाभि से लगाकर सारा शरीर उठाकर तथा दोनों पैर सीधे करके मयूरासन किया जाता है। मयूरासन में शरीर का सारा भार हाथों पर आ जाता है और कुहनियों से नाभि तथा इसके आसपास दबाव पड़ता है।

**हरति सकलरोगानाशु गुल्मोदरादी**
**नभिभवति च दोषानासनं श्रीमयूरम्।**
**बहुकदशनभुक्तं भस्मकुर्यादशेषं**
**जनयति जठराग्निं जारयेत् कालकूटम्।।१५।।**

मयूरासन के अभ्यास से पेट की गाँठ, जलोदर और जिगर-तिल्ली आदि पेट के सारे रोग जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं। वात, पित्त और कफ के प्रकुपित होने से उत्पन्न शरीर के सारे दोष या विकार भी नष्ट हो जाते हैं। यदि अधिक भोजन या खराब अन्न आदि खा लिया हो तो वह भी पच जाता है और जठराग्नि बढ़ने से कालकूट जैसा भयंकर विष भी पच जाता है।

**सुखासन**

**येन केन प्रकारेण सुखं धार्यं च जायते।**
**तत् सुखासनमित्युक्तम् अशक्तः तत् समाचरेत्।।**

शरीर को कष्ट दिये बिना जिस किसी भी तरह आराम से बिना हिले-डुले बैठा जा सके वह आसन सुखासन कहलाता है। दुर्बल व्यक्ति को सुखासन में बैठना चाहिये।

**आसनजय फल**

**आसनं विजितं येन तेन जितं जगत् त्रयम्।।**

जो साधक अच्छी तरह आसन करने लगता है उसे योगाभ्यास में सफलता मिलती है।

**।।तृतीय खण्ड समाप्त।।**

## चतुर्थ खण्ड

**देह प्रमाण**

**गुदात्तु द्व्यंगुलादूर्ध्वं मेढ्रात्तु द्व्यंगुलादधः।**
**देहमध्यं तनोर्मध्ये मनुजानामितीरितम्।।१।।**

गुदा से दो अंगुल ऊपर और लिंगमूल से दो अंगुल नीचे मनुष्य के शरीर का मध्य भाग है।

**देहमध्यं विजनीहि मनुजानां तु सांकृते।**
**कन्दस्थानं मुनिश्रेष्ठ मूलाधारात् नवाङ्गुलम्।।३।।**

हे सांकृत मुनिश्रेष्ठ! मनुष्यों के शरीर के मध्य भाग को बताता हूँ। मूलाधार चक्र से नौ अंगुलि ऊपर कन्द स्थान है।

**चतुरङ्गुलमायामविस्तारं मुनिपुङ्गव।**
**कुक्कुटाण्डवदाकारं भूषितं तु त्वगादिभिः।।४।।**
**तन्मध्ये नाभिरित्युक्तं योगज्ञैर्मुनिपुङ्गव।**

यह कन्द चार अंगुल चौड़ा है और मुर्गी के अण्डे जैसा है इसके चारों ओर त्वचा आदि लिपटी होती है। इसके बीच में नाभि होती है।

**नाड़ीपरिगणना**

**कन्दमध्ये स्थिता नाडी सुषुम्नेति प्रकीर्तिता।।५।।**
**तिष्ठन्ति परितस्तस्य नाडयो मुनिपुङ्गवा**
**द्विसप्ततिसहस्त्राणि तासां मुख्याश्चतुर्दश।६।।**
**सुषुम्ना पिङ्गला तद्वदिडा चैव यशस्विनी।**
**पूषा च वरुणा चैव हस्तिजिह्वा सरस्वती।।७।।**
**अलम्बुसा कुहूश्चैव विश्वोदरा पयस्विनी।**
**शंखिनी चैव गान्धारी इति मुख्याश्चतुर्दशा।।८।।**
**आसां मुख्यतमा स्तिस्त्रस्तिसृष्वेकोत्तमोत्तमा।**
**ब्रह्मनाडीति सा प्रोक्ता मुने वेदान्तवेदिभिः।।९।।**
**पृष्ठमध्यस्थितेनास्थ्ना वीणादण्डेन सुव्रत।**
**सह मस्तकपर्यन्तं सुषुम्ना सुप्रतिष्ठिता।।१०।।**

इस कन्द के बीच में सुषुम्ना नाड़ी है। सुषुम्ना के चारों ओर ७२ हजार नाड़ियाँ हैं जिनमें से मुख्य चौदह नाड़ियाँ हैं। इनके नाम है– सुषुम्ना, पिंगला, इडा, सरस्वती, पूषा, वरुणा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू, विश्वोदरा, पयस्विनी, शंखिनी और गान्धारी।

इनमें ये तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं:– सुषुम्ना, इडा, पिगला। इन तीन में भी सबसे मुख्य सुषुम्ना नाड़ी है, जिसका नाम ब्रह्मनाड़ी भी है। पीठ के बीच वीणादण्ड जैसी सीधी रीढ़ की हड्डी है। सुषुम्ना रीढ़ की हड्डी से मस्तक तक गई हुई है। सुषुम्ना मूलाधार से शुरू होती है।

**नाभिकन्दादधः स्थानं कुण्डल्याद्व्यंगुलं मुने।**
**अष्टप्रकृतिरूपा सा कुण्डली मुनिसत्तम।।११।।**
**यथावत् वायुचेष्टां च जलान्नादीनिनित्यशः।**
**परितः कन्दपार्श्वेषु निरुध्यैव सदा स्थिता।।१२।।**
**स्वमुखेन सदाऽऽवेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं मुने।**

नाभिकन्द से दो अंगुलि नीचे कुण्डली का स्थान है। यह कुण्डलिनी शक्ति; पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पांचभूतों और मन, बुद्धि, अहंकार इन तीन अर्थात् प्रकृति के इन आठरूपों वाली है। यह कन्द को चारों ओर से घेरकर वहाँ सदा रहती है और पेट में वायु, जल और अन्न पचने आदि की क्रियाओं में सहायक है। कुण्डलिनी शक्ति ने अपने मुख से ब्रह्मरन्ध्र का मुख बन्द किया हुआ है।

**नाड़ियों के स्थान**

**सुषुम्नाया इडा सव्ये दक्षिणे पिङ्गला स्थिता।।१३।।**

सुषुम्ना के बांयी ओर इडा और दक्षिण की ओर पिंगला है।

**सरस्वती कुहूश्चैव सुषुम्नापार्श्वयोः स्थिते।**
**गान्धारी हस्तिजिह्वा च इडायाः पृष्ठपूर्वयोः।।१४।।**

सरस्वती और कुहू नाम की नाड़ियाँ सुषुम्ना के दोनों ओर हैं। सरस्वती और हस्तिजिह्वा नाड़ियाँ इड़ा के आगे-पीछे हैं।

**पूषा यशस्विनी चैव पिङ्गला पृष्ठपूर्वयोः।**
**कुहोश्च हस्तिजिह्वाया मध्ये विश्वोदरा स्थिता।।१५।।**

पूषा और यशस्विनी नाड़ियाँ पिंगला के आगे-पीछे हैं। कुहू और हस्तिजिह्वा नाड़ियों के बीच में विश्वोदरा नाड़ी है।

**यशस्विन्याः कुहोर्मध्ये वरुणा सुप्रतिष्ठिता।**
**पूषाऽयाश्च सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता यशस्विनी।।१६।।**

यशस्विनी और कुहू के बीच में वरुणा नाड़ी है। पूषा और सरस्वती के बीच में यशस्विनी नाड़ी है।

**गान्धारायाः सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता शङ्खिनी।**
**अलम्बुसा स्थिता पायुपर्यन्तं कन्दमध्यगा।।१७।।**

गान्धारी और सरस्वती के बीच में शंखिनी नाड़ी है। कन्द के बीच में अलम्बुसा नाड़ी है जो गुदा तक गई हुई है।

**पूर्वभागे सुषुम्नाया राकायाः संस्थिता कुहूः।**
**अधश्चोर्ध्वं स्थिता नाडी याम्यनासान्तमिष्यते।।१८।।**

सुषुम्ना और राका नाड़ियों के पूर्वभाग में कुहू है। ऊपर और नीचे तक फैली हुई पिंगला नाड़ी नाक के दांये सुर के अन्त तक गई हुई है।

**इडा तु सव्यनासान्तं संस्थिता मुनिपुङ्गव।**
**यशस्विनी च वामस्य पादाङ्गुष्ठान्तमिष्यते।।१९।।**

इडा नाड़ी नाक के बांये सुर के अन्त तक है। यशस्विनी नाड़ी बांये पैर के अंगूठे के अन्त तक गई हुई है।

**पूषा वामाक्षिपर्यन्ता पिङ्गलायास्तु पृष्ठतः।**
**पयस्विनी च याम्यस्य कर्णान्तं प्रोच्यते बुधैः।।२०।।**

पूषा; पिंगला नाड़ी के पीछे से बांयी आंख तक है। पयस्विनी नाड़ी दांये कान के अन्त तक है।

**सरस्वती तथा चोर्ध्वं गता जिह्वा तथा मुने।**
**हस्तिजिह्वा तथा सव्यपादाङ्गुष्ठान्तमिष्यते।।२१।।**

ऊपर तक गई हुई सरस्वती नाड़ी जीभ तक है। हस्तिजिह्वा नाड़ी दांये पैर के अंगूठे के अन्त तक है।

**शंखिनी नाम या नाड़ी सव्यकर्णान्तमिष्यते।**
**गान्धारी सव्यनेत्रान्ता प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः।।२२।।**
**विश्वोदराभिधा नाडी कन्धमध्ये व्यवस्थिता।**

शंखिनी नाड़ी दांये कान के अन्त तक है। गान्धारी; बांयी आंख तक है। विश्वोदरा नाड़ी कन्द के बीच में है।

**नाड़ियों में वायु की गति**

**प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानोदान एव च।।२३।।**
**नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः।**
**एते नाडीषु सर्वासु चरन्ति दश वायवाः।।२४।।**

प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय ये दस प्राणवायु सभी नाड़ियों में आती जाती हैं।

**तेषु प्राणादयः पञ्च मुख्याः पञ्चसु सुव्रत।**
**प्राणसंज्ञस्तथाऽपानः पूज्यः प्राणस्तयोर्मुने।।२५।।**

इन दस में प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान ये पाँच मुख्य प्राणवायु हैं। इन पाँच में से भी प्राण और अपान मुख्य हैं किन्तु प्राण वायु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

**आस्यनासिकयोर्मध्ये नाभिमध्ये तथा हृदि।**
**प्राणसंज्ञोऽनिलो नित्यं वर्तते मुनिसत्तम।।२६।।**

प्राणवायु; मुख, नाक के दोनों स्वरों, हृदय और नाभि में सदा गति करता रहता है।

**अपानो वर्तते नित्यं गुदमध्योरुजानुषु।**
**उदरे सकले कट्यां नाभौ जंघे च सुव्रत।।२७।।**

अपान वायु; गुदा, घुटनों, जांघों, पेट, नाभि और कमर तक गति करता है।

**व्यानः श्रोत्राक्षिमध्ये च ककुद्भयां गुल्फयोरपि।**
**प्राणस्थाने गले चैव वर्तते मुनिपुंगव।।२८।।**

व्यान वायु; कांनों, आँखों, कन्धों, एड़ियों और प्राणवायु के स्थान गले तक अर्थात् सारे शरीर में व्याप्त रहता है।

**उदानसंज्ञो विज्ञेयः पादयोर्हस्तयोरपि।**
**समानः सर्वदिहेषु व्याप्य तिष्ठत्यसंशयः।।२९।।**
**नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः।**

उदान वायु, हाथों, पैरों और सारे शरीर में गति कहता है। नाग, कूर्म आदि पाँच वायु त्वचा, हड्डियों आदि में रहती हैं।

**प्राणवायु के कार्य**

**निःश्वासोच्छ्वासकासाश्च प्राणकर्म हि सांकृते।।३०।।**

सांस लेना और छोड़ना तथा खांसना प्राणवायु के काम है।

**अपानाख्यस्य वायोस्तु विण्मूत्रादिविसर्जनम्।**
**समानः सर्वसामीप्यं करोति मुनिपुंगव।।३१।।**

अपान वायु का काम मल-मूत्र आदि को शरीर से निकालना है। समान वायु; खाये-पीये पदार्थों का रस शरीर के विभिन्न अंगों में समान रूप से पहुँचाता है।

**उदान ऊर्ध्वगमनं करोत्येव न संशयः।**
**व्यानो विवादकृत् प्रोक्तो मुने वेदान्तवेदिभिः।।३२।।**

उदान वायु; सिर तक आता-जाता है। उदान वायु के द्वारा शरीर के व्यक्तिगत प्राण (व्यष्टि प्राण) का समष्टि प्राण (सृष्टि-प्राण) से सम्बन्ध बना रहता है। मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर, उदान प्राणवायु के द्वारा स्थूल शरीर से निकलता है। यह वायु धातुगत बोधांशों को धारण करता है। कुछ के मत में उदान वायु शरीर की वृद्धि करता है। उदान की परिभाषा है **'उन्नयनात् इति उदानः'** अर्थात् शरीर को उठाये रखने के कारण यह प्राणवायु उदान कहलाता है। सूक्ष्म शरीर के कर्म, गुण, वासनाओं और संस्कारों के अनुसार उदान वायु नये गर्भ में प्रवेश कराता है। योगी, उदान वायु के द्वारा स्थूल शरीर से निकल कर दूसरे लोकों में घूम सकते हैं। उदान वायु पर अधिकार हो जाने से योगी का शरीर रुई की तरह हल्का हो जाता है और इस पर पानी, कीचड़ तथा कांटों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा योगी अपनी इच्छा से देह त्यागता है। मरण काल में ऐसे योगी के प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकलने के कारण उसकी ऊर्ध्वगति (शुक्ल गति) उत्तर मार्ग (उत्तरायण) से होती है:-

**उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्गउत्क्रान्तिश्च।।**पा०पो० ३/३९।।

यहाँ पर **'व्यानो विवादकृत्'** शब्दों का क्या अभिप्राय है, यह समझ में नहीं आता। हठयोग के गोरक्षपद्धति आदि ग्रन्थों के अनुसार व्यान वायु, शरीर की स्थूल और सूक्ष्म सभी नाड़ियों में गति करता हुआ शरीर के सब अंगों में रक्त संचार करता है। ''व्यापी इति व्यानः'' या **''व्याप्नोति सर्वशरीरम्।''** अर्थात् व्यान वायु सर्व शरीर में व्याप्त है या सारे शरीर को व्याप्त करता है।

**उद्गारादिगुणः प्रोक्तो नागाख्यस्य महामुने।**
**धनञ्जयस्य शोभादि कर्म प्रोक्तं हि सांकृते।।३३।।**

नाग वायु का काम डकार लाना है। धनंजय वायु का काम शोभा आदि है इससे कुछ स्पष्ट नहीं होता। हठयोग के ग्रन्थों विशेषरूप से गोरक्षपद्धति के अनुसार धनञ्जय वायु सारे शरीर में व्याप्त रहता है। देहान्त हो जाने पर भी धनञ्जय वायु शरीर में रहता है:-

**न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनञ्जयः।।**

गोरक्ष पद्धति १/३६

**निमीलनादि कूर्मस्य क्षुधा तु कृकरस्य च।**
**देवदत्तस्य विप्रेन्द्र तन्द्रीकर्म प्रकीर्तितम्।।३४।।**

आँखों की पलकों को झपकना कूर्म वायु करता है। कृकर वायु भूख का अनुभव कराती है। देवदत्त वायु से जम्भाई और नींद आती है।

**नाड़ियों के देवता**

**सुषुम्नायाः शिवो देव इडाया देवता हरिः।**
**पिङ्गलायाः विरञ्चिः स्यात् सरस्वत्या विराण्मुने।।३५।।**

सुषुम्ना नाड़ी के देवता शिव हैं। इड़ा के विष्णु हैं। पिंगला के देवता ब्रह्मा हैं और सरस्वती के देवता विराट् हैं।

**पूषाऽधिदेवता प्रोक्तो वरुणा वायुदेवता।**
**हस्तिजिह्वाभिधायास्तु वरुणो देवता भवेत्।।३६।।**

पूषा के अधिदेवता, वरुणा नाडी के देवता वायु हैं।

हस्तिजिह्वा नाम की नाड़ी के देवता वरुण हैं।

**यशस्विन्या मुनिश्रेष्ठ भगवान् भास्करस्तथा।**
**अलम्बुसाया अबात्मा वरुणः परिकीर्त्तितः।।३७।।**

यशस्विनी के देवता सूर्य हैं और अलम्बुषा के वरुण जलदेवता हैं।

**कुहोः क्षुद्देवता प्रोक्ता गान्धारी चन्द्रदेवता।**
**शंखियाश्चन्द्रमास्तद्वत् पयस्विन्याः प्रजापतिः।।३८।।**

कुहू नाड़ी के देवता क्षुधा (भूख) के देवता हैं। गान्धारी और शंखिनी के देवता चन्द्रमा है तथा पयस्विनी के देवता प्रजापति है।

**विश्वोदरा भिधायास्तु भगवान् पावकः पतिः।**

विश्वोदरा नाड़ी के देवता अग्नि हैं।

## नाड़ियों में सूर्य और चन्द्र की गति

**इडायां चन्द्रमा नित्यं चरत्येव महामुने।।३९।।**

इड़ा नाड़ी में चन्द्रमा की गति सदैव रहती है।

**पिङ्गलायां रविस्तद्वन्मुने वेदविदां वर।**

पिंगला नाड़ी में सूर्य की गति होती है।

## नाड़ियों में वर्ष के अनुसार प्राण और सूर्य की गति

**पिङ्गलाया इडायां तु वायो संक्रमणं तु यत्।।४०।।**
**तदुत्तरायणं प्रोक्तं मुने वेदान्तवेदिभिः।**

जब पिंगला नाड़ी से अर्थात् दांये सुर से इड़ा नाड़ी या बांये स्वर में प्राण वायु जाता है तब उसे उत्तरायण कहा जाता है।

**इडायाः पिङ्गलायां तु प्राणसंक्रमणं मुने।।४१।।**
**दक्षिणायनमित्युक्तं पिङ्गलायामिति श्रुतिः।**

जब प्राण वायु इड़ा नाड़ी से पिंगला नाड़ी में जाता है उसे दक्षिणायन कहते हैं।

**इडापिङ्गलयोः संधिं यदा प्राणः समागतः।।४२।।**

**अमावस्या तदा प्रोक्ता देहे देहभृतां वर।**

जब प्राणवायु की इड़ा और पिंगला नाड़ियों में सन्धि होती है उस अवस्था को शरीर में अमावस्या कहा जाता है।

**मूलाधारं यदा प्राणः प्रविष्टः पण्डितोत्तम्।।४३।।**
**तदाद्यं विषुवं प्रोक्तं तापसैस्तापसोत्तम।**

जब प्राणवायु मूलाधार चक्र में जाता है उस अवस्था को आदि विषुव कहते हैं। आदि विषुव मेषराशि या तुलाराशि का प्रथम बिन्दु जिसमें सूर्य शारदीय या वासन्तिक विषुव में प्रविष्ट होता है।

**प्राणसंज्ञो मुनिश्रेष्ठ मूर्धानं प्राविशेत् यदा।।४४।।**
**तदन्त्यं विषुवं प्रोक्तं तापसैस्तत्त्वचिन्तकैः।**

जब प्राणवायु सिर में गति करता है तब अन्त्य विषुव (मीन राशि) कहलाता है।

**निश्वासोच्छ्वासनं सर्वं मासानां संक्रमो भवेत्।।४५।।**

वर्ष के सभी महीनों में नाक के दांये-बांये सुरों में अर्थात् इड़ा-पिंगला में प्राणवायु का आना-जाना चलता रहता है।

**इडया कुण्डली स्थानं यदा प्राणः समागतः।**
**सोमग्रहणमित्युक्तं तदा तत्त्वविदां वर।।४६।।**

प्राणवायु के इड़ा नाड़ी से कुण्डलिनी के स्थान में पहुँचने को चन्द्र ग्रहण कहते हैं।

**यदा पिङ्गलया प्राणः कुण्डलीस्थानमागतः।**
**तदा तदा भवेत् सूर्यग्रहणं मुनिपुङ्गव।।४७।।**

प्राणवायु के पिंगला नाड़ी से कुण्डलिनी के स्थान पर पँहुचने पर सूर्यग्रहण होता है।

**शरीर में तीर्थ**

**श्रीपर्वतं शिरःस्थाने केदारं तु ललाटके।**
**वाराणसीं महाप्राज्ञ भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यमे।।४८।।**

सिर में श्रीपर्वत तीर्थ है। माथे में केदारनाथ, भौंहों और नाक के बीच में वाराणसी है।

**कुरुक्षेत्रं कुचस्थाने प्रयागं हृत् सरोरुहे।**
**चिदम्बरं तु हृन्मध्ये आधारे कमलालयम्।।४९।।**

वक्षस्थल पर कुरुक्षेत्र, हृदय कमल में प्रयाग, हृदय के बीच में चिदम्बर और मूलाधार में कमलालय तीर्थ है।

**आत्मतीर्थं समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत्।**
**करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गति।।५०।।**

अपने शरीर के तीर्थों को छोड़कर जो व्यक्ति बाहर के तीर्थों की यात्रा करता है वह हाथ की मूल्यवान मणि को छोड़कर कांच का टुकड़ा पाना चाहता है।

**भावतीर्थं परं तीर्थं प्रमाणं सर्वकर्मसु।**
**अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते कान्ता अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते सुता।।५१।।**

सभी अनुष्ठानों और कार्यों में भावना का सबसे अधिक महत्व होता है। अपनी पत्नी का जिस भावना से आलिंगन किया जाता है उसी भावना से अपनी पुत्री का आलिंगन नहीं किया जाता।

**तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान् काष्ठादिनिर्मितान्।**
**योगिनो न प्रपद्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात्।।५२।।**

नदी, सरोवरों के जल से भरे तीर्थों और लकड़ी, पत्थर के देवताओं के पास योगी नहीं जाते, क्योंकि वे आत्मदर्शन कर लेते हैं।

**बहिस्तीर्थात् परं तीर्थमन्तस्तीर्थं महामुने।**
**आत्मतीर्थं महातीर्थमन्यत्तीर्थं निरर्थकम्।।५३।।**

योगी के लिये बाहर के तीर्थों की अपेक्षा शरीर के तीर्थ श्रेष्ठ हैं। आत्मदर्शन का तीर्थ सबसे बड़ा तीर्थ है, अन्य सब तीर्थ व्यर्थ हैं।

**चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुध्यति।**
**शतशोऽपिजलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि।।५४।।**

काम, क्रोध, लोभ आदि की भावनाओं से युक्त अन्तःकरण बार-बार

तीर्थ स्थान करने से पवित्र नहीं होता जैसे गन्दा शराब का बर्त्तन सौ बार पानी से धोने पर भी साफ नहीं होता।

**विषुवायनकालेषु ग्रहणे चान्तरे सदा।**
**वाराणस्यादिके स्थाने स्नात्वा शुद्धो भवेन्नरः।।५५।।**

मकर संक्रान्ति, उत्तरायण, सूर्य ग्रहण आदि के अवसरों पर हमें वाराणसी आदि तीर्थों में स्थान करके पवित्र होना चाहिये।

**ज्ञानयोगपराणां तु पादप्रक्षालितं जलम्।**
**भावशुद्ध्यर्थमज्ञानां तत्तीर्थं मुनिपुङ्गवः।।५६।।**

ज्ञानयोग से परितृप्त विद्वानों के चरण धोने के जल के स्पर्श से भी अज्ञानियों के मन के मैल दूर हो जाते हैं।

**आत्मा में शिवदर्शन**

**तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाणके सदा।**
**शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते।।५७।।**

अज्ञानी व्यक्ति तीर्थों में दान देने में, यज्ञ करने में और लकड़ी पत्थर से बने देवताओं की मूर्त्तियों की पूजा करने में परमात्मा का दर्शन मानता है जब कि परमात्मा हमारे ही अन्दर है।

**अन्तःस्थं मां परित्यज्य बहिष्ठं यस्तु सेवते।**
**हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य लिहेत् कूर्परमात्मनः।।५८।।**

अन्तःकरण में विराजमान मुझे छोड़कर जो व्यक्ति बाहर के देवी-देवताओं को पूजता रहता है वह हाथ में आयी वस्तु को छोड़कर अपनी कुहनी को ही चाटता है।

**शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः।**
**अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः।।५९।।**

योगी अपने हृदय में विराजमान परमात्मा का साक्षात् करते हैं। अज्ञानी लोगों में परमात्मा के प्रति श्रद्धा-भक्ति जगाने के लिये परमात्मा की मूर्त्तियाँ बनाई जाती हैं।

**ब्रह्मदर्शन से ब्रह्मभाव**

**अपूर्वमपरं ब्रह्म स्वात्मानं सत्यमद्वयम्।**
**प्रज्ञानघनमानन्दं यःपश्यति स पश्यति।।६०।।**

अपूर्व, अत्यन्त श्रेष्ठ, सत्स्वरूप, अद्वय, श्रेष्ठ ज्ञान से परिपूर्ण और आनन्दस्वरूप ब्रह्म का साक्षात् अपने अन्तःकरण में करने वाला ही ब्रह्म के दर्शन करता है।

**नाडीपुञ्जं सदाऽसारं नरभावं महामुने।**
**समुत्सृज्यात्मनाऽऽत्मानमहमित्यवधारय।।६१।।**

नस-नाड़ियों के जाल से भरा मनुष्य का देह असार है। इस असार देह के प्रति लगाव त्याग कर हे महामुनि! अपने अन्तःकरण में विराजमान ब्रह्म मैं ही हूँ यह निश्चित रूप से जान।

**अशरीरं शरीरेषु महान्तं विभुमीश्वरम्।**
**आनन्दमक्षरं साक्षान्मत्वा धीरो न शोचति।।६२।।**

सभी प्राणियों के शरीरों में उपस्थित शरीर रहित, महान, सर्वव्यापी, ईश्वर के दर्शन कर धैर्यशाली व्यक्ति दुखी नहीं होता। अविनाशी ब्रह्म या ईश्वर आनन्दस्वरूप हैं।

**विभेदजनके ज्ञाने नष्टे ज्ञानबलान्मुने।**
**आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं किं करिष्यति।।६३।।**

ज्ञान के बल से अपने आत्मा और ब्रह्म के बीच भेद बुद्धि के नष्ट हो जाने पर आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं यह भावना परिपक्व हो जाने पर ब्रह्म ही शेष रह जाता है।

**।।चतुर्थ खण्ड समाप्त।।**

# पञ्चम खण्ड

**नाडीशोधन**

**सम्यक्कथय मे ब्रह्मन् नाडीशुद्धिं समासतः।**
**यया शुद्ध्या सदा ध्यायन् जीवन्मुक्तोभवाम्यहम्।।१।।**

हे गुरुदेव! आप मुझे नाड़ी शोधन की विधि बताने की कृपा कीजिये। मैं अपनी नाड़ियों को निर्मल बनाकर परमात्मा का सदा चिन्तन करता हुआ जीवन्मुक्त होना चाहता हूँ।

**सांकृते श्रृणु वक्ष्यामि नाडीशुद्धिं समासतः।**
**विध्युक्त कर्म संयुक्तः कामसंकल्पवर्जितः।।२।।**

हे शिष्य सांकृत! मैं तुझे संक्षेप से नाड़ी शोधन प्राणायाम की विधि बतलाऊँगा। नाड़ी शोधन ठीक विधि से करना चाहिये और मन में किसी तरह की इच्छा और संकल्प-विकल्प नहीं होने चाहियें।

**यमाद्यष्टाङ्गसंयुक्तः शान्तः सत्यपरायणः।**
**स्वात्मन्यवस्थितः सम्यक् ज्ञानिभिश्च सुशिक्षितः।।३।।**

साधक को यम, नियम, आसन आदि योग के आठ अंगों का नियमित अभ्यास करना चाहिये। उसका हृदय शान्त और उसका व्यवहार सत्यपूर्ण होना चाहिये। उसे विद्वानों से ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और अपने अन्तःकरण में विराजमान परमात्मा के प्रति अटूट निष्ठा होनी चाहिये।

**पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले वनेऽथवा।**
**मनोरमे शुचौ देशे मठं कृत्वा समाहितः।।४।।**

पर्वत, नदी किनारे, बेल के पेड़ के नीचे या जंगल में साफ-सुथरे और मनोरम स्थान पर मठ बनाकर योगी को एकाग्र मन से योगाभ्यास करना चाहिये।

**आरभ्य चासनं पश्चात् प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।**
**समग्रीवशिरःकायः संवृतास्यः सुनिश्चलः।।५।।**

आसन करने के बाद साधक को पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके अपनी गर्दन, सिर और सारे शरीर को सीधा रखकर तथा मुख बन्द करके निश्चल अर्थात् हिले-डुले बिना बैठना चाहिये।

**नासाग्रे शशभृद् बिम्बे बिन्दुमध्ये तुरीयकम्।**
**स्त्रवन्तममृतं पश्येन्नेत्राभ्यां सुसमाहितः।।६।।**

आखें झपके बिना नाक के अग्रभाग पर या चन्द्रमा पर ध्यान लगाना चाहिये और यह सोचना चाहिये कि चन्द्रमा से अमृत वर्षा हो रही है।

**इडया प्राणमाकृष्य पूरयित्वोदरस्थितम्।**
**ततोऽग्निं देहमध्यस्थं ध्यायन् ज्वालावलीयुतम्।।७।।**

साधक को इडा नाड़ी से अर्थात् नाक के बांये सुर से प्राणवायु को फेफड़ों में भरना चाहिये। इसके बाद उसे पेट में और शरीर के बीच में प्रज्ज्वलित अग्नि का ध्यान करना चाहिये।

**बिन्दुनादसमायुक्तमग्निबीजं विचिन्तयेत्।**
**पश्चाद् विरेचयेत् सम्यक् प्राणं पिङ्गलया बुधः।।८।।**

कुम्भक के समय बिन्दु और नाद से युक्त अग्नि बीज 'राम्' का ध्यान करना चाहिये। इसके बाद पिंगला नाड़ी से अर्थात् दांये सुर से प्राणवायु धीरे-धीरे निकाल देनी चाहिये।

**पुनः पिङ्गलयाऽऽपूर्य वह्निबीजमनुस्मरेत्।**
**पुनर्विरेचयेत् धीमान् इडया एव शनैःशनैः।।९।।**

फिर दांये स्वर से पूरक करके या श्वास भरकर अग्नि बीज का ध्यान करना चाहिये और थोड़ी देर बाद श्वास को बांये सुर से या इडा नाड़ी से धीरे-धीरे निकाल देना चाहिये।

**त्रिचतुर्वासरं वाऽथ त्रिचतुर्वारमेव च।**
**षट्कृत्वो विचरेन्नित्यं रहस्येवं त्रिसन्धिषु।।१०।।**

इस प्रकार तीन-चार दिन तक, तीन-चार बार छह नाड़ीशोधन प्राणायाम एकान्त में सवेरे, शाम और आधी रात में करने चाहियें।

### नाड़ीशुद्धि की पहिचान

**नाडी शुद्धिमवाप्नोति पृथक् चिन्होपलक्षितः।**
**शरीरलघुता दीप्तिर्वह्नेर्जाठरवर्तिनः।।११।।**

शरीर की नस-नाड़ियों का मैल दूर हो जाने पर शरीर में हल्कापन

अनुभव होने लगता है और पेट साफ हो जाने के कारण पाचन शक्ति बढ़ जाती है।

**नादाभिव्यक्तिरित्येतत् चिह्नानि तत् सिद्धिसूचकम्।**
**यावदेतानि सपश्येत् तावदेवं समाचरेत्।।१२।।**

शरीर में अनाहत नाद सुनाई पड़ने पर समझना चाहिये कि नाड़ी शुद्धि भली-भांति हो गई है। जब शरीर में ये चिह्न दीखने लगे तब तक नाड़ीशोधन प्राणायाम करना चाहिये।

### अपनी आत्मा की शुद्धि

**अथवैतत् परित्यज्य स्वात्मशुद्धिं समाचरेत्।**
**आत्मा शुद्धः सदा नित्यः सुखरूपः स्वयम्प्रभः।।१३।।**

अथवा नाड़ीशोधन न करके अपनी आत्मा की शुद्धि करनी चाहिये। आत्मा; सदा शुद्ध, नित्य, सुखस्वरूप और स्वयं प्रकाशमान है।

**अज्ञानात् मलिनो भाति ज्ञानाच्छुद्धो विभात्ययम्।**
**अज्ञानमलपङ्कं यः क्षालयेज्ज्ञानतोयतः।**
**स एव सर्वदा शुद्धो नान्यः कर्मरतो हि सः।।१४।।**

हमारी आत्मा; अज्ञान के कारण मैली दिखती है। ज्ञान हो जाने पर आत्मा का प्रकाश दिखने लगता है। अज्ञान रूपी मैल की कीचड़ को ज्ञान के जल से धोना चाहिये। ऐसे साधक की आत्मा सदा शुद्ध रहती है। सांसारिक कामों में फंसे व्यक्ति की आत्मा शुद्ध नहीं होती।

**।।पंचम खण्ड समाप्त।।**

## षष्ठ खण्ड

### प्राणायाम का लक्षण

**प्राणायामक्रमं वक्ष्ये सांकृते शृणु सादरम्।**
**प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचक पूरक कुम्भकैः।।१।।**

हे सांकृत! मैं अब प्राणायाम के सम्बन्ध में बताता हूँ। इसे तुम ध्यान से सुनो। प्राणायाम के तीन अंग होते हैं– रेचक, पूरक, कुम्भक।

**वर्णत्रयात्मका: प्रोक्ता रेचक पूरक कुम्भका:।**
**स एष प्रणव: प्रोक्त: प्राणायामश्च तन्मय:।।२।।**

रेचक, पूरक और कुम्भक में तीन-तीन अक्षर होते हैं। प्रणव अर्थात् ओ३म् में भी अ, उ, म् ये तीन अक्षर होते हैं इसलिये प्रणव में ही प्राणायाम समाया हुआ है।

**इडया वायुमाकृष्य पूरयित्वोदर स्थितम्।**
**शनैः षोडशभिर्मात्रैरकारं तत्र संस्मरेत्।।३।।**

इडा नाड़ी अर्थात् नाक के बांये सुर से प्राणवायु को सोलह मात्राओं तक धीरे-धीरे भरना चाहिये। वायु भरते समय ओ३म् के अ शब्द का स्मरण करना चाहिये। पूरक रेचक और कुम्भक के बीच ४:८:१६ का अनुपात रहना चाहिये अर्थात् चार मात्राओं से श्वास भरना या पूरक करना चाहिये। सोलह मात्राओं तक रोकना या कुम्भक करना चाहिये। फिर आठ मात्राओं में श्वास निकालना चाहिये।

**पूरितं धारयेत् पश्चाच्चतु:षष्ट्या तु मात्रया।**
**उकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् प्रणवं जपेत्।।४।।**

फेफड़ों में भरे हुए श्वास को ६४ मात्राओं तक अन्दर रोकना या कुम्भक करना चाहिये। कुम्भक के समय प्रणव के 'उ' शब्द का स्मरण करना चाहिये और प्रणव जप करना चाहिये।

**यावद् वा शक्यते तावद् धारयेत् जपतत्पर:।**
**पूरितं रेचयेत् पश्चान्मकारेणानिलं बुध:।।५।।**

अथवा साधक जब तक प्राणवायु को अन्दर रोक सके तब तक उसे कुम्भक करना चाहिये और फिर प्रणव के 'म्' अक्षर का ध्यान करते हुए श्वास को निकालना या रेचक करना चाहिये।

**शनैः पिङ्गलया तत्र द्वात्रिंशन्मात्रया पुन:।**
**प्राणायामो भवेदेष: ततश्चैवं समभ्यसेत्।।६।।**

इसके बाद पिंगला नाड़ी से अर्थात् दांये सुर से ३२ मात्राएँ गिनकर

श्वास निकालना चाहिये। इस विधि से प्राणायाम का ठीक अभ्यास करना चाहिये।

**पुनः पिङ्गलयाऽऽपूर्य मात्रैः षोडभिस्तथा।**
**अकारमूर्तिमत्रापि स्मरेदेकाग्रमानसः।।७।।**

फिर पिंगला नाड़ी या दांये सुर से सोलह मात्राएँ गिनकर श्वास भरना चाहिये। इस समय एकाग्र मन से प्रणव के 'अ' अक्षर का स्मरण करते रहना चाहिये।

**धारयेत् पूरितं विद्वान् प्रणवं संजपन् वशी।**
**उकारमूर्त्तिं सध्यायन् चतुःषष्ट्या तु मात्रया।।८।।**

जितेन्द्रिय और विद्वान साधक को प्रणव के 'उ' अक्षर का ध्यान रखते हुए और प्रणव जप करते हुए ६४ मात्राओं तक कुम्भक करना चाहिये।

**मकारं तु स्मरन् पश्चात् रेचयेदिडयाऽनिलम्।**
**एवमेव पुनः कुर्यादिडयाऽऽपूर्य बुद्धिमान्।।९।।**

कुम्भक के बाद श्वास को इडा नाड़ी या बांये सुर से निकालना चाहिये। रेचक करते हुए 'म्' अक्षर का स्मरण करना चाहिये।

फिर इडा से श्वास भरकर प्राणायाम करना चाहिये।

**एवं समभ्यसेन्नित्यं प्राणायामं मुनीश्वर।**
**एवमभ्यस तो नित्यं षणमासाद् ज्ञानवान् भवेत्।।१०।।**

इस प्रकार प्रतिदिन प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से साधक छह महीनों में ज्ञानी बन जाता है।

**वत्सराद् ब्रह्मविद्वान् स्यात् तस्मान्नित्यं समभ्यसेत्।**
**योगाभ्यासरतो नित्यं स्वधर्मनिरतश्च यः।।११।।**
**प्राणसंयमनेनैव ज्ञानान्मुक्तो भविष्यति।**

एक वर्ष तक प्राणायाम का अभ्यास करते रहने से साधक को ब्रह्म की अनुभूति हो जाती है इसलिये अपने वर्ण और आश्रम के धर्मो का पालन करते हुए योगाभ्यास सदैव करना चाहिये। प्राणायाम के अभ्यास से ब्रह्म ज्ञान की अनुभूति करके साधक मुक्त हो जायेगा।

## पूरक आदि के लक्षण

**बाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरको हि सः।।१२।।**
**सम्पूर्ण कुम्भवद् वायो र्धारणं कुम्भको भवेत्।**
**बहिर्विरेचनं वायोरुदराद् रेचकः स्मृत्।।१३।।**

बाहर की वायु को फेफड़ों में भरना 'पूरक' है। भरे हुए घड़े की तरह इस वायु को फेफड़ों में रोकना कुम्भक है और फेफड़ों से यह वायु निकालना रेचक होता है।

## प्राणायाम की सिद्धियाँ

**प्रस्वेदजनको यस्तु प्राणायामेषु सोऽधमः।**
**कम्पनं मध्यमं विद्यादुत्थानं चोत्तमं विदुः।।१४।।**

प्राणायाम का अभ्यास करते हुए जब पसीना आने लगता है तब सबसे नीची श्रेणी का प्राणायाम सिद्ध होता है। शरीर में कंपकपी आने पर प्राणायाम मध्यम श्रेणी का होता है। प्राणायाम करते-करते जब शरीर पृथ्वी छोड़कर उठने लगता है तब उत्तम श्रेणी का प्राणायाम सिद्ध होता है।

**पूर्वपूर्वं प्रकुर्वीत यावदुत्थानसम्भवः।**
**सम्भवत्युत्तमे प्राज्ञः प्राणायामे सुखी भवेत्।।१५।।**

जब तक आसन उत्थान नहीं होता तब तक प्राणायाम का नियमित अभ्यास करते रहना चाहिये। प्राणायाम की उत्तम स्थिति या शरीर उठने की स्थिति आ जाने पर साधक ज्ञानी बन जाता है और सुख अनुभव करने लगता है।

**प्राणायामेन चित्तं तु शुद्धं भवति सुव्रत।**
**चित्ते शुद्धे शुचिः साक्षात् प्रत्यग्ज्योतिर्व्यवस्थितः।।१६।।**

प्राणायाम के अभ्यास से मन निर्मल हो जाता है। चित्त के निर्मल हो जाने पर ईश्वर की ज्योति का साक्षात् दर्शन हो जाता है।

**प्राणश्चित्तेन संयुक्तः परमात्मनि तिष्ठति।**
**प्राणायामपरस्यास्य पुरुषस्य महात्मनः।।१७।।**

**देहश्चोत्तिष्ठते तेन किंचिज्ज्ञानाद् विमुक्तता।**
**रेचकं पूरकं मुक्त्वा कुम्भकं नित्यमभ्यसेत्।।१८।।**

प्राणवायु में लगा हुआ मन परमात्मा के ध्यान में लीन रहता है। प्राणायाम का अभ्यास नियम पूर्वक करने रहने वाले योगी का शरीर भूमि से तो उठता ही है। उसका अल्प ज्ञान नष्ट हो जाता है और वह पूर्ण ज्ञानी बन जाता है। इसलिये रेचक, पूरक को छोड़कर सदा कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। कुम्भक का अभ्यास करते रहने से पूरक-रेचक स्वयं हो जाते हैं।

**सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यज्ज्ञानमवाप्नुयात्।**
**मनोजवत्वमाप्नोति पलितादि च नश्यति।।१९।।**

प्राणायाम करते रहने से ब्रह्म के सम्बन्ध में पूरी तरह ज्ञान हो जाता है। योगी को मनोजवित्व सिद्धि प्राप्त हो जाती है। प्राणायाम के अभ्यास से झुर्रियाँ नष्ट हो जाती है और बुढ़ापे के चिह्न सफेद बाल आदि भी नहीं रहते।

## मनोजवित्व सिद्धि

मनोजवित्व का अर्थ है मन जैसी तेज गति। यह सिद्धि प्राणायाम और इन्द्रिय संयम से होती है। इस सिद्धि के कारण शरीर और इन्द्रियों द्वारा अपने कार्य करने तथा विषयों को ग्रहण करने की सामर्थ्य मन की तरह वेगवान हो जाती है। इस सिद्धि के द्वारा इन्द्रियों की सहायता लिये बिना ही पदार्थों का ज्ञान-विज्ञान 'स्वप्रतिभा' या 'तारकज्ञान' के प्रकाश से हो जाता है और जिन पदार्थों को हमारी इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं उन्हें भी जान लेने की सामर्थ्य मन में आ जाती है।

**प्राणायामैकनिष्ठस्य न किंचिदपि दुर्लभम्।**
**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्राणायामान् समभ्यसेत्।।२०।।**

नियमितरूप से निष्ठापूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करने वाले के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता अर्थात् उसे अपनी इच्छानुसार कोई भी वस्तु मिल जाती है इसलिये श्रद्धापूर्वक प्राणायाम करना चाहिये।

**रोग नष्ट करने वाले प्राणायाम**

**विनियोगान् प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य सुव्रत।**
**संध्ययोर्ब्राह्मकालेऽपि मध्याह्ने वाऽथवा सदा।।२१।।**

हे सुव्रत! मैं तुम्हें प्राणायामों की उपयोगिता बताता हूँ। दिन और रात की सन्धियों में अर्थात् सवेरे और शाम के समय, ब्राह्ममुहूर्त्त में, दोपहर में या किसी भी समय—

**बाह्यं प्राणं समाकृष्य पूरयित्वोदरेण च।**
**नासाग्रे नाभिमध्ये च पादाङ्गुष्ठे च धारणात्।।२२।।**
**सर्वरोग विनिर्मुक्तो जीवेद् वर्षशतं नरः।**

बाहर की प्राणवायु को फेफड़ों में भरकर नाक के अगले भाग पर, नाभि के मध्य में या पैर के अंगूठे पर मन से प्राणवायु की धारणा करने पर सभी रोगों से मुक्त मनुष्य एक सौ वर्षों तक जीता है।

**नासाग्रधारणाद् वापि जितो भवति सुव्रत।।२३।।**
**सर्वरोगनिवृत्तिः स्यान्नाभिमध्ये तु धारणात्।**
**शरीरलघुता विप्र पादाङ्गुष्ठनिरोधनात्।।२४।।**

नासाग्र पर मन के द्वारा वायु केन्द्रित करने पर आरोग्य लाभ होता है। नाभि के बीच में प्राण केन्द्रित करने पर सारे रोग नष्ट हो जाते हैं।

पैर के अंगूठे पर प्राणवायु लगाने से शरीर में हल्कापन आ जाता है।

**जिह्वया वायुमाकृष्य यः पिबेत् सततं नरः।**
**श्रमदाहविनिर्मुक्तो योगी नीरोगतामियात्।।२५।।**

जीभ से प्राणवायु खींचकर भरने अर्थात् सीत्कारी प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से गर्मी और थकान मिटती है और शरीर नीरोग हो जाता है।

**जिह्वया वायुमाकृष्य जिह्वामूले निरोधयेत्।**
**पिबेदमृतमव्यग्रं सकलं सुखम् आप्नुयात्।।२६।।**

जीभ से प्राणवायु भरकर और प्राणवायु को जीभ के कोमल तालु में लगाने का अभ्यास करने से योगी ब्रह्मरन्ध्र से टपकने वाले अमृत रस का पान सदा करता है और सुख से रहता है।

**इडया वायुमाकृष्य भ्रुवोर्मध्ये निरोधयेत्।**
**यः पिबेदमृतं शुद्धं व्याधिभिर्मुच्यते हि सः।।२७।।**

जो योगी इडा नाड़ी या बांये सुर से प्राणवायु भरकर इसे भौंहों के बीच में लगाता है वह शुद्ध अमृतरस पीता है और निरोग रहता है। यहाँ पर खेचरी मुद्रा लगाने का संकेत है। खेचरी मुद्रा में जीभ को पलट कर कोमल तालु के पीछे से भौंहों के बीच में या त्रिपथ इडा, पिंगला, सुषुम्ना के मार्ग में लगाने का अभ्यास किया जाता है।

**इडया वेदतत्त्वज्ञ तथा पिङ्गलयैव च।**
**नाभौ निरोधयेत् तेन व्याधिभिर्मुच्यते नरः।।२८।।**

हे वेदों के विद्वान्! इडा और पिंगला नाड़ियों से अर्थात् दांये-बांये दोनों सुरों से प्राणवायु भरकर इसे नाभि पर लगाने से सारे रोग नष्ट हो जाते हैं।

**मासमात्रं त्रिसन्ध्यायां जिह्वयाऽऽरोप्य मारुतम्।**
**अमृतं च पिबेन्नाभौ मन्दं मन्दं निरोधयेत्।।२९।।**

एक मास तक तीनों सन्ध्याओं में अर्थात् सवेरे, शाम और आधी रात में जीभ से वायु भरकर इसे नाभि पर केन्द्रित करने से और खेचरी मुद्रा के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से झरने वाले अमृत को पीने से—

**वातजाः पित्तजा दोषा नश्यन्त्येव न संशयः।**

शरीर की वायु और पित्त के प्रकुपित होने से उत्पन्न विकार और रोग आदि निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं।

**नासाभ्यां वायुमाकृष्य नेत्रद्वन्द्वे निरोधयेत्।।३०।।**

**नेत्ररोगा विनश्यन्ति तथा श्रोत्र निरोधनात्।**
**तथा वायुं समारोप्य धारयेच्छिरसि स्थितम्।।३१।।**
**शिरोरोगा विनश्यन्ति सत्यमुक्तं हि सांकृते।**

नाक के दोनों सुरों से श्वास भरकर मन के द्वारा श्वास को दोनों आँखों पर केन्द्रित करने से आँखों के रोग नष्ट हो जाते हैं। अंगूठों से कानों को बन्द करके श्वास को सिर पर लगाने से सिर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

## षणमुखी मुद्रा से वायुजय

**स्वस्तिकासनमास्थाय समाहितमनस्तथा।।३२।।**
**अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य प्रणवेन शनैः शनैः।**
**हस्ताभ्यां धारयेत् सम्यक् कर्णादिकरणानि च।।३३।।**
**अङ्गुष्ठाभ्यां मुने श्रोत्रे तर्जनीभ्यां तु चक्षुषी।**
**नासापुटावथान्याभ्यां प्रच्छाद्य करणानि वै।।३४।।**
**आनन्दाविर्भवो यावत् तावन्मूर्धनि धारयेत्।**
**प्राणः प्रयात्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्रं महामुने।।३५।।**

## षणमुखीमुद्रा की विधि

स्वस्तिक आसन लगाकर और मन एकाग्र करके प्रणव जप करते हुए अपान वायु को धीरे-धीरे ऊपर उठाना चाहिये। हाथों की अंगुलियों से कान, आँख, नाक आदि इन्द्रियों को अच्छी तरह बन्द कर लेना चाहिये। अंगूठों से कानों को बन्द करना चाहिये। अगली अंगुलियों या तर्जनियों को पलकों के ऊपर हल्के से रखना चाहिये और आँखें बन्द कर लेनी चाहियें। नाक के सुरों को मध्यमा या बीच की अंगुलियों से बन्द करना चाहिये अन्तिम दो अंगुलियाँ ऊपर और नीचे के ओठों पर रखनी चाहियें। अब ओठों को गोल करके श्वास भरना चाहिये। मुख बन्द करके श्वास को मुख में ही रोककर दोनों गाल फुलाने चाहियें और गर्दन झुकाकर ठोडी को कण्ठकूप में लगाकर जालन्धर बन्ध लगाना चाहिये। यदि उड्डीयान और मूलबन्ध भी लगाये जायें तो और भी अच्छा होगा। मुख में रुका हुआ श्वास सिर में ब्रह्मरन्ध्र की ओर जाने पर मन में आनन्द का अनुभव होगा। इस प्रकार यथाशक्ति श्वास रोककर थोड़ी देर बाद तीनों बन्ध खोलकर और गर्दन उठाकर नाक के सुरों से श्वास को धीरे-धीरे निकालना चाहिये। श्वास निकालते समय मुख, नाक और आँखों से अंगुलियाँ हटा लेनी चाहियें किन्तु अंगूठों से कान बन्द रखने चाहियें।

**ब्रह्मरन्ध्रं गते वायौ नादश्चोत्पद्यतेऽनघ।**
**शंखध्वनिनिभश्चादौ मध्ये मेघध्वनिर्यथा।।३६।।**

**शिरोमध्यगते वायौ गिरिप्रस्त्रवणं यथा।**
**पश्चात् प्रीतो महाप्राज्ञ साक्षादात्मोन्मुखो भवेत्।।३७।।**

प्राणवायु के ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचने पर अनाहत नाद उत्पन्न होता है। अनाहत नाद शुरू में कानों में शंख की आवाज जैसा सुनाई देता है फिर बादलों की गरज जैसा। प्राणवायु सिर में उसी प्रकार जाती है जैसे पर्वत शिलाओं के बीच बहता हुआ झरना। अनाहत नाद प्रकट होने पर मन में प्रसन्नता छा जाती है और योगी आत्मा के साक्षात् के लिये तैयार हो जाता है।

**पुनस्तज्ज्ञाननिष्पत्तिर्योगात् संसार निह्नुतिः।**

आत्मज्ञान की अनुभूति होने पर योगी संसार से विरक्त होने लगता है।

**दक्षिणोत्तर गुल्फेन सीवनीं पीडयेत् स्थिराम्।।३८।।**
**सव्येतरेण गुल्फेन पीडयेद् बुद्धिमान् नरः।**
**जान्वोरधः स्थितां सन्धिं स्मृत्वा देवं त्रियम्बकम्।।३९।।**

बांयी एड़ी से सीवनी को दबाकर दांयी एड़ी को लिंगमूल के ऊपर लगाना चाहिये। अब दोनों तलुए जांघों और पिण्डलियों के बीच फंसाकर सीधे बैठना चाहिये।

यह विधि सिद्धासन लगाने की है।

**विनायकं च संस्मृत्य तथा वागीश्वरीं पुनः।**
**लिंगनालात् समाकृष्य वायुमप्यग्रतो मुने।।४०।।**
**प्रणवेन नियुक्तेन बिन्दुयुक्तेन बुद्धिमान्।**
**मूलाधारस्य विप्रेन्द्र मध्ये तं तु निरोधयेत्।।४१।।**

शिव, गणेश और सरस्वती का ध्यान करके मूत्रेन्द्रिय से वायु को खींचना चाहिये। इस प्रकार यह प्राणवायु प्रणव और वीर्य से युक्त हो जाती है। इस प्राणवायु को मूलाधार चक्र के बीच में रोकना चाहिये।

मूत्रेन्द्रिय से वायु खींचने के लिये वज्रौलि मुद्रा का अभ्यास आवश्यक है।

**निरुध्य वायुना दीप्तो वह्निरूहति कुण्डलीम्।**
**पुनः सुषुम्नया वायुः वह्निना सह गच्छति।।४२।।**

**एवमभ्यस्तस्तस्य जितो वायुः भवेत् भृशम्।**

मूलाधार चक्र में रुकी हुई प्राणवायु से इस चक्र की अग्नि प्रदीप्त हो उठती है और इस अग्नि के ताप से मूलाधार चक्र में सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है। जागी हुई कुण्डलिनी शक्ति प्राणवायु और अग्नि के साथ सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है। इस विधि से कुण्डलिनी को जगाकर सुषुम्ना में प्रविष्ट कराने का अभ्यास करने से प्राणवायु पर योगी का अधिकार हो जाता है।

### प्राणवायु जय के चिह्न

**प्रस्वेदः प्रथमः पश्चात् कम्पनं मुनिपुङ्गव।।४३।।**
**उत्थानं च शरीरस्य चिह्नमेतज्जितेऽनिले।**

शुरू में शरीर में पसीना आता है। अभ्यास बढ़ने पर शरीर में रह-रह कर कंपकपी आती है और अन्त में शरीर आसन से उठकर आकाश में ठहर जाता है। प्राणवायु पर योगी का अधिकार हो जाने के ये लक्षण हैं।

### प्राणवायु पर अधिकार से रोगों, पापों का नाश और वैराग्य हो जाने के कारण ज्ञान

**एवमभ्यस्तस्तस्य मूलरोगो विनश्यति।।४४।।**
**भगन्धरं च नष्टं स्यात् सर्वरोगाश्च सांकृते।**
**पातकानि विनश्यन्ति क्षुद्राणि च महान्ति च।।४५।।**

षण्मुखी मुद्रा और तीन बन्धों के साथ प्राणायाम का अभ्यास करने वाले साधक के मूलाधार चक्र के आस-पास के सभी रोग भगन्दर, बवासीर प्रोस्टेटग्रन्थि की वृद्धि आदि नष्ट हो जाते हैं तथा छोटे-बड़े सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

**नष्टे पापे विशुद्धं स्याच्चित्तदर्पणमद्भुतम्।**
**पुनर्ब्रह्मादिभोगेभ्यो वैराग्यं जायते हृदि।।४६।।**

पापों के नष्ट हो जाने पर मन का दर्पण अत्यधिक साफ हो जाता है और इसके कारण सांसारिक तथा आध्यात्मिक भोग-ऐश्वर्यों के प्रति हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

**विरक्तस्य तु संसाराज्ज्ञानं कैवल्यसाधनम्।**
**तेन पाशापहानिः स्यात् ज्ञात्वा देवं सदाशिवम्।।४७।।**

संसार से विरक्त साधक के लिये ज्ञान प्राप्त करना ही कैवल्य का उपाय है। सदाशिव अर्थात् सदैव कल्याणकारी ब्रह्म का ज्ञान पाकर सारे बन्धन कट जाते हैं।

**ज्ञानामृतरसो येन सकृदास्वादितो भवेत्।**
**स सर्वकार्यमुत्सृज्य तत्रैव परिधावति।।४८।।**
**ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद् विचक्षणाः।**
**अर्थस्वरूपमज्ञानात् पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः।।४९।।**

जिसने एक बार भी ज्ञानरूपी अमृतरस का स्वाद ले लिया वह सारे काम-काज छोड़कर ज्ञानामृतरस का पान करने के लिये प्रयत्न करता रहता है। बुद्धिमान व्यक्ति इस जगत् को ज्ञानस्वरूप ही मानते हैं किन्तु विकृत विचारों वाले लोग अपने अज्ञान के कारण इस संसार को अर्थस्वरूप अर्थात् अपना भला करने का साधन ही मानते हैं।

**आत्मस्वरूपविज्ञानाद् अज्ञानस्य परिक्षयः।**
**क्षीणेऽज्ञाने महाप्राज्ञ रागादीनां परिक्षयः।।५०।।**
**रागाद्यसम्भवे प्राज्ञ पुण्यपाप विमर्शनम्।**
**द्वयोर्नाशे शरीरेण न पुनः सम्प्रयुज्यते।।५१।।**

आत्मस्वरूप का अर्थात् अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाने से अज्ञान नष्ट हो जाता है। अज्ञान नष्ट हो जाने पर बुद्धिमान व्यक्ति के राग, द्वेष, मान-अपमान आदि के विचार मन से निकल जाते हैं। मन में राग आदि के न रहने से पाप-पुण्य के भाव भी समाप्त हो जाते हैं और पाप-पुण्य नष्ट हो जाने पर आत्मा का शरीर के साथ सम्पर्क फिर नहीं होता अर्थात् जन्म-मृत्यु का बन्धन सदा के लिये छूट जाता है।

**।।छठा खण्ड समाप्त।।**

## सप्तम खण्ड

### प्रत्याहार के लक्षण और भेद

**अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारं महामुने।**
**इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।।१।।**
**बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।**

हे महामुनि! अब मैं तुम्हें प्रत्याहार के सम्बन्ध में बताता हूँ। हमारी इन्द्रियों अर्थात् आँख, कान, नाक आदि का स्वभाव संसार के रूप, रस, गन्ध आदि विषयों की ओर दौड़ना है। अपनी इन्द्रियों को इन विषयों की ओर जाने से रोकना प्रत्याहार कहलाता है।

**यत् पश्यति तु तत् सर्वं ब्रह्म पश्यन् समाहितः।।२।।**
**प्रत्याहारो भवेदेष ब्रह्मविद्भिः पुरोदितः।**

समाधिस्थ योगी को यह सारा संसार ब्रह्म ही दिखता है। ब्रह्मविद् योगियों का यही प्रत्याहार होता है।

**यत् यत् शुद्धमशुद्धं वा करोत्यामरणान्तिकम्।।३।।**
**तत् सर्वं ब्रह्मणे कुर्यात् प्रत्याहारः स उच्यते।**

जो साधक अपने शरीर के जन्म से मृत्यु तक जो नित्यकर्म और काम्यकर्म करता है उन सब भले-बुरे कर्मों को ब्रह्म के अर्पण कर देना भी प्रत्याहार होता है।

**अथवा वायुमाकृष्य स्थानात् स्थानं निरोधयेत्।।५।।**
**दन्तमूलात्तथा कण्ठे कण्ठादुरसि मारुतम्।**
**उरोदेशात् समाकृष्य नाभिदेशे निरोधयेत्।।६।।**
**नाभिदेशात् समाकृष्य कुण्डल्यां तु निरोधयेत्।**
**कुण्डलीदेशतो विद्वान् मूलाधारे निरोधयेत्।।७।।**
**अथापानात् कटिद्वन्द्वे तथोरौ च सुमध्यमे।**
**तस्माज्जानुद्वये जंघे पादाङ्गुष्ठे निरोधयेत्।।८।।**

**प्रत्याहारोऽयमुक्तस्तु प्रत्याहारपरैः पुरा।**

अथवा प्राणवायु को शरीर के एक भाग से दूसरे भाग पर केन्द्रित करने का अभ्यास भी प्रत्याहार कहलाता है। जैसे दांतों की जड़ से प्राणवायु को खींचकर कण्ठ पर लगाना, कण्ठ से हृदय में लगाना, हृदय से नाभि पर केन्द्रित करना, नाभि से कुण्डली पर केन्द्रित करना, कुण्डलिनी के स्थान से मूलाधार चक्र पर ले जाना, मूलाधार या अपान वायु के स्थान से कमर के दोनों ओर लगाना, कमर से जांघों पर लगाना, जांघों से दोनों घुटनों पर केन्द्रित करना और घुटनों से पैर के अंगूठों पर प्राणवायु को लगाना भी प्रत्याहार माना जाता है।

### प्रत्याहार का फल

**एवमभ्यासयुक्तस्य पुरुषस्य महात्मनः।।९।।**
**सर्वपापानि नश्यन्ति भवरोगश्च सुव्रत।**

विधिपूर्वक प्रत्याहार का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के सारे पाप और जन्म-मरण का बन्धन नष्ट हो जाता है।

### वायुधारणात्मक प्रत्याहार

**नासाभ्यां वायुमाकृष्य निश्चलः स्वस्तिकासनः।।१०।।**
**पूरयेदनिलं विद्वान् आपादतलमस्तकम्।**
**पश्चात् पादद्वये तद्वत् मूलाधारे तथैव च।।११।।**
**नाभिकन्दे च हृन्मध्ये कण्ठमूले च तालुके।**
**भ्रुवोर्मध्ये ललाटे च तथा मूर्धनि धारयेत्।।१२।।**

हिले-डुले बिना स्वस्तिकासन में बैठकर नाक के दोनों सुरों से प्राणवायु खींचकर इसे पैर के तलुओं से लेकर सिर तक सारे शरीर में भर लेना चाहिये। इसके बाद प्राणवायु को दोनों पैरों पर केन्द्रित करना चाहिये। पैरों से मूलाधार में, मूलाधार से नाभि के कन्द में, नाभिकन्द से हृदय के बीच में, हृदय से कण्ठमूल में, कण्ठमूल से तालु पर, तालु से भ्रूमध्य पर, भ्रूमध्य से मस्तक पर और मस्तक से सिर पर केन्द्रित करना चाहिये।

**वेदान्तसम्मत प्रत्याहार**

**देहे त्वात्ममतिं विद्वान् समाकृष्य समाहितः।**
**आत्मनाऽऽत्मनि निर्द्वन्द्वे निर्विकल्पे निरोधयेत्।।१३।।**

**प्रत्याहारः समाख्यातः साक्षाद् वेदान्तवेदिभिः।**
**एवमभ्यस्तस्तस्य न किंचिदपि दुर्लभम्।।१४।।**

ज्ञानी पुरुष को अपने शरीर को आत्मा मान लेने का विचार ध्यान पूर्वक त्याग कर अपनी आत्मा को सुख-दुख, गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्वों से रहित और सभी प्रकार के संकल्प-विकल्पों से शून्य परमतत्व ब्रह्म में लगाना चाहिये।

इस प्रकार का प्रत्याहार वेदान्त शास्त्र के विद्वानों ने बताया है। इस प्रत्याहार का अभ्यास करने वाले के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता।

**।।सप्तम खण्ड समाप्त।।**

## अष्टम खण्ड

**पञ्चभूतों में धारणा**

**अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धारणाः पञ्च सुव्रत।**
**देहमध्यगते व्योम्नि बाह्याकाशं तु धारयेत्।।१।।**

**प्राणे बाह्यानिलं तद्वत् ज्वलने चाग्निमौदरे।**
**तोयं तोयांशके भूमिं भूमिभागे महामुने।।२।।**

**हयरावलकाराख्यं मन्त्रमुच्चारयेत् क्रमात्।**
**धारणैषा परा प्रोक्ता सर्वपापविशोधिनी।।३।।**

अब मैं तुम्हें पञ्चधारणा का उपदेश देता हूँ।

शरीर के बीच में स्थित आकाश में अर्थात् हृदयाकाश में बाहर दिखाई दे रहे आकाश को धारण करना चाहिये। इसी प्रकार अपनी प्राणवायु में बाह्य प्राणवायु की धारणा, पेट की अग्नि में या जठराग्नि में बाह्य तेज की धारणा, शरीर के कण्ठ में स्थित जल में या अप् महाभूत की धारणा तथा शरीर के भूमि से सम्बद्ध भाग में पृथिवी महाभूत की धारणा

करनी चाहिये। शरीर के पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच भूतों में पाँच महाभूतों की धारणा करते समय पंच महाभूतों के बीजाक्षरों हं, यं, रं, वं और लं का क्रमशः उच्चारण करना चाहिये। पंचभूतों की धारण का अभ्यास करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

गोरक्षपद्धति के दूसरे शतक के धारणा प्रकरण के अनुसार पृथिवी महाभूत सोने जैसे पीले रंग का है। इसके अधिष्ठातृ देवता ब्रह्मा हैं। इसका आकार चतुष्कोण जैसा है। इस चतुष्कोण के मध्य में 'लं' बीज मन्त्र है।

जल तत्त्व चन्द्रमा की कान्ति जैसा है। इसके अधिष्ठातृ देवता विष्णु है। 'वं' इसका बीज मन्त्र है।

तेज तत्त्व का रंग वीरबहूटी के समान लाल है। इसका आकार त्रिकोण जैसा है और इसका बीजमन्त्र 'रं' है। इसके अधिष्ठातृ देवता रुद्र हैं।

वायु तत्त्व का रंग काजल के ढेर जैसा है। इसके अधिष्ठातृ देवता ईश्वर हैं। बीजाक्षर या बीजमंत्र 'यं' है।

आकाश तत्त्व का रंग अत्यन्त शुद्ध जल के समान है। इसके अधिष्ठातृ देव 'सदाशिव' हैं। बीजाक्षर 'हं' है।

**जान्वन्तं पृथिवी ह्यंशो ह्यपां पाय्वन्तमुच्यते।**
**हृदयांशस्तथाग्न्यंशो भ्रूमध्यान्तोऽनिलांशकः।।४।।**
**आकाशांशस्तथा प्राज्ञ मूर्धांशः परिकीर्त्तितः।**

शरीर में पृथिवी महाभूत का अंश घुटनों के छोर तक है। जल महाभूत का अंश गुदा तक, अग्नि या तेज महाभूत का अंश हृदय में, वायु महाभूत का अंश भ्रूमध्य तक और आकाश महाभूत का अंश सिर तक है।

**ब्रह्माणं पृथिवीभागे विष्णुं तोयांशके तथा।।५।।**
**अग्न्यंशे च महेशानमीश्वरं चानिलांशके।**
**आकाशांशे महाप्राज्ञ धारयेत्तु सदाशिवम्।।६।।**

पृथिवी अंश पर ब्रह्मा की धारणा करनी चाहिये। जल अंश पर विष्णु की धारणा, अग्नि अंश पर शिव की धारणा, वायु अंश पर ईश्वर की धारणा और आकाश अंश पर सदाशिव की धारणा करनी चाहिये।

**आत्मा में धारणा**

**अथवा तव वक्ष्यामि धारणां मुनिपुङ्गव।**
**पुरुषे सर्वशास्तारं बोधानन्दमयं शिवम्।।७।।**
**धारयेद् बुद्धिमान् नित्यं सर्वपापविशुद्धये।**

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं तुम्हें धारणा के बारे में और अधिक बतलाता हूँ। बुद्धिमान मनुष्य को अपने सभी पापों को दूर करने के लिये सबके शासक चिदानन्दमय, कल्याणकारी परमात्मा की धारणा करनी चाहिये।

**ब्रह्मादिकार्यरूपाणि स्वे स्वे संहृत्य कारणे।।८।।**
**सर्वकारणमव्यक्तम् अनिरूप्यम् अचेतनम्।**
**साक्षादात्मनि सम्पूर्णे धारयेत् प्रणवे मनः।**
**इन्द्रियाणि समाहृत्य मनसात्मनि नियोजयेत्।।९।।**

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता परमात्मा के रूप या कार्य हैं। सबके कारण अव्यक्त, नाम-रूपादि रहित, अचेतन, सभी दृष्टियों से परिपूर्ण साक्षात् आत्मस्वरूप प्रणव में मन लगाना चाहिये। परमात्मा का ध्यान करने के लिये सभी इन्द्रियों को मन में एकत्र कर मन को परमात्मा में लगाना चाहिये।

**।।अष्टम खण्ड समाप्त।।**

## नवम खण्ड

**सविशेष ब्रह्म का ध्यान**

**अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ध्यानं संसारनाशनम्।**
**ऋतं सत्यं परं ब्रह्म सर्वसंसार भेषजम्।।१।।**
**ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपं महेश्वरम्।**
**सोऽहमित्यादरेणैव ध्यायेद् योगी ईश्वरेश्वरम्।।२।।**

अब मैं संसार का मोह नष्ट कर देने वाले ध्यान की विधि बतलाता हूँ। परब्रह्म परमात्मा ऋत और सत्य स्वरूप हैं और संसार के सारे दुखों को नष्ट करने वाले या इन दुखों की दवा हैं।

ऋत का अर्थ ईश्वर की निर्धारित व्यवस्था होता है किन्तु यहाँ पर उपनिषद् ब्रह्म योगी ने ऋत का अर्थ कर्मफल प्रदान करने वाला अपर ब्रह्म और सत्य का अर्थ ज्ञानफल प्रदान करने वाला पर ब्रह्म किया है।

## निर्विशेष ब्रह्म का ध्यान

**अथवा सत्यमीशानं ज्ञानमानन्दमद्वयम्।**
**अत्यर्थममलं नित्यमादिमध्यान्तवर्जितम्।।३।।**
**तथाऽस्थूलमनाकाशमसंस्पृश्यमचाक्षुषम्।**
**न रसं न च गन्धाख्यमप्रमेयमनूपमम्।।४।।**
**आत्मानं सच्चिदानन्दमनन्तं ब्रह्म सुव्रत।**
**अहमस्मीत्यभिध्यायेद् देहातीतं विमुक्तये।।५।।**

अथवा साधक को अपनी मुक्ति के लिये निर्विशेष या निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। निर्गुण ब्रह्म सत्यस्वरूप, सृष्टि के संचालक, ज्ञान और आनन्द स्वरूप, अद्वय अर्थात् एकमात्र, अत्यर्थ अर्थात् अनुभूतिगम्य, विशुद्ध, नित्य, आदि, मध्य और अन्त से रहित, अव्यक्त, अनाकाश अर्थात् आकाश, वायु आदि पाँच महाभूतों से विलक्षण हैं। उन्हें कोई छू नहीं सकता, न ही देख सकता है। वे न तो रसरूप हैं, न गन्धरूप हैं। उनकी उपमा किसी भी वस्तु से नहीं दी जा सकती। उन्हें मापा नहीं जा सकता। वे अनन्त हैं, ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उन देहातीत ब्रह्म को 'मैं उस ब्रह्म का ही अंश हूँ' इस रूप में स्मरण करो।

## ध्यान का फल

**एवमभ्यासयुक्तस्य पुरुषस्य महात्मनः।**
**क्रमाद् वेदान्त विज्ञानं विजायेत न संशयः।।६।।**

इस प्रकार अभ्यास में लगे साधक को धीरे-धीरे वेदान्त शास्त्र का ज्ञान अवश्य हो जाता है।

**।।नवम खण्ड समाप्त।।**

## दशम खण्ड

### समाधि का स्वरूप

**अथातः सम्प्रवक्ष्यामि समाधिं भवनाशनम्।**
**समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति।।१।।**

ध्यान की विधि बतलाकर अब मैं माया रूप संसार की कल्पना नष्ट करने वाली समाधि को बतलाया हूँ। समाधि में लीन योगी दूसरे प्राणियों को भी अपना मानता है।

**नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः।**
**एकः सन् भिद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः।।२।।**

परमात्मा; नित्य, सर्वव्यापक, कूटस्थ अर्थात् अचल, शाश्वत तथा परिवर्तनरहित है। उसमें कोई दोष नहीं है। वह एक है अर्थात् अद्वितीय है किन्तु माया के भ्रम के कारण अलग-अलग रूपों में दिखाई देता है। वह वस्तुत: अद्वितीय ही है।

**तस्मात् अद्वैतमेवास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिः।**
**यथाऽऽकाशो घटाकाशो मठाकाश इतीरितः।।३।।**

**तथा भ्रान्तैर्द्विधा प्रोक्तो ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना।**
**नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि मनो न हि।।४।।**

**सदा साक्षिस्वरूपत्वात् शिव एवास्मि केवलः।**
**इति धीः या मुनिश्रेष्ठ सा समाधिः इहोच्यते।।५।।**

इसलिये केवल अद्वैत परमात्मा ही हैं। यह संसार या अनुभव में आने वाले शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच विषय भी नहीं हैं। जैसे आकाश एक ही है किन्तु घड़े में समाया हुआ आकाश या किसी मठ के कमरों में समाया हुआ आकाश अलग-अलग रूपों में दिखता है इसी प्रकार परमात्मा को भ्रम के कारण जीव, आत्मा, ईश्वर आदि कहा जाता है। वास्तव में मैं न तो देह हूँ, न प्राण हूँ, न इन्द्रियाँ हूँ, न मन हूँ। परमात्मा सदा साक्षिस्वरूप या द्रष्टा ही हैं और मैं भी परमात्मा का अंश ही हूँ इसलिये शिव ही हूँ। जिस साधक की बुद्धि में यह भावना बैठ जाती है यही भावना समाधि कहलाती है।

**ब्रह्ममात्रावशेष**

**सोऽहं ब्रह्म न संसारी न मत्तोऽन्यः कदाचन।**
**यथा फेनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः।।६।।**
**समुद्रे लीयते तद्वत् जगन्मय्यनुलीयते।**
**तस्मान्मनः पृथङ् नास्ति जगन्माया च नास्ति हि।।७।।**

मैं ब्रह्म ही हूँ, संसार का अन्य कोई पदार्थ नहीं हूँ। मुझसे दूसरा कोई जीव या पदार्थ नहीं है। जैसे समुद्र में उठी लहर या पानी का झाग समुद्र में ही मिल जाता है उसी प्रकार यह जगत् मुझ में ही समा जाता है। इसलिये मन, जगत् और माया वास्तव में नहीं हैं।

**यस्यैवं परमात्माऽयं प्रत्यग्भूतः प्रकाशितः।**
**स तु याति च पुंभावं स्वयं साक्षात् परामृतम्।।८।।**

जिस साधक के हृदय में परमात्मा का प्रत्यग्भूत भाव अर्थात् ईश्वर प्रत्येक वस्तु से सम्बद्ध है यह भावना जाग जाती है वह साधक स्वयं अमृत स्वरूप साक्षात् परम पुरुषस्वरूप बन जाता है।

**यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा।**
**योगिनोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयम्।।९।।**

जब योगी के मन में ब्रह्म का चैतन्य स्वरूप सदा प्रकाशित रहता है और उसकी इस अनुभूति में कोई विघ्न-बाधा नहीं पड़ती तब वह योगी स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

**यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव हि पश्यति।**
**सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते तदा।।१०।।**

जब योगी सभी प्राणियों को अपना ही मानता है और सब प्राणियों में अपने को ही अनुभव करता है तब वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

**यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति।**
**एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः।।११।।**

समाधि में मगन योगी जब किसी भी प्राणी को नहीं देखता और सभी

प्राणियों के साथ एकीभाव या आत्मभाव मानता है तब वह स्वयं ब्रह्ममात्र रह जाता है।

**यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः।**
**मायामात्रं जगत् कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतिः।।१२।।**

योगी जब अपने को वस्तुतः आत्मास्वरूप देखता है और सारे संसार को मायामय मानता है तब वह मुक्त हो जाता है।

**उपसंहार**

**एवमुक्त्वा स भगवान् दत्तात्रेयो महामुनिः।**
**सांकृतिः स्वस्वरूपेण सुखमास्तेऽतिनिर्भयः।।१३।।**

दत्तात्रेय का यह उपदेश सुनकर सांकृति निर्भय होकर अपने स्वरूप को प्राप्तकर सुख से रहने लगा।

**।।दर्शनोपनिषद् समाप्त।।**

## ८

# ध्यानबिन्दूपनिषद्

**सह नाववतु इति शान्तिः!**

**ब्रह्मध्यानयोग की महिमा**

**यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।**
**भिद्यते ज्ञानयोगेन नान्योः भेदः कदाचन।।१।।**

जिस योगी के अनन्त जन्मों के पाप अनेक योजनों की दूरी तक फैले हुए पर्वत के बराबर भी हों तो भी वे सारे पाप ब्रह्म का ध्यान करने से नष्ट हो जाते हैं। ध्यान योग के सिवाय और किसी भी उपाय से ये पाप नष्ट नहीं हो सकते।

**बीजाक्षरं परं बिन्दु नादं तस्योपरि स्थितम्।**
**सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।२।।**

प्रणव या ओंकार ही बीजाक्षर है। अ, उ और म् के संयोग से ओ३म् शब्द बनता है। इस प्रणव या ओंकार के ऊपर अनाहत नाद का एक अंश आ जाने पर ओंकार सशब्द हो जाता है अर्थात् बोलने योग्य हो जाता है। अनाहत नाद का यह अंश जब दुर्बल हो जाता है या अपने आधार परम ब्रह्म में मिल जाता है तब ओंकार निःशब्द या शब्दरहित हो जाता है। यह निःशब्द प्रणव ही ब्रह्म का स्वरूप या वास्तविक नाम है, इसीलिये ध्यान करते हुए प्रणव का मानसिक जप परम पद को या विदेह कैवल्य अवस्था को प्राप्त कराता है।

**अनाहतं तु यच्छब्दं तस्य शब्दस्य यत् परम्।**
**तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्नसंशयः।।३।।**

अनाहत नाद नित्य है और हृदय में उत्पन्न होता है। शास्त्रों में कहा गया है कि **'नित्योह्योङ्कारः'** अर्थात् ओंकार नित्य है। **'ओङ्कारस्य नित्यत्वात् नाञ्जसोत्पत्तिरिष्यते'** अर्थात् ओंकार के नित्य होने के कारण यह अचानक उत्पन्न नहीं ही जाता। इस अनाहत नाद का सशब्द रूप प्रणव या ओंकार है। इस सशब्द प्रणव से परे जो निर्विशेषब्रह्म या निर्गुण ब्रह्म है उसे जो योगी प्राप्त कर लेता है उसके हृदय के सारे सन्देह नष्ट हो जाते हैं और वह विदेह मुक्त हो जाता है। निर्गुण ब्रह्म; व्यष्टि-समष्टि रूप और साक्षि मात्र है।

**अत्यन्तसूक्ष्म और सर्वव्यापक ब्रह्म**

**बालाग्रशतसाहस्रं तस्य भागस्य भागिनः।**
**तस्य भागस्य भागार्धं तत्क्षये तु निरञ्जनम्।।४।।**

विदेहमुक्त योगियों द्वारा अनुभव किये जाने वाले निर्गुण ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म हैं। हमारे सिर के एक बाल के सिरे के एक लाखवें भाग या अंश से भी सूक्ष्म चैतन्य जीव में स्थित है। ब्रह्म के इस सूक्ष्म चैतन्य अंश का एक लाखवां भाग ईश्वर चैतन्य है। इस ईश्वर चैतन्य का आधा भाग अर्थात् पचास हजारवां भाग सूक्ष्म साक्षि चैतन्यरूप ब्रह्म है। सगुण ब्रह्म का यह स्वरूप क्षीण हो जाने पर अर्थात् अपनी सभी कलाओं या अंशों को त्याग देने पर या निरञ्जन हो जाने पर निर्गुण ब्रह्म मात्र शेष रह जाता है।

**पुष्पमध्ये यथा गन्धः पयोमध्ये यथा घृतम्।**
**तिलमध्ये यथा तैलं पाषाणेष्विव काञ्चनम्।।५।।**
**एवं सर्वाणि भूतानि मणौ सूत्र इवात्मनि।**
**स्थिर बुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः।।६।।**
**तिलानां तु यथा तैलं पुष्पे गन्ध इवाश्रितः।**
**पुरुषस्य शरीरे तु सबाह्याभ्यन्तरे स्थितः।।७।।**
**वृक्षं तु सकलं विद्याच्छाया तस्यैव निष्कला।**
**सकले निष्कले भावे सर्वत्रात्मा व्यवस्थितः।।८।।**

जैसे फूलों में गन्ध, दूध में घी, तिलों में तेल और पत्थरों में सोना छिपा रहता है उसी तरह सभी प्राणियों में ब्रह्म वैसे ही समाया हुआ है जैसे

हार की मणियों में धागा। स्थितप्रज्ञ और ब्रह्मवित् स्थिति को प्राप्त ब्रह्म में स्थित योगी ही पुरुष के शरीर में अन्दर-बाहर व्याप्त ब्रह्म को जान सकता है। अविद्या रूपी कलाओं से युक्त अर्थात् यह सकल वृक्ष मनुष्य देह है। इस अविद्या युक्त वृक्ष को या मनुष्य शरीर को माया अपनी छाया से घेर लेती है यद्यपि माया और उसकी छाया वृक्ष की छाया की तरह निष्कल या निरवयव है। सकल वृक्ष अर्थात् अविद्या से युक्त मनुष्य के शरीर रूपी वृक्ष में और माया की छाया से घिरे माया के सभी कार्यों में अर्थात् संसार के सभी पदार्थों में परमात्मा व्याप्त है। श्रुति भी कहती है **''अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः''** अर्थात् संसार के सभी पदार्थों को अन्दर और बाहर से व्याप्त करके इन सभी वस्तुओं में नारायण विद्यमान हैं।

**प्रणव का स्वरूप**

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वं मुमुक्षुभिः।**
**पृथिव्यग्निश्च ऋग्वेदो भूरित्येव पितामहः।।९।।**

मोक्ष चाहने वाले सभी साधकों को एकाक्षर वाले ओ३म् का ध्यान करना चाहिये क्योंकि ओ३म् ब्रह्म का नाम है। पृथिवी, अग्नि, ऋग्वेद और ब्रह्मा 'भूः' के स्वरूप है।

**अकारे तु लयं प्राप्ते प्रथमे प्रणवांशके।**
**अन्तरिक्षं यजुर्वायुः भुवो विष्णुर्जनार्दनः।।१०।।**

प्रणव के प्रथम अंश अकार के लीन हो जाने पर अन्तरिक्ष, यजुर्वेद, वायु और विष्णु 'भुवः' हैं।

**उकारे तु लयं प्राप्ते द्वितीये प्रणवांशके।**
**द्यौः सूर्यः सामवेदश्च स्वरित्येव महेश्वरः।।११।।**

प्रणव के दूसरे अंश 'उ' के लीन हो जाने पर द्युलोक, सूर्य, सामवेद और महेश्वर या शिव 'स्वः' हैं।

**मकारे तु लयं प्राप्ते तृतीये प्रणवांशके।**
**अकारः पीतवर्णः स्याद् रजोगुण उदीरितः।।१२।।**

प्रणव के तीसरे अंश 'म्' के लीन हो जाने पर ओ३म् का 'अ' अक्षर रजोगुण युक्त पीले रंग का होता है।

**उकारः सात्त्विकः शुक्लो मकारः कृष्ण तामसः।**
**अष्टाङ्गं च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्चदैवतम्।।१३।।**
**ओंकारं यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तु सः।**

ओ३म् का 'उ' अक्षर सात्विक गुण युक्त सफेद रंग का है। 'म' अक्षर तामसिक गुण युक्त काले रंग का है।

इन श्लोकों का भाव यही है कि सृष्टि की स्थिति के बाद प्रलयावस्था आने पर प्रणव के प्रथम अंश पृथिवी, अग्नि लीन हो जाते हैं। इसी क्रम से अन्तरिक्ष लोक और द्युलोक आदि प्रलयावस्था में लीन हो जाते हैं। कहा भी है—

**अकारे लीयते ब्रह्मा उकारे लीयते हरिः।**
**मकारे लीयते रुद्रः प्रणवो हि परः स्मृतः।।**

प्रलयावस्था में ओ३म् के 'अ' में ब्रह्मा, 'उ' में विष्णु और 'म्' में शिव लीन हो जाते हैं। प्रणव ही परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम या स्वरूप है।

ओंकार में आठ अंग, चार पाद, तीन स्थान और पाँच देवता समाविष्ट हैं। ओंकार के इस स्वरूप को जो नहीं जानता वह ब्राह्मण नहीं है। ओंकार का यह स्वरूप जानने वाला ब्राह्मण; ब्रह्मनिष्ठ और जीवन्मुक्त हो जाता है।

**आठ अंग** – अ, उ, म्, बिन्दु, नाद, कला, कलातीत और तत्पर।

**चार पाद –** विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय व्यष्टि के अनुसार। विराट्, सूत्रात्मा, बीज, तुर्यतुर्य समष्टि रूप में। व्यष्टि समष्टि रूप में **ओत**, अनुज्ञात्र, अनुज्ञ, एकरस, अविकल्प।

**तीन स्थान**

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ।

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर ये तीन देह।

सत्व, रजस्, तमस् ये तीन गुण।

ज्ञान, बल, क्रिया ये तीन शक्तियाँ।

भूत, भविष्य, वर्त्तमान ये तीन काल।

**पाँच देवता** ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव।

**प्रणवध्यान की विधि**

**प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।।१४।।**
**अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।**
**निवर्तन्ते क्रियाः सर्वास्तस्मिन् दृष्टे परावरे।।१५।।**

प्रणव या ओ३म् को धनुष बनाना चाहिये। इस प्रणवरूपी धनुष पर अपनी आत्मा का बाण चढ़ाकर ब्रह्म पर निशाना लगाना चाहिये। सावधान और एकाग्र मन से ओंकार का जप करते हुए अपने आत्मा रूपी बाण को ब्रह्म में बींधकर आत्मा को ब्रह्ममय बना देना चाहिये। परमश्रेष्ठ ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर योगी के सभी कार्य-कलाप समाप्त हो जाते हैं।

**ओंकार प्रभवा देवा ओंकार प्रभवाः स्वराः।**
**ओंकार प्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।।१६।।**

सभी देव; ओंकार से ही उत्पन्न हैं। सभी स्वर भी ओंकार से उत्पन्न हैं। तीनों लोकों के स्थावर और जंगम अर्थात् चर और अचर सभी प्राणी और पदार्थ ओंकार से ही उत्पन्न हुए हैं।

**ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः सम्पत् प्रदोऽव्ययः।**
**अर्धमात्रासमायुक्तः प्रणवो मोक्षदायकः।।१७।।**

ह्रस्व स्वर से प्रणव जप करने पर सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। दीर्घ स्वर से प्रणव जप करने पर अत्यधिक ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और प्लुत स्वर से प्रणव जप करने पर साधक ज्ञानी बन जाता है। आधी मात्रा से युक्त प्रणव जप अमरत्व को प्राप्त कराता है।

**तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत्।**
**अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित्।।१८।।**

जब प्रणव जप तेल की धारा की तरह टूटता नहीं है और देर तक सुनाई देने वाली घण्टे की गूंज जैसा बना रहता है तथा प्रणवजप में ध्यान पूरी तरह लग जाता है तब प्रणव जप की इस अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त कर लेने वाला साधक वास्तव में प्रणवजप का जानकार बन जाता है।

**प्राणायाम के साथ प्रणव ध्यान**

**हृत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम्।**
**अङ्गुष्ठमात्रमचलं ध्यायेदोंकारमीश्वरम्।।१९।।**

हृदय कमल की कर्णिका के बीच में दीपक की स्थिर शिखा के आकार वाले अंगूठे जितने ईश्वर रूप स्थिर ओंकार का ध्यान करना चाहिये।

**इडया वायुमापूर्य पूरयित्वोदरस्थितम्।**
**ओंकारं देहमध्यस्थं ध्यायेज्ज्वालावलीयुतम्।।२०।।**

इडानाड़ी से अर्थात् बांये सुर से प्राणवायु भरकर श्वास को पेट पर केन्द्रित करना चाहिये। देह के बीच में स्थित श्वास पर ध्यान लगाकर अग्नि की लपटों से युक्त ओंकार की आकृति का ध्यान करना चाहिये। श्रुति में भी कहा है **''मूलाग्नावग्निरूपं प्रणवं सन्दध्यात्''** अर्थात् मूलाधार चक्र के त्रिकोण में प्रज्वलित प्रणव के अर्थ के अनुसार ईश्वर का ध्यान करना चाहिये। ध्यान के समय कुम्भक करना चाहिये अर्थात् श्वास रोककर ध्यान लगाना चाहिये।

**ब्रह्मा पूरक इत्युक्तो विष्णुः कुम्भक उच्यते।**
**रेचो रुद्र इति प्रोक्तः प्राणायामस्य देवताः।।२१।।**

ब्रह्मा पूरक प्राणायाम के देवता हैं। विष्णु; कुम्भक प्राणायाम के और शिव; रेचक प्राणायाम के देवता हैं।

**प्रणवध्यान की दूसरी विधि**

**आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।**
**ध्यान निर्मथनभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्।।२२।।**

अपने शरीर को निचली अरणि लकड़ी बनाकर और प्रणव को ऊपर की अरणि लकड़ी बनाकर 'ध्यान' की रगड़ के अभ्यास से अर्थात् मन में बार-बार प्रणवजप करने से छिपी हुई आग की तरह जीवात्मा और ईश्वर की ज्योति को देखना चाहिये। प्रणव जप के समय यह भावना बनी रहनी चाहिये कि मैं ब्रह्म का अंश ही हूँ। इस प्रकार प्रणव जप और ब्रह्म ध्यान के द्वारा हृदय में समाये हुए ब्रह्म और आत्मा का साक्षात् करना चाहिये।

**ओंकारध्वनिनादेन वायोः संहरणान्तिकम्।**
**यावद् बलं समादध्यात् सम्यङ्नादलयावधि।।२३।।**
**गमागमस्थं गमनादिशून्यमोंकारमेकं रविकोटिदीप्तम्।**
**पश्यन्ति ये सर्वजगन्तरस्थं हंसात्मकं ते विरजा भवन्ति।।२४।।**

ओंकार के उच्चारण से उत्पन्न नाद या ध्वनि को प्राणवायु में यथाशक्ति मिला देना चाहिये। इस नाद पर एकाग्र मन से तबतक ध्यान लगाना चाहिये जबतक मन इस नाद में लीन नहीं हो जाता। अज्ञानी व्यक्ति इस ओंकार नाद को आने-जाने वाला या अस्थिर समझता है किन्तु ज्ञानी पुरुष इस अद्वितीय ओंकार नाद का अपने हृदय में स्थायी रूप से सदा साक्षात् करते हैं। वे सभी प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान देदीप्यमान विशुद्ध तत्व ईश्वर से अभिन्न ब्रह्मरूप में ओंकार को देखते हैं और कृतकृत्य हो जाते हैं।

## सविशेषब्रह्म का ध्यान

**यन्मनस्त्रिजगत्सृष्टिस्थिति प्रलयकर्म कृत्।**
**तन्मनो विलयं याति तद् विष्णोः परम् पदम्।।२५।।**

जो मन तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता रहता है। तरह-तरह के संकल्प-विकल्प करने वाला हमारा मन ही ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होने देता। एकाग्र मन से ध्यान करने पर मन का लय हो जाता है अर्थात् मन; ब्रह्म के अतिरिक्त किसी और वस्तु या विषय में नहीं लगता। मन के लय की यह स्थिति विष्णु का या ब्रह्म का सर्वश्रेष्ठ पद है।

**अष्टपत्रं तु हृत्पद्मं द्वात्रिंशत्केसरान्वितम्।**

**तस्य मध्यगतो भानुः भानुमध्यगतः शशी।।२६।।**
**शशिमध्यगतो वह्नि वह्निमध्यगता प्रभा।**
**प्रभामध्यगतं पीठं नानारत्नप्रवेष्टितम्।।२७।।**
**तस्य मध्यगतं देवं वासुदेवं निरञ्जनम्।**
**श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्तामणिविभूषितम्।।२८।।**
**शुद्ध स्फटिकसंकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।**
**एवं ध्यायेन्महाविष्णुमेवं च विनयान्वितः।।२९।।**

हृदय कमल आठ पंखुड़ियों वाला है। इसके बीच में ३२ केसर या परागयुक्त कोमल तन्तु हैं। हृदय कमल के मध्य में सूर्य है और सूर्य के मध्य में चन्द्रमा है। चन्द्रमा के बीच में अग्नि है और अग्नि के बीच प्रभामण्डल है। प्रभामण्डल के बीच में अनेक रत्नों से जड़ा हुआ आसन है। इस आसन पर शोक, मोह आदि से रहित या निरञ्जन वासुदेव विराजमान हैं। उनके हृदय पर मोतियों और मणियों से सुसज्जित कौस्तुभ मणि का हार है। वासुदेव का स्वरूप निर्मल स्फटिक के समान और करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति से युक्त है। विनय और श्रद्धा से युक्त साधक को वासुदेव के इस काल्पनिक स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।

**त्रिमूर्ति का ध्यान**

**अतसीपुष्पसंकाशं नाभिस्थाने प्रतिष्ठितम्।**
**चतुर्भुजं महाविष्णुं पूरकेण विचिन्तयेत्।।३०।।**
**कुम्भकेन हृदिस्थाने चिन्तयेत् कमलासनम्।**
**ब्रह्माणं रत्नगौराभं चतुर्वक्त्रं पितामहम्।।३१।।**
**रेचकेन तु विद्यात्मा ललाटस्थं त्रिलोचनम्।**
**शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम्।।३२।।**

अलसी के फूल के रंग के समान नाभि में प्रतिष्ठित चार भुजाओं वाले विष्णु का ध्यान पूरक करते समय करना चाहिये। कुम्भक अर्थात् प्राणवायु को रोकते समय हृदय में विराजमान कमलासन पर बैठे हुए

चतुर्मुख ब्रह्मा का ध्यान करना चाहिये। चतुर्मुख ब्रह्मा का शरीर रत्नों की कान्ति से गौर वर्ण का है। रेचक करते हुए मस्तक में विराजमान, तीन नेत्रों से सुशोभित निर्मल स्फटिक के समान देह वाले पापों का नाश करने वाले सभी कलाओं से रहित शिव का ध्यान करना चाहिये।

**हृदय में ध्यान का फल**

**अब्जपत्रमधः पुष्पमूर्ध्वनालमधोमुखम्।**
**कदली पुष्पसंकाशं सर्ववेदमयं शिवम्।।३३।।**
**शताब्दं शतपत्राढ्यं विप्रकीर्णाब्जकर्णिकम्।**
**तत्रार्कचन्द्रवह्नीनामुपर्युपरि चिन्तयेत्।।३४।।**
**पद्मस्योद्धाटनं कृत्वा सूर्यचन्द्राग्निवर्चसः।**
**तस्य हृद्बीजमाहृत्य आत्मानं चरते ध्रुवम्।।३५।।**

उपरोक्त तीन श्लोकों में ध्यान के आधार हृदय का दूसरी तरह से वर्णन किया गया है। हमारे शरीर का अधिकांश जल से युक्त है। इस शरीर की रक्षा हमारा हृदय सारे शरीर में रक्त पहुँचाकर करता है। हृदय कमल का फूल केले के फूल की तरह नीचे लटका हुआ है। इस हृदय कमल के फूल की नाल लटकते हुए केले के फूल की नाल की तरह ऊपर है। हमारा यह शरीर वेदज्ञान के कारण अनाहत नाद से युक्त कल्याणकारी है। इस शरीर की सामान्य आयु एक सौ वर्ष है। यह शरीर कुशा के सैंकड़ों तिनकों से बने आसन की तरह सैंकड़ों नस-नाड़ियों वाला हैं। शरीर के हृदय कमल पुष्प की कर्णिकाएँ या नस-नाड़ियाँ सारे शरीर में व्याप्त हैं। हमारे हृदयकमल का फूल, सूर्य, चन्द्र और अग्नि के समान तेजस्वी है। प्रणव जप से इस हृदय कमल को ऊपर मुख वाला करना चाहिये जैसे कमल का फूल खिलने पर उसकी नाल भी सीधी हो जाती है। इस हृदयकमल में सूर्य, चन्द्र और अग्नि का क्रमशः चिन्तन करना चाहिये। इस हृदयकमल के 'मं' बीजाक्षर को लेकर अपने हृदय में विष्णुरूप की भावना करनी चाहिये।

**त्रिस्थानं च त्रिमार्गं च त्रिब्रह्म च त्रयाक्षरम्।**
**त्रिमात्रमर्धमात्रं वा यस्तं वेद स वेदवित्।।३६।।**

**तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत्।**
**अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित्।।३७।।**

शरीर में घूमती हुई हंसरूपी हमारी जीवात्मा की तीन अवस्थाएँ या स्थान हैं। ये अवस्थाएँ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की हैं। जीवात्मा के तीन मार्ग हैं। ये मार्ग उत्तरायण, दक्षिणायन और पुनर्जन्म या इस संसार में आवागमन के हैं। देह छोड़ने के बाद जो जीवात्मा उत्तरायण या देवयान मार्ग से जाता है वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है, मुक्त हो जाता है और जीवन-मरण के चक्र से छूट जाता है। दक्षिणायण या पितृयाण से जाने वाला जीवात्मा स्वर्ग लोक में जाता है। अपने पुण्य समाप्त हो जाने पर जीवात्मा को स्वर्ग से लौटकर संसार में फिर आना पड़ता है। तीसरा मार्ग पुनर्जन्म का है। जैसे जोंक तिनके के एक सिरे पर पहुँच कर दूसरे तिनके के सिरे पर उछल कर चली जाती है वैसे ही साधारण मनुष्य की आत्मा देह त्याग करके किसी दूसरे देह या योनि में पहुँच जाती है। आत्मा के एक शरीर से दूसरे शरीर में आने-जाने का क्रम जारी रहने का यह मार्ग जायस्व-म्रियस्व का अर्थात् बार-बार मरने-जीने का मार्ग है।

प्रणव का मर्म समझ लेने वाला साधक ब्रह्म के तीन स्वरूपों वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ को जान लेता है। वह प्रणव या ओ३म् के अ, उ, म् इन तीन अक्षरों का मर्म भी समझ जाता है। वह प्रणव की ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इन तीन मात्राओं को तथा प्रणव की अर्धमात्रा के या अमात्रस्वरूप को भी जान जाता है और ज्ञानी बन जाता है। यहाँ पर अमात्र से आशय जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से परे जीवात्मा तथा ब्रह्म का तुरीय (चौथा) और निर्गुण (अमात्र) रूप है।

इस श्लोक में आये आत्मा के उत्तरायण, दक्षिणायन और आवागमन के मार्गों की विस्तृत जानकारी के लिये प्रश्न, छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों के, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और जीव तथा ब्रह्म के तीन स्थानों या अवस्थाओं के बारे में माण्डूक्य उपनिषद् तथा ओंकार की उपासना के सम्बन्ध में छान्दोग्य उपनिषद् के सम्बद्ध अंशों का अध्ययन करना चाहिये।

जब प्रणव जप तेल की धारा की तरह कभी टूटता नहीं है और देर

तक सुनाई देने वाली घण्टे की गूंज जैसा बना रहता है अर्थात् प्रणव जप में साधक तन्मय हो जाता है, तब प्रणव जप की इस अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त कर लेने वाला साधक वस्तुतः प्रणव को समझ जाता है। **'ओंकाराग्र विद्योतं तुर्य तुरीयं'** इस श्रुति के अनुसार साधक ओंकार जप में तन्मय होकर निगुर्ण ब्रह्म के तुरीय स्वरूप के दर्शन करता है। निर्गुण ब्रह्म का तुरीय स्वरूप; अदृष्ट, अचिन्त्य, अव्यवहार्य, नेति-नेति है।

**यथैवोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः।**
**तथैवोत्कर्षयेत् वायुं योगी योगपथे स्थितः।।३८।।**

जैसे कोई व्यक्ति कमल नाल से पानी खींचता है वैसे ही योगाभ्यास करने वाले योगी को मूलाधार से अपान वायु में मिली प्राणवायु को सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ऊपर लाना चाहिये।

**अर्धमात्रात्मकं कृत्वा कोशभूतं तु पङ्कजम्।**
**कर्षयेन्नालमात्रेण भ्रुवोर्मध्ये लयं नयेत्।।३९।।**

जैसे कोई फूल स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से बीज बन जाता है उसी प्रकार हृदय कमल की कली को एकाग्र दृष्टि और मन की शक्ति से आधी मात्रा वाला बनाकर प्राणवायु को सुषुम्ना के रास्ते भौंहो के बीच में लाकर लीन कर देना चाहिये।

**भ्रूमध्ये तु ललाटे तु नासिकायास्तु मूलतः।**
**जानीयादमृतस्थानं तद् ब्रह्मायतनं महत्।।४०।।**

भौंहों के बीच में, मस्तक में और नाक के अन्त में अमृत-स्थान है। यह अमृतस्थान; ब्रह्म का निवास स्थान है।

भ्रूमध्य, मस्तक और नाक के मूल में जो अमृतस्थान है वहाँ पर सुषुम्ना के रास्ते प्राणवायु का लय योगाभ्यास के बिना नहीं किया जा सकता। इसलिये छह अंगों का योगाभ्यास बताया जाता है।

### योग के छह अंग

**आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।**
**ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट्।।४१।।**

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये छह योग के अंग है। अष्टांग योग में यम, नियम को भी योग के अंग माना गया है।

**चार आसन**

**आसनानि च तावन्ति यावन्त्यो जीवजातयः।**
**एतेषामतुलान् भेदान् जानाति महेश्वरः।।४२।।**

सृष्टि में जितनी योनियाँ हैं उतने ही आसन भी हैं। इन असंख्य आसनों को शिव ही जानते हैं।

**सिद्धं भद्रं तथा सिंहं पद्मं चेति चतुष्टयम्।**

योगाभ्यास के लिये सिद्धासन, भद्रासन, सिंहासन और पद्मासन ये चार आसन उपयोगी हैं।

उपरोक्त चारों आसनों का वर्णन दर्शनोपनिषद् आदि में किया जा चुका है।

**योनिस्थान**

**आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम्।।४३।।**
**योनिस्थानं तयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते।**
**आधाराख्ये गुदस्थाने पंकजं यच्चतुर्दलम्।।४४।।**
**तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता।**
**योनिमध्ये स्थितं लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं तथा।।४५।।**
**मस्तके मणिवद् भिन्नं यो जानाति स योगवित्।**

शरीर के छह चक्रों में मूलाधार चक्र पहिला है और स्वाधिष्ठान चक्र दूसरा है। इन दोनों चक्रों के बीच में योनि का स्थान है। यह योनि कामरूपिणी है अर्थात् योनि व्यक्ति को संसार में प्रवृत्ति मार्ग पर भी ले जाती है और निवृत्ति मार्ग पर भी अर्थात् वैराग्य और मोक्ष के मार्ग पर भी पहुँचा देती है। इसलिये सिद्ध पुरुष इस योनि की वन्दना करते हैं। गुदा के पास मूलाधार चक्र चार दलों वाला कमल है। इसके बीच में योनि है। यहाँ

पर योनि से अभिप्राय कुण्डलिनी शक्ति से है। यदि यह कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना मार्ग से हृदय से ऊपर भ्रूमध्य पार करके सहस्रार में पहुँच जाती है तब निवृत्ति मार्ग को खोल देती है। यदि कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में ही सोती रहती है तब मनुष्य संसार के कामों में फंसा रहता है।

कुण्डलिनी शक्ति के बीच में लिंग अर्थात् प्रत्यगात्मा या प्रत्यक् चैतन्य परमात्मा विराजमान है। यह लिंग मणि के समान प्रकाशित है और इसका मुख पश्चिम की ओर है। योगी अपनी आत्मा और परमात्मा को एक जानकर जीवन्मुक्त हो जाता है।

### मूलाधार चक्र

**तप्तचामीकराकारं तडिल्लेखेव विस्फुरत्।।४६।।**
**चतुरस्रमुपर्यग्नेरधो मेढ्रात् प्रतिष्ठितम्।**

मूलाधार चक्र में चार दलों का कमल है। यह चक्र तपाये हुए सोने की प्रभा और बिजली की चमक जैसा है। यह मूलाधार की अग्नि से ऊपर और मेढ्र अर्थात् लिंगमूल से नीचे है।

### स्वाधिष्ठान चक्र

**स्वशब्देन भवेत् प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयम्।।४७।।**
**स्वाधिष्ठानं ततश्चक्रं मेढ्रमेव निगद्यते।**

स्व का अर्थ प्राणवायु है। स्वाधिष्ठान चक्र प्राणवायु का आश्रय है। यह चक्र लिंगमूल में है। इसमें छह दलों का कमल है। स्वाधिष्ठान चक्र मेढ्र (लिंगमूल) में है।

### मणिपूर चक्र

**मणिवत्तन्तुना यत्र वायुना पूरितं वपुः।।४८।।**
**तन्नाभिमण्डलं चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम्।**
**द्वादशारमहाचक्रे पुण्यपापनियन्त्रितः।।४९।।**
**तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्वं न विन्दति।**

नाभि में केन्द्रित अनेक नस-नाड़ियों में प्राणवायु भरी रहती है। मणिपूर चक्र नाभि में स्थित है। सुषुम्ना नाड़ी नाभिकन्द से होकर उसी प्रकार जाती है जैसे मणि में पिरोया हुआ धागा। इसीलिये इस चक्र का नाम मणिपूर है। इस चक्र की आकृति बारह पंखुड़ियों वाले कमल जैसी है। गोरक्ष-पद्धति और हठयोग के अन्य ग्रन्थों के अनुसार मणिपूर चक्र की आकृति दस पंखुड़ी वाले कमल जैसी है। इस चक्र में पाप-पुण्य से बंधा हुआ जीवात्मा तब तक संसार में मरता और पैदा होता रहता है जब तक उसे ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो जाता।

**नाडीचक्र**

**ऊर्ध्वं मेढ्राधो नाभेः कन्दो योऽस्ति खगाण्डवत्।।५०।।**
**तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः।**
**तेषु नाडी सहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृता।।५१।।**

मेढ्र या लिंगमूल से ऊपर और नाभि से कुछ नीचे पक्षी के अण्डे जैसा कन्द है। इसमें से ७२ हजार नस-नाड़ियाँ निकली हैं। इन हजारों नस-नाड़ियों में से ७२ नाड़ियाँ मुख्य हैं।

**प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तत्र दश स्मृताः।**
**इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका।।५२।।**
**गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी।**
**अलम्बुसा कुहूरत्र शंखिनी दशमी स्मृता।।५३।।**
**एवं नाडीमयं चक्रं विज्ञेयं योगिनां सदा।**
**सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः।।५४।।**
**इडा पिङ्गला सुषुम्नास्तिस्रो नाड्यः प्रकीर्तिताः।**
**इडा वामे स्थिता नाडी पिङ्गला दक्षिणे स्थिता।।५५।।**
**सुषुम्ना मध्यदेशस्था प्राणमार्गास्त्रयः स्मृताः।**

इन ७२ नाड़ियों में से दश प्राणवाहिनी नाड़ियाँ मुख्य हैं। इनके नाम हैं– इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू और शंखिनी।

इनमें से भी तीन नाड़ियों में प्राणवायु लगातार चलती रहती है। ये तीन नाड़ियाँ इडा, पिंगला और सुषुम्ना हैं। इडा के देवता चन्द्रमा हैं और यह नाक के बांये सुर में है। पिंगला के देवता सूर्य हैं और यह नाक के दांये सुर में है। इडा और पिंगला के बीच में सुषुम्ना है जिसके देवता अग्नि हैं। शरीर में ये तीन नाड़ियाँ प्राणवायु के मुख्य मार्ग हैं।

इडानाड़ी सुषुम्ना के बांयी ओर तथा पिङ्गला दांयी ओर है। इनके बीच में सुषुम्ना है।

### प्राणादि दस वायु

**प्राणोऽपानो समानश्चोदानो व्यानस्तथैव च।।५६।।**
**नागः कूर्म कृकरको देवदत्तो धनञ्जयः।**
**प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्चवायवः।।५७।।**
**एते नाडीसहस्रेषु वर्तन्ते जीवरूपिणः।**

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पाँच प्राणवायु मुख्य हैं। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये पाँच वायु मुख्य नहीं हैं, क्योंकि इन वायुओं का शरीर की हजारों नस-नाडियों में लगातार घूमना प्राण और अपान वायु के वश में है।

### प्राण-अपान के वश में जीव

**प्राणापानवशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च धावति।।५८।।**
**वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलत्वान्न दृश्यते।**
**आक्षिप्तो भुजदण्डेन यथोच्चलति कन्दुकः।।५९।।**
**प्राणापानसमाक्षिप्तस्तद्वज्जीवो न विश्रमेत्।**

जीवात्मा; प्राण-अपान वायु के वश में रहकर शरीर में ऊपर-नीचे आता-जाता रहता है। प्राण वायु नाक के दांये-बांये सुरों में क्रम से चलता है। प्राणवायु दो घण्टे चौबीस मिनट तक एक सुर में चलता है। इसके बाद दूसरे सुर में चलने लगता है। प्राणवायु जल्दी-जल्दी आने-जाने के कारण दिखाई नहीं देता। हाथ से उछाली गई गेंद जैसे ऊपर जाती है वैसे ही

प्राण-अपान वायु के अधीन होकर शरीर में चलने वाला जीव आराम नहीं करता।

**योगाभ्यास के समय प्राण-अपान का मिलना**

**अपानात् कर्षति प्राणोऽपानः प्राणाच्च कर्षति।।६०।।**
**खगरज्जुवदित्येतद् यो जानाति स योगवित्।**

मूलाधार में स्थित अपानवायु; प्राणवायु को नीचे खींचता है और आज्ञाचक्र में स्थित प्राणवायु; अपान वायु को ऊपर खींचता है। पैर में डोर बंधे पक्षी की तरह प्राण-अपान वायु शरीर में ऊपर नीचे आते-जाते रहते हैं। यह बात जानने वाला योग का जानकर माना जाता है। योगी प्राणायाम के द्वारा प्राण और अपानवायु को मिला देता है।

**अजपा हंसविद्या**

**हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।।६१।।**
**हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।**
**शतानि षड् दिवारात्रं सहस्राण्येकविंशतिः।।६२।।**
**एतत् संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।**
**अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा।।६३।।**

जब हम श्वास छोड़ते हैं तब 'ह' शब्द होता है और श्वास भरते हुए 'स' शब्द होता है। इस तरह हम श्वास भरते और छोड़ते हुए सदा 'हंस', 'हंस' यह शब्द जपते रहते हैं। एक दिन और रात में हम २१६०० बार हंस शब्द का जप अपने आप कर लेते हैं। इस अजपा गायत्री मन्त्र का जप योगियों को सदा मोक्ष प्राप्त कराता है।

**अस्याःसंकल्पमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते।**
**अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।।६४।।**
**अनया सदृशं पुण्यं न भूतो न भविष्यति।**

इस अजपा गायत्री का संकल्प करने से ही मनुष्य पापों से छुटकारा

पा जाता है। अजपा गायत्री के समान विद्या, जप और पुण्य न तो था और न ही कभी होगा।

**कुण्डली जागरण से मोक्षद्वार को खोलना**

**येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।।६५।।**
**मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।**
**प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह।।६६।।**
**सूचिवद् गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया।**
**उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।।६७।।**
**कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।६८।।**

सुषुम्ना के जिस मार्ग से जन्म-मरण का दुख नष्ट करने वाले ब्रह्मस्थान या ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचा जाता है उस द्वार को रोककर कुण्डलिनी शक्ति हमारे शरीर में सोई पड़ी है। मन एकाग्र करके और केवल कुम्भक प्राणायाम के द्वारा अपानवायु की धौंकनी से प्रज्ज्वलित अग्नि की गर्मी से कुण्डलिनी जाग जाती है और सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते ब्रह्मरन्ध्र तक उसी तरह चली जाती है जैसे सूई में पिरोया हुआ तागा कपड़े में। जैसे चाबी से ताला खोलकर बन्द दरवाजा खोल दिया जाता है वैसे ही योगी कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचा कर मोक्ष का द्वार खोल देता है।

**शक्तिचालन मुद्रा**

**कृत्वा सम्पुटितौ करौ दृढतरं बध्वाऽथ पद्मासनम् गाढं–**
**वक्षसि सन्निधाय चुबुकं ध्यानं च तच्चेतसि।**
**वारंवारमपानमूर्ध्वमनिलं प्रोच्चारयन् पूरितं मुञ्चन्**
**प्राणमुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावान्नरः।।६९।।**

दोनों हाथों की हथेलियाँ एक दूसरी के ऊपर रखकर अर्थात् भैरवी या अंजलि मुद्रा में रखकर, अच्छी तरह पद्मासन लगाकर और ठोडी को कण्ठकूप में लगाकर अर्थात् जालन्धर बन्ध लगाकर मन में परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। मूलाधार बन्ध बार-बार लगाकर अपान वायु को ऊपर

प्राणवायु में मिलाकर प्राण को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराना चाहिये। कुण्डली में प्राण के प्रविष्ट होने के कारण योगी कुण्डली शक्ति के प्रभाव से 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस आत्मबोध की अत्यधिक अनुभूति करता है।

**ब्रह्मचर्य आदि से कुण्डलिनी जागरण**

**पद्मासनस्थितो योगी नाडीद्वारेषु पूरयन्।**
**मारुतं कुम्भयेत् यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः।।७०।।**

जो योगी पद्मासन में बैठकर इडा और पिंगला नाड़ियों से फेफड़ों में प्राणवायु रोककर ध्यानमग्न बैठा रहता है वह निश्चय ही मुक्त हो जाता है।

**अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रमजातेन वारिणा।**
**कटुअम्ललवणत्यागी क्षीरपानरतः सुखी।।७१।।**
**ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः।**
**अब्दादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्र कार्या विचारणा।।७२।।**
**कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनम्।**

शक्तिचालन मुद्रा के अभ्यास में प्राणायाम करने के कारण आये पसीने से शरीर के अंगों की मालिश करनी चाहिये। कुण्डलिनी जागरण का अभ्यास करने वाले योगी को कसैले, खट्टे और नमकीन पदार्थ नहीं खाने चाहियें। उसे केवल दूध पीना चाहिये। मिताहार अर्थात् नपा-तुला भोजन करना चाहिये। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। इस प्रकार निरन्तर योगाभ्यास करने वाला योगी एक वर्ष की साधना के बाद निश्चय ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जिस योगी के कन्द के ऊपर सुषुम्ना में कुण्डलिनी शक्ति आ जाती है वह सिद्ध हो जाता है।

## तीन बन्ध

**मूलबन्ध**

**अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्मूत्रपुरीषयोः।।७३।।**
**युवा भवति वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात्।**

**पार्ष्णिभागेन सम्पीड्य योनिमाकुञ्चयेद् गुदम्।।७४।।**
**अपानमूर्ध्वमुत्कृष्य मूलबन्धोऽयमुच्यते।**

मूलबन्ध लगातार लगाने से प्राण और अपान वायु मिल जाते हैं और मल-मूत्र कम हो जाता है तथा वृद्ध व्यक्ति भी युवक हो जाता है। एड़ी को सीवनी पर लगाकर और गुदा को सिकोड़ने का अभ्यास करना चाहिये तथा अपान वायु को ऊपर खींचना चाहिये। मूलबन्ध लगाने की यह विधि है।

### उड्डियान बन्ध

**उड्याणं कुरुते यस्मादविश्रान्तमहाखगः।।७५।।**
**उड्डियाणं तदेव स्यात्तत्र बन्धो विधीयते।**
**उदरे पश्चिमं ताणं नाभेरूर्ध्वं तु कारयेत्।।७६।।**
**उड्डियाणोऽप्ययं बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी।**

उड्डियान बन्ध लगाने का अभ्यास करने से प्राणवायु रूपी पक्षी कहीं भी रुके बिना सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट हो जाता है। इसीलिये यह बन्ध उड्डीयान कहलाता है। उड्डीयान बन्ध में पेट को अन्दर खींच कर पीठ से लगाया जाता है। नाभि से ऊपर वाला और नीचे वाला सारा पेट उड्डीयान बन्ध में अन्दर खींचा जाता है। ऐसा करते हुए श्वास वायु को निकाल देने से उड्डीयान बन्ध आसानी से लग जाता है। यह बन्ध मृत्युरूपी हाथी के लिये शेर जैसा है अर्थात् उड्डीयान बन्ध का नियमित अभ्यास मृत्यु को दूर रखता है।

### जालन्धर बन्ध

**बध्नाति हि शिरोजातमधोगामिनभोजलम्।।७७।।**
**ततो जालन्धरो बन्धः कण्ठदुःखौघनाशनः।**
**जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोच लक्षणे।।७८।।**

जालन्धर बन्ध गले की सभी नाड़ियों को बांधे रखता है। यह बन्ध लगाने से ब्रह्मरन्ध्र की पीयूषग्रन्थि से निकलने वाला अमृत के समान रस पेट की अग्नि (जठराग्नि) में पड़कर नष्ट नहीं होता। जालन्धर बन्ध

नियमित लगाने से गले के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। इस बन्ध में सिर झुकाकर ठोडी को गले के गड्ढे में या कण्ठकूप में कसकर लगाया जाता है।

गोरक्षपद्धति आदि हठयोग के ग्रन्थों में जालन्धर बन्ध का अर्थ 'गले की नाड़ियाँ' किया गया है क्योंकि इन ग्रन्थों में 'शिराजाल' शब्द है। किन्तु यहाँ 'शिराजाल' के स्थान पर 'शिरोजात' शब्द है। इसलिये उपनिषद् ब्रह्मयोगी ने 'बध्नाति शिरोजातम्' शब्द का अर्थ सिर में उत्पन्न या ब्रह्मरन्ध्र में विद्यमान और सभी रोगों की जड़ कफ को रोकना किया है और श्लोक की इस पंक्ति को उड्डीयान बन्ध से सम्बद्ध माना है। सन्दर्भ के अनुसार भी अगले श्लोक में खेचरी मुद्रा के वर्णन में स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्मरन्ध्र में कफ नहीं अपितु अमृत रस है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी ब्रह्मरन्ध्र की पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland) से महत्त्वपूर्ण रस निकलता है। हठयोगप्रदीपिका में इसे अमृतरस कहा गया है।

## खेचरी मुद्रा

**न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति।**
**कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।।७९।।**
**भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी।**

हमारे काग या छोटी जीभ के पीछे नाक के दोनों सुरों के सिरे हैं। जीभ को काग के पीछे ले जाकर और नाक के इस छेद में पहुँचा कर खेचरी मुद्रा की जाती है। इस छेद में गई हुई जीभ धीरे-धीरे ऊपर बढ़ती जाती है और दोनों भौंहों के बीच तक पहुंच जाती है।

**न रोगो मरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा।।८०।।**
**न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्।**
**पीड्यते न च रोगेण लिप्यते न च कर्मणा।।८१।।**
**बध्यते न च कालेन यस्य मुद्राऽस्ति खेचरी।**
**चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा भवति खेगता।।८२।।**
**तेनैषा खेचरी नाम मुद्रा सिद्धनमस्कृता।**

जो व्यक्ति खेचरी मुद्रा लगाना जानता है और इसका नियमित अभ्यास करता है उसे मृत्यु का सामना नहीं करना पड़ता और वह कभी बीमार नहीं होता है। उसे नींद, भूख-प्यास, नहीं सताती। वह कभी बेहोश नहीं होता। वह कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ता। खेचरी मुद्रा लगाने से चित्त; आकाश अर्थात् भौंहों के बीच खाली स्थान पर एकाग्र हो जाता है और जीभ भी इसी स्थान पर लग जाती है अत: सिद्ध योगी इसे खेचरी कहते हैं और इस मुद्रा को जानने वाले का सम्मान करते हैं।

### खेचरी मुद्रा के द्वारा वजौली सिद्धि

**खेचर्या मुद्रया यस्य विवरं लम्बिको र्ध्वतः।।८३।।**
**बिन्दुः क्षरति नो यस्य कामिन्यालिङ्गितस्य च।**
**यावद् बिन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः।।८४।।**

खेचरी मुद्रा के अभ्यास से जिसकी जीभ ऊपर भौंहों की बीच तक पहुँच जाती है उसका वीर्य स्त्री का आलिंगन करने पर भी स्खलित नहीं होता। जब तक शरीर में वीर्य रहता है तब तक योगी को मृत्यु का भय नहीं सताता।

**यावद् बद्धा नभोमुद्रा तावद् बिन्दुर्न गच्छति।**
**गलितोऽपि यदा बिन्दुः संप्राप्तो योनिमण्डले।।८५।।**
**व्रजत्यूर्ध्वं हठाच्छक्त्या निबद्धो योनिमुद्रया।**

जब तक खेचरी मुद्रा लगी रहती है तबतक वीर्य शरीर से बाहर नहीं जाता। यदि वीर्य स्खलित होकर स्त्री की योनि में पहुँच भी जाता है तब भी वज्रौलि मुद्रा के द्वारा वीर्य को खींचकर शरीर में पहुँचा दिया जाता है।

### दो प्रकार के बिन्दुओं की एकता से जीवन्मुक्ति

**स एव द्विविधो बिन्दुः पाण्डरो लोहितस्तथा।।८६।।**
**पाण्डरं शुक्रमित्याहुः लोहिताख्यं महारजः।**
**विद्रुमद्रुमसंकाशं योनिस्थाने स्थितं रजः।।८७।।**
**शशिस्थाने वसेद् बिन्दुस्तयोरैक्यं सुदुर्लभम्।**

**बिन्दुः शिवो रजः शक्तिर्बिन्दुरिन्दु रजो रविः।।८८।।**
**उभयोः संगमादेव प्राप्यते परमं वपुः।**
**वायुना शक्तिचालेन प्रेरितं खे यथा रजः।।८९।।**
**रविणैकत्वमायाति भवेद् दिव्यवपुस्तदा।**
**शुक्लं चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्यसमन्वितम्।।९०।।**
**द्वयोः समरसीभावं यो जानाति स योगवित्।**

बिन्दु; सफेद और लाल रंग का दो तरह का होता है। सफेद बिन्दु को शुक्ल या शुक्र कहते हैं और लाल को रज। मूंगे के रंग जैसा रज मूलाधार में स्थित योनि में रहता है। यह रज देवीतत्त्व या जीव भी कहलाता है। बिन्दु या शुक्र; शशिस्थान अर्थात् भ्रूमध्य और सहस्त्रार के मध्यवर्त्ती स्थान में रहता है। यह बिन्दु या शुक्र शिवतत्त्व है। शिव और शक्ति को एक कर देना बहुत कठिन है। यह काम योगी ही कर सकता है। जैसे तेज़ हवा के झोंकों से उठी हुई धूल सूर्यकिरणों से मिल जाती है वैसे ही शक्तिचालन मुद्रा से शिव और शक्ति की अथवा शुक्र और रज की एकता से शरीर श्रेष्ठ बनता है या योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। सफेद रंग का शुक्र चन्द्र से सम्बद्ध है और रज; सूर्य के गुणों से युक्त है। भ्रूमध्य और सहस्त्रार के बीच के स्थान पर सूर्य और चन्द्रमा को एक करना जो योगी जानता है वही वास्तव में योगी है।

### महामुद्रा

**शोधनं मलजालानां घटनं चन्द्रसूर्ययोः।।९१।।**
**रसानां शोषणं सम्यङ् महामुद्राऽभिधीयते।।९२।।**

षट्कर्म आदि अनेक साधनों से शरीर की नस-नाड़ियों का मल निकालने के बाद रेचक, पूरक और कुम्भक के साथ प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने पर नाड़ी शुद्धि हो जाती है। महामुद्रा का अभ्यास मलशोधन करता है और चन्द्र तथा सूर्य की शक्तियों को मिलाता है तथा वात, पित्त आदि रसों को सुखाता है।

**वक्षोन्यस्तहनुर्निपीड्य सुषिरं योनेश्च वामांघ्रिणा**
**हस्ताभ्यामनुधारयन् प्रविततं पादं तथा दक्षिणम्।**
**आपूर्य श्वसनेन कुक्षियुगलं बध्वा शनैः रेचयेत्**
**एषा पातकनाशिनी ननु महामुद्रा नृणां प्रोच्यते।।९३।।**

जालन्धर बन्ध लगाकर और बांये पैर की एड़ी से योनिस्थान को (गुदा और लिंग के बीच के स्थान को) दबाना चाहिये। दांया पैर आगे सीधा फैलाकर दोनों हाथों से दांये पैर की अंगुलियाँ और तलवा पकड़ना चाहिये। दोनों फेफड़ों में श्वास भरकर श्वास को कुछ देर अन्दर ही रोक कर बांये सुर से धीरे-धीरे निकालना चाहिये। पापों का नाश करने वाली महामुद्रा लगाने की यह विधि है।

### हृदय में आत्मसाक्षात्कार

**हृदिस्थाने अष्टदलपद्मं वर्तते। तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूपं ज्योतीरूपमणुमात्रं वर्तते। तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं भवति, सर्वं जानाति, सर्वं करोति, सर्वमेतच्चरितमहं कर्ताऽहं भोक्ता सुखी दुःखी काणः खञ्जो बधिरो मूकः कृशः स्थूलोऽनेन प्रकारेण स्वतन्त्रवादेन वर्तते।।९३-१।।**

हमारे हृदय में आठ पंखुड़ियों वाला कमल है। इस फूल के गोल आकार वाले मध्य भाग में ज्योतिस्वरूप अणुमात्र सूक्ष्म आत्मा है। इस जीवात्मा में सब कुछ प्रतिष्ठित है। यह शरीर के सारे कामों को जानता है, अपने सब कर्तव्य पूरे करता है। वह जानता है कि शरीर के इन सब कामों को करने वाला मैं हूँ, मैं ही भोग भोगता हूँ। मैं ही सुखी, दुखी, काना, लूला, बहरा, गूंगा, पतला-मोटा हूँ। जीवात्मा इस प्रकार स्वतन्त्ररूप से हमारे शरीर में रहता है।

**यदा पूर्वदले विश्रमते पूर्वदलं श्वेतवर्णं तदा भक्ति पुरःसरं धर्मे मतिर्भवति।।९३-२।।**

जब जीवात्मा हृदयकमल की पूर्वी दिशा की पंखुड़ी पर आराम करता है तब इसकी बुद्धि भक्ति भाव से भर जाती है और धार्मिक हो जाती है। हृदयकमल की यह पंखुड़ी सफेद रंग की है।

**यदा आग्नेयदले विश्रमते तदाग्नेयदलं रक्तवर्णं तदा निद्रालस्यमतिर्भवति।।९३-३।।**

जब जीवात्मा आग्नेय दिशा में अर्थात् दक्षिण-पूर्व के बीच की दिशा की लाल पंखुड़ी पर विश्राम करता है तब इसे नींद और आलस्य आता है।

**यदा दक्षिणदले विश्रमते तद् दक्षिणदलं कृष्णवर्णं तदा द्वेषकोप मतिर्भवति।।८३-४।।**

जब जीवात्मा कमल की दक्षिण दिशा की काले रंग की पंखुड़ी पर आराम करता है तब इसकी बुद्धि द्वेष और क्रोध से भर जाती है।

**यदा नैर्ऋतदले विश्रमतेत तत् नैर्ऋतदलं नीलवर्णं तदा पापकर्म हिंसा मतिर्भवति।।९३-५।।**

जब जीवात्मा कमल की दक्षिण-पश्चिम दिशा वाली नीले रंग की पंखुड़ी पर विश्राम करता है तब इसकी बुद्धि में पाप और हिंसा की भावना आ जाती है।

**यदा पश्चिमदले विश्रमते तत् पश्चिमदलं स्फटिकवर्णं तदा क्रीडाविनोदे मतिर्भवति।।९३-६।।**

जब जीवात्मा कमल की पश्चिम दिशा वाली स्फटिक जैसे शुद्ध रंग की पंखुड़ी पर आराम करता है तब यह खेलना और विनोद करना चाहता है।

**यदा वायव्यदले विश्रमते वायव्यदलं माणिक्यवर्णं तदा गमन चलन वैराग्य मतिर्भवति।।९३-७।।**

जब जीवात्मा कमल की पश्चिमोत्तर दिशा की मणि जैसे चमकीले रंग की पंखुड़ी पर आराम करता है तब यह आने-जाने के काम करना चाहता है। तब बुद्धि में वैराग्य की भावना भी आती है।

**यदोत्तरदले विश्रमते तदुत्तरदलं पीतवर्णं तदा सुखश्रृंगार मति र्भवति।।९३-८।।**

जब वह कमल की उत्तर दिशावाली पीले रंग की पंखुड़ी पर विश्राम करता है तब उसकी बुद्धि में सुख भोगने और सजने-संवरने की भावना आ जाती है।

**यदा ईषानदले विश्रमते तदीशानदलं वैडूर्यवर्णं तदा दानादिकृपा मतिर्भवति।।९३-९।।**

जब जीवात्मा कमल की पूर्वोत्तर दिशा की वैदूर्यमणि की प्रभा जैसी पंखुड़ी पर विश्राम करता है तब वह दान देना और दया करना चाहता है।

**यदा संधिसंधिषु मतिर्भवति तदा वातपित्तश्लेष्ममहाव्याधि प्रकोपो भवति।।९३-१०।।**

जब जीवात्मा शरीर के अंगों के जोड़ों का ध्यान करता है तब शरीर के वात, पित्त और कफ प्रकुपित होने से गम्भीर बीमारी हो जाती है।

**यदा मध्ये तिष्ठति तदा सर्वं जानाति गायति नृत्यति पठति आनन्दं करोति।।९३-११।।**

जब जीवात्मा हृदय कमल के मध्यभाग में आता है तब वह सब कुछ जान जाता है। वह गाता, नाचता, पढ़ता और मौज मनाता है।

**यदा नेत्रश्रमो भवति श्रमनिर्हरणार्थं प्रथमरेखावलयं कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते प्रथमरेखा बन्धूक पुष्पवर्णं तदा निद्रावस्था भवति। निद्रावस्थामध्ये स्वप्नावस्था भवति। स्वप्नावस्थामध्ये दृष्टं श्रुतमनुमानसम्भववार्ता इत्यादि कल्पनां करोति तदादिश्रमो भवति।।९३-१२।।**

जब आँखें थक जाती हैं तब जीवात्मा आँखों की थकान दूर करने के लिये हृदय कमल के बीच में पहिला गोला बनाकर उसमें समा जाता है। यह पहिला वृत्त बन्धूक पुष्प या गुलदुपहरिया के फूल के समान लाल रंग का होता है। इस पहिले गोले में बैठना जीवात्मा की नींद की अवस्था होती है। निद्रावस्था में वह स्वप्न देखता है। स्वप्नावस्था में वह उन सब वस्तुओं की कल्पना या याद करता है जो उसने जागते हुए देखीं, सुनीं थीं और अनुमान आदि से जिनकी कल्पना की थी। इस कल्पना और याद करने के कारण वह थक जाता है।

**श्रमनिर्हरणार्थं द्वितीयरेखावलयं कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते। द्वितीयरेखा इन्द्रकोपवर्णं तदा सुषुप्ति अवस्था भवति। सुषुप्तौ केवल परमेश्वरसम्बन्धिनी बुद्धि र्भवति। नित्यबोधस्वरूपा**

**भवति। पश्चात् परमेश्वररूपेण प्राप्तिर्भवति।।९३-१३।।**

जीवात्मा; स्वप्नावस्था की थकान मिटाने के लिये दूसरा गोला बनाता है और इसके बीच में समा जाता है। दूसरा गोला इन्द्रगोप या वीरबहूटी के रंग जैसा मखमली लाल रंग का होता है। तब जीवात्मा की सुषुप्ति या गहरी नींद की अवस्था होती है। सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा की केवल परमात्मा में बुद्धि लगी होती है। परमेश्वर सम्बन्धी बुद्धि केवल नित्यबोध या नित्य ज्ञान की अवस्था होती है। यह नित्य बोध स्वरूप बुद्धि आने पर जीवात्मा, परमात्मा के दर्शन करता है।

**तृतीयरेखावलयं कृत्वा मध्ये निमज्जनं कुरुते। तृतीयरेखा पद्मरागवर्णं तदा तुरीयावस्था भवति। तुरीये केवल परमात्मसम्बन्धिनी मतिर्भवति। नित्यबोधस्वरूपो भवति तदा—**

**शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।**
**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।९३-१४।।**

सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा तीसरा गोला बनाकर उसमें समा जाता है। तीसरे गोले का रंग कमल जैसी लाल पद्मराग मणि के समान होता है। यह जीवात्मा की तुरीयावस्था होती है। तुरीयावस्था में बुद्धि केवल परमात्मा के सम्बन्ध में सोचती है। तब बुद्धि नित्यबोधस्वरूपा होती है। तब साधक को धैर्य के साथ बुद्धि को धीरे-धीरे वश में करके ध्यान करना चाहिये। ध्यान के समय मन को परमात्माचिन्तन में लगाने के सिवाय और कुछ नहीं सोचना चाहिये।

**तदा प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा सर्वं विश्वात्म स्वरूपेण लक्ष्यं धारयति। यदा तुरीयातीतावस्था तदा सर्वेषाम् आनन्दस्वरूपो भवति, द्वन्द्वातीतो भवति। यावद् देहधारणा वर्तते तावत्तिष्ठति। पश्चात् परमात्मस्वरूपेण प्राप्तिः भवति। इत्यनेन प्रकारेण मोक्षो भवति। इदमेवात्मदर्शन उपाया भवन्ति।।९३-१५।।**

तब जीवात्मा; प्राण और अपान को मिलाकर संसार के सभी पदार्थों में विश्वात्मा परमेश्वर विराजमान हैं इस प्रकार के परमात्मा के विश्वव्यापी स्वरूप का चिन्तन करता है। इस तुरीयातीतावस्था में जीवात्मा आनन्दस्वरूप

हो जाता है। सुख-दुख, गर्मी-सर्दी, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों से वह प्रभावित नहीं होता। जब तक शरीर को धारण किये रहने की व्यवस्था है तब तक जीवात्मा शरीर में रहता है। देहत्याग के बाद जीवात्मा स्वयं परमात्मस्वरूप प्राप्त कर लेता है। इस तरह उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। आत्मदर्शन के यही उपाय हैं।

### आत्मदर्शन का उपाय

**चतुष्पथ समायुक्त महाद्वारगवायुना।**
**सहस्थित त्रिकोणोर्ध्वगमने दृश्यतेऽच्युतः।।९४।।**

अत्यन्त सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी का सिरा मूलाधार चक्र के त्रिकोण पर है। योग में इस सिरे या मुख को महाद्वार कहा जाता है। सुषुम्ना के इस महाद्वार को रोक कर कुण्डलिनी शक्ति सोई रहती है। योगाभ्यास से यह कुण्डलिनी जाग जाती है और सुषुम्ना के मुख में प्रविष्ट हो जाती है। कुण्डलिनी के साथ ही प्राणाग्नि, मन और दृष्टि भी सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाते हैं। कुण्डलिनी इन्हें साथ लेकर स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा इन सभी चक्रों को पार करके ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार में कुण्डलिनी के पहुँचने पर योगी आत्मदर्शन कर कृतकृत्य हो जाता है। इस श्लोक में कण्ठ में स्थित विशुद्ध चक्र को चतुष्पथ कहा गया है।

इस श्लोक के चतुष्पथ, महाद्वार और त्रिकोण शब्द योग विज्ञान के पारिभाषिक शब्द हैं। इन शब्दों का अर्थ समझे बिना इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। इन शब्दों के साथ-साथ कुण्डलिनी शक्ति का वास्तविक स्वरूप समझने की भी आवश्यकता है। योग विज्ञान अतीन्द्रिय है अर्थात् इसे शरीर की स्थूल इन्द्रियों से नहीं समझा जा सकता। यह विज्ञान अनुभवगम्य ही है। षट्चक्र, इडा, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी आदि अत्यन्त सूक्ष्म हैं, इन्हें आँखें नहीं देख पातीं। इन्हें आत्मज्ञान और व्यक्तिगत अनुभव से ही देखा और समझा जा सकता है। निर्मल चित्त से ही इन सूक्ष्म नाड़ियों को देखा या अनुभव किया जा सकता है।

## कुण्डलिनी

नाक के बायें स्वर में इडा और दायें स्वर में पिंगला नाड़ी से श्वास-प्रश्वास होता है। इन दोनों के बीच सुषुम्ना है। सुषुम्ना के अन्दर भी कई सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं जिनमें चित्रिणी भी है। यह नाड़ी कुण्डलिनी शक्ति का मार्ग है। सुषुम्ना के दोनों ओर की नाड़ियाँ इडा और पिंगला, कुण्डलिनी शक्ति के दो कुण्डल (कान की बालियाँ) हैं। अत: इस शक्ति का नाम कुण्डलिनी है। सम्पूर्ण सृष्टि को चलाने वाली महाकुण्डलिनी शक्ति है जो अव्यक्त है। जीव को चलाने वाली व्यक्त शक्ति कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी शक्ति के प्रकट होने पर वेग उत्पन्न होता है। इस वेग से जो प्रथम स्फोट (शब्द) होता है उसे नाद कहते हैं। कुण्डलिनी शक्ति योनिस्थान में सोई रहती है। बिजली जैसी चमकीली कुण्डलिनी; सुषुम्ना के द्वार पर साढ़े तीन कुण्डलियाँ मारे सांप की भांति कन्द के ऊपर सोती रहती है। इसे योग की क्रियाओं से जगाकर मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाने का अभ्यास कुण्डलिनी योग कहलाता है। कुण्डलिनी का आकार सांप जैसा होता है। शक्तिचालन क्रिया से कुण्डलिनी को जगाकर योगी इसे सुषुम्ना के रास्ते ब्रह्मरन्ध्र में ले जाते हैं।

तैजस तत्त्व प्रधान सुषुम्ना के साथ मानसिक रश्मियों के संघर्षण से उत्पन्न विद्युत् जैसी ज्योति **(विशोका ज्योति पा० योग १/२६)** का आलंकारिक रूप ही कुण्डलिनी है। सूर्य की किरणों के स्पर्श से जैसे कमल खिल जाते हैं वैसे ही मन की रश्मियाँ पड़ने पर देहगत आभ्यन्तरिक केन्द्र या चक्र प्रकाशित होकर दिखने लगते हैं। सम्भवत: इसी भाव के आधार पर इन केन्द्रों (चक्रों) को कमल का नाम दे दिया गया है। स्थूल देह में ये चक्र विद्युत् के बिना दीपों जैसे हैं। बिजली की धारा प्रवाहित होते ही दीप जल उठते हैं। इसी तरह प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति के जागने पर ये चक्र अपने वर्णों के साथ प्रकाशित दिखने लगते हैं। दिव्यदृष्टि प्राप्त योगी इन चक्रों का स्वरूप अनुभव कर पाते हैं।

## नादानुसन्धान से आत्मदर्शन

**पूर्वोक्त त्रिकोणस्थानादुपरि पृथिव्यदि पञ्चवर्णकं ध्येयम्।**

ऊपर श्लोक में आये त्रिकोण स्थान के ऊपर पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों के और पाँच प्राणों के बीजाक्षरों का ध्यान करना चाहिये।

**प्राणादिपञ्चवायुश्च बीजं वर्णं च स्थानकम्।**
**यकारं प्राणबीजं च नीलजीमूत सन्निभम्।**
**रकारमग्निबीजं च अपानादित्य सन्निभम्।।९५।।**

प्राण, अपान आदि पाँच वायुओं, उनके बीजाक्षरों, वर्णों (रंग) और शरीर में इनके स्थानों की स्थिति इस प्रकार है:-

'यकार' या 'यं' यह बीजाक्षर प्राण से सम्बद्ध है। इस बीजाक्षर का रंग काले बादल जैसा है। 'रं' अग्नि तत्त्व का बीजाक्षर है यह अपान वायु से सम्बद्ध है और इसका रंग सूर्य के समान तेजस्वी है।

**लकारं पृथिवीबीजं व्यानं बन्धूकसन्निभम्।**
**वकारं जीवबीजं च उदानं शंख वर्णकम्।।९६।।**

पृथिवी का बीजाक्षर 'लं' है। यह व्यान से सम्बद्ध है और इसका रंग बन्धूक पुष्प या गुलदुपहरिया के रंग जैसा है। जीव का बीज 'वं' है। यह उदान से सम्बद्ध है। इसका रंग शंख जैसा सफेद है।

**हकारं च वियद्बीजं समानं स्फटिकप्रभम्।**
**हृन्नाभिनासाकर्णं च पादाङ्गुष्ठादि संस्थितम्।।९७।।**

आकाश तत्त्व का बीजाक्षर 'हं' है। यह समान प्राण से सम्बद्ध है। इसका रंग स्फटिक जैसा है। प्राणवायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, व्यान सारे शरीर में, उदान कण्ठ में और समान नाभि में रहता है। उदान प्राण जीवात्मा का स्थान है।

**द्विसप्ततिसहस्राणिनाडीमार्गेषु वर्तते।**
**अष्टाविंशतिकोटीषु रोमकूपेषु संस्थिताः।।९८।।**
**समानप्राण एकस्तु जीवः स एक एव हि।**
**रेचकादित्रयं कुर्याद् दृढचित्तः समाहितः।।९९।।**

समान प्राणवायु शरीर की बहत्तर हजार नस-नाड़ियों में और अट्ठाईस

करोड़ रोमकूपों में गति करता रहता है। प्राण, अपान, समान आदि वस्तुतः एक ही है। इन पाँच प्राण-वायुओं का आधार जीवात्मा एक ही है। प्राणवायुओं के आधार जीव का स्वरूप जानकर योगी को निश्चय करके एकाग्र चित्त से रेचकादि से युक्त प्राणायाम करने चाहियें।

**शनैः समस्तमाकृष्य हृत्सरोरुहकोटरे।**
**प्राणापानौ च बध्वा तु प्रणवेन समुच्चरेत्।।१००।।**
**कण्ठ संकोचनं कृत्वा लिङ्गसंकोचनं तथा।**
**मूलाधारात् सुषुम्ना च बिसतन्तुनिभा शुभा।।१०१।।**

अपने अन्तःकरण की हजारों वृत्तियों या विचारों को तथा प्राण और अपान को भी हृदयकमल में रोककर प्रणव ध्वनि को आज्ञाचक्र से उठाकर सहस्रार में ले जाना चाहिये। प्राणायाम करने के लिये रेचक, पूरक और कुम्भक ये तीन क्रियाएँ की जाती हैं और मूलाधार बन्ध, उड्डीयान बन्ध तथा जालन्धर बन्ध लगाये जाते हैं।

मूलाधार चक्र से कमल नाल के तन्तु जैसी सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी शुरू होती है। सुषुम्ना के अन्दर कैवल्य नाड़ी भी है।

**अमूर्तो वर्तते नादो वीणादण्डसमुत्थितः।**
**शंखनादादिभिश्चैव मध्यमेव ध्वनिर्यथा।।१०२।।**

सुषुम्ना नाड़ी के वीणादण्ड में अमूर्त नाद या अनाहत नाद होता है। अनाहत नाद सुषुम्ना नाड़ी की मार्ग रीढ़ की हड्डी में उत्पन्न होता है। इस नाद की ध्वनि शंख आदि की आवाज की तरह होती है।

**व्योमरन्ध्रगतो नादो मायूरं नादमेव च।**
**कपालकुहरे मध्ये चतुर्द्वारस्य मध्यमे।।१०३।।**
**तदात्मा राजते तत्र यथा व्योम्नि दिवाकरः।**
**कोदण्डद्वयमध्ये तु ब्रह्मरन्ध्रेषु शक्ति च।।१०४।।**
**स्वात्मानं पुरुषं पश्येन्मनस्तत्र लयं गतम्।**
**रत्नानि ज्योत्स्निनादं तु बिन्दु माहेश्वरं पदम्।।१०५।।**
**य एवं वेद पुरुषः स कैवल्यं समश्नुते।।१०६।।**

**इत्युपनिषत्।।**

यह अनाहतनाद हृदयाकाश में पहुँचने पर सुनाई देने लगता है। यह अनाहत नाद मोर की ध्वनि जैसा सुनाई देता है। यह इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि नाड़ियों में होता है। अनाहत नाद कण्ठकूप और ब्रह्मरन्ध्र में भी सुनाई पड़ता है। इडा, पिंगला, सुषुम्ना, कण्ठकूप और ब्रह्मरन्ध्र आदि में अनाहत नाद विभिन्न ध्वनियों में सुनाई देता है।

तब ब्रह्मरन्ध्र में और विशुद्ध चक्र में आत्मशक्ति उसी प्रकार प्रकाशित होती है जैसे आकाश में सूर्य। मन सहित दृष्टि, प्राणाग्नि और कुण्डली के ब्रह्मरन्ध्र में लीन हो जाने पर दोनों भौंहों के बीच आज्ञाचक्र में और ब्रह्मरन्ध्र में आत्मपुरुष का दर्शन होता है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से पहिले स्फोट या महानाद होता है। परब्रह्म की इच्छाशक्ति ही स्फोट है और महानाद उसकी क्रिया शक्ति है। नाद उत्पन्न होने के लिये गति आवश्यक है और गति होते ही प्रकाश उत्पन्न होता है। उष्णता के बिना गति नहीं होती। जहाँ उष्णता होगी वहाँ गति होगी और जहाँ गति होगी वहाँ नाद होगा। उष्णता का दिखाई देने वाला रूप प्रकाश है।

महानाद के साथ अक्षर उत्पन्न हुए। जीव की उत्पत्ति के साथ नाद, अक्षर और प्रकाश उत्पन्न हुए। अक्षरों के साथ प्रकाश अनिवार्य रूप से रहता है। शब्द का विस्तारहीन मानसिक भाव मात्र बिन्दु है। चित्त स्थिर होने पर दैशिक विस्तारज्ञान का लोप हो जाता है। वही बिन्दु है। शब्द वस्तुतः क्रिया की धारा है। श्लोक के बिन्दु, नाद, ज्योति और रत्न शब्दों को इस दृष्टि से समझना आवश्यक है। किन्तु तन्त्रशास्त्र की व्याख्या के अनुसार विश्व, तुर्य से अविकल्प, अनुज्ञा, एकरस तक २१ रत्न हैं। इन रत्नों की ज्योति से आलोकित और जाग्रद् आदि ५४ विकल्पों से रहित नाद ही तुर्य- तुर्य बिन्दुमात्रस्वरूप वाले निर्गुण ब्रह्म की भावना को एकाग्रचित्त योगी अनुभव करता है। इस अवस्था की अनुभूति होने पर योगी के हृदय में ब्रह्म का कैवल्यरूप ही शेष रह जाता है अर्थात् ब्रह्मज्ञान की अनुभूति होने पर ब्रह्ममात्र भाव या कैवल्य की स्थिति आ जाती है। इसी तथ्य को श्रुति में **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'** कहा गया है।

**।।ध्यान बिन्दूपनिषद्समाप्त।।**

९

# नादबिन्दूपनिषद्

**वाङ् मे मनसि - इति शान्तिः!**

**वैराजात्मोपासनया सञ्जातज्ञानवह्निना।**
**दग्ध्वा कर्मत्रयं योगी यत्पदं याति तद् भजे।।**

निर्मल आत्मतत्व की उपासना से उत्पन्न ज्ञानाग्नि से योगी अपने तीनों कर्मों को अर्थात् यज्ञ, अध्ययन और दान को भस्म करके जिस पद को प्राप्त करते हैं मैं उसी परमपद या श्रेष्ठ पद की उपासना करता हूँ।

### विराट् प्रणव का स्वरूप

**ओ३म् अकारो दक्षिणः पक्षः उकारस्तूत्तरः स्मृतः।**
**मकारं पुच्छमित्याहुरर्धमात्रा तु मस्तकम्।।१।।**

ओंकार का 'अ' अक्षर स्थूलसृष्टि का द्योतक है। 'अ' अक्षर प्रणव का दांया भाग है। 'उ' अक्षर सूक्ष्म जगत् का द्योतक है और प्रणव का बांया भाग है। प्रणव का 'म्' अक्षर प्रणव की पूंछ अर्थात् सृष्टि बीज का द्योतक है। ब्रह्मज्ञानी प्रणव की आधी मात्रा को उसका मस्तक मानते हैं।

**पादादिकं गुणास्तस्य शरीरं तत्त्वमुच्यते।**
**धर्मोऽस्य दक्षिणश्चक्षुरधर्मो योऽपरः स्मृतः।।२।।**

शरीर रूपी स्थूल प्रणव के पैर आदि सत्व, रजस् आदि गुण होते हैं। विशेष अंगों वाला प्रणव का शरीर ९६ तत्त्वों से उत्पन्न है। इस प्रणव देह की दांयी आंख धर्म है और बांयी आंख अधर्म है।

**भूर्लोकः पादयोस्तस्य भुवर्लोकस्तु जानुनि।**
**सुवर्लोकः कटीदेशे नाभिदेशे महर्जगत्।।३।।**

**जनोलोकस्तु हृद्देशे कण्ठे लोकस्तपस्ततः।**
**भ्रुवोर्ललाट मध्ये तु सत्यलोको व्यवस्थितः।।४।।**

प्रणव के पैरों में भूलोक है। घुटनों में भुवः लोक, कमर में सुवः लोक, नाभि में महः लोक, हृदय में जनः लोक, कण्ठ में तपः लोक और दोनों भौंहों के बीच मस्तक के आज्ञाचक्र में सत्य लोक है।

नादबिन्दूपनिषद् ऋग्वेद से सम्बद्ध है। इसमें विराट् प्रणव के स्वरूप का वर्णन किया गया है। ब्रह्मविद् योगी अपने ज्ञान से सगुण और निर्गुण ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप जान लेने पर अनाहत नाद योग के द्वारा अपने यज्ञ, अध्ययन और दान इन तीनों प्रकार के कर्मों को नष्ट करके विदेहमुक्ति की स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह उपनिषद् विदेह मुक्ति का मार्ग बतलाती है। अन्तर्विराट् और प्रणव को मिला कर बारह मात्राओं वाला महाविराट् प्रणव बनता है। ब्रह्म का विराट् स्वरूप; चेतन तत्त्व और स्थूल जगत् के संयोग वाला होता है। इस महाविराट् के स्थूल जगत् का द्योतक ओंकार का 'अ' अक्षर है जो प्रणव का दांया पक्ष है और 'उ' अक्षर सूक्ष्म जगत् का द्योतक बांया पक्ष है। ओ३म् का 'म्' अक्षर सृष्टि के बीज का द्योतक है। ओ३म् की आधी मात्रा या हलन्त प्रणव के शरीर का मस्तक है। इस शरीर रूपी प्रणव में सत्व, रजस, तमस् आदि ९६ तत्व हैं। इन तत्वों से हमारा शरीर भी बना है। वराहोपनिषद् के प्रथम अध्याय में इन तत्वों का उल्लेख है। ये तत्त्व प्रथम अध्याय के दूसरे श्लोक से पन्द्रहवें श्लोक तक हैं।

### विराट् विद्या का फल

**सहस्रार्णमती वाऽत्र मन्त्र एष प्रदर्शितः।**
**एवमेतां समारूढो हंसयोग विचक्षणः।।५।।**
**न भिद्यते कर्मचारैः पापकोटिशतैरपि।**

इस महाविराट् 'प्रणव' या ओंकार मन्त्र का 'अ' अक्षर हजारों अंगों वाला है। बारह मात्राओं वाले महाविराट् प्रणव का अनुसन्धान करना 'हंसयोग' कहलाता है। हंसयोग में निपुण योगी पर उसके अनेक पूर्वजन्मों के कर्मों के करोड़ों पापों का कोई प्रभाव नहीं होता।

### प्रणव की प्रधान चार मात्राओं का स्वरूप

आग्नेयी प्रथमा मात्रा वायव्येषा तथा परा।।६।।
भानुमण्डलसंकाशा भवेन्मात्रा तथोत्तरा।
परमा चार्धमात्रा या वारुणीं तां विदुर्बुधाः।।७।।
कालत्रयेऽपि यत्रेमा मात्रा नूनं प्रतिष्ठिताः।
एष ओंकार आख्यातो धारणाभिर्निबोधत।।८।।

ओंकार के 'अ' अक्षर की पहली मात्रा आग्नेयी है। 'उ' अक्षर से सम्बद्ध दूसरी मात्रा वायवी है। सूर्यमण्डल की भांति प्रकाशमान 'म्' से सम्बद्ध तीसरी मात्रा बीजात्मा है। ओ३म् की अर्धमात्रा सर्वोत्कृष्ट है। यह चौथी मात्रा वारुणी है। प्रणव की ये मात्राएँ भूत, भविष्य और वर्त्तमान कालों में सदा प्रतिष्ठित रहती हैं। शास्त्रों में ओंकार के इस स्वरूप का वर्णन है। ओंकार के इस मात्रात्मक स्वरूप का ज्ञान धारणा से होता है।

### प्रणव के व्यष्टि और समष्टि स्वरूप बारह मात्रा भेदों का विवरण

घोषिणी प्रथमा मात्रा विद्युन्मात्रा तथा परा।
पतङ्गिनी तृतीया स्याच्चतुर्थी वायुवेगिनी।।९।।
पञ्चमी नामधेया तु षष्ठी चैन्द्र्यभिधीयते।
सप्तमी वैष्णवी नाम अष्टमी शांकरीति च।।१०।।
नवमी महती नाम धृतिस्तु दशमी मता।
एकादशी भवेन्नारी ब्राह्मी तु द्वादशी परा।।११।।

अन्त: प्रणव की अकर आदि मात्राएँ अण्ड, विराट् आदि नाम वाली है। प्रणव की पहली मात्रा घोषिणी, दूसरी मात्रा विद्युत्, तीसरी मात्रा पतङ्गिनी, चौथी वायुवेगिनी, पांचवी नामधेया (प्रणवी), छठी ऐन्द्री, सातवीं वैष्णवी, आठवीं शांकरी, नौवी महती, दसवीं धृति, ग्यारहवीं नारी और बारहवीं ब्राह्मी है। इन पर धारणा करनी चाहिये।

### उपरोक्त मात्राओं के काल में देहान्त का फल

प्रथमायां तु मात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते।
भरते वर्षे राजाऽसौ सार्वभौमः प्रजायते।।१२।।

यदि ओंकार की पहली मात्रा में धारणा-ध्यान के समय साधक का देहान्त हो जाता है तो वह अगले जन्म में भारत का सार्वभौम सम्राट होता है।

**द्वितीयायां समुत्क्रान्तो भवेद्यक्षो महात्मवान्।**
**विद्याधरस्तृतीयायां गान्धर्वस्तु चतुर्थिका।।१३।।**

ओंकार की दूसरी मात्रा में ध्यान करते समय देहान्त होने पर साधक यक्ष, तीसरी मात्रा में देहान्त के समय विद्याधर और चौथी मात्रा में ध्यान के समय गन्धर्व योनि में जन्म लेता है।

**पञ्चम्यामथ मात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते।**
**उषितः सह देवत्वं सोमलोके महीयते।।१४।।**

ओंकार की पांचवी मात्रा में ध्यान करते समय देहान्त होने पर योगी देवताओं के साथ चन्द्रलोक में रहता है।

**षष्ठ्यामिन्द्रस्य सायुज्यं सप्तम्यां वैष्णवं पदम्।**
**अष्टम्यां व्रजते रुद्रं पशुनां च पतिं तथा।।१५।।**

ओंकार की छठी मात्रा में ध्यान करते हुए देहान्त होने पर साधक को इन्द्र के साथ रहने का अवसर मिलता है। सातवीं मात्रा में देहान्त से विष्णु पद की प्राप्ति, आठवीं में देहान्त होने पर पशुपति रुद्र का साथ मिलता है।

**नवम्यां तु महर्लोकं दशम्यां तु जनं व्रजेत्।**
**एकादश्यां तपोलोकं द्वादश्यां ब्रह्म शाश्वतम्।।१६।।**

नवीं मात्रा में देहान्त होने पर 'महः लोक', दसवीं मात्रा में 'जनः लोक', ग्याहवीं मात्रा में तपोलोक और बारहवीं मात्रा में शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

दिन-रात की साठ घड़ियों में पाँच-पाँच घड़ियों के हिसाब से मात्राओं के अनुसार बारह विभाग किये गये हैं।

## निर्विशेष ब्रह्म का स्वरूप और इस स्वरूप ज्ञान का फल

उपरोक्त श्लोकों में सविशेष ब्रह्म अर्थात् सगुण ब्रह्म का स्वरूप जानने वाले ब्रह्मवित् योगियों को अगले जन्म में प्राप्त होने वाली योनियों

और उनके परिणामों का वर्णन किया गया है। निम्नलिखित श्लोकों में निर्विशेष ब्रह्म के स्वरूप और इस स्वरूपज्ञान का फल बताया गया है:–

**ततः परतरं शुद्धं व्यापकं निर्मलं शिवम्।**
**सदोदितं परं ब्रह्म ज्योतिषामुदयो यतः।।१७।।**

इस उपनिषद् के पहले श्लोक के ''अकारो दक्षिणः पक्षः'' से लेकर पाँचवे श्लोक तक महावैराज स्वरूप सविशेष या सगुण ब्रह्म का वर्णन और अगले श्लोकों में सगुण ब्रह्म के उपासकों को अगले जन्मों में मिलने वाले फलों का वर्णन करने के बाद निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध में वर्णन प्रारम्भ होता है।

सगुण ब्रह्म के स्वरूप से परे निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप शुद्ध, सर्वव्यापक, निर्मल, कल्याणमय और सूर्य चन्द्र को सदा उदित रखने के कारण स्वयं सदा उदित रहता है।

**अतीन्द्रियं गुणातीतं मनोलीनं यदा भवेत्।**
**अनूपमं शिवं शान्तं योगयुक्तः सदा विशेत्।।१८।।**

निर्गुण ब्रह्म को आँख, कान आदि स्थूल इन्द्रियों से नहीं देखा या अनुभव किया जा सकता अतः वह अतीन्द्रिय है। वह सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों से परे हैं। समाधि के समय मन के ब्रह्म के ध्यान में तल्लीन हो जाने पर योगी निर्गुण ब्रह्म के अनुपमेय, कल्याणमय और शान्त स्वरूप का साक्षात्कार सदा करता है। ब्रह्म साक्षात्कार की अवस्था निर्विकल्प समाधि सिद्ध होने पर आती है।

**तद्युक्तस्तन्मयो जन्तुः शनैर्मुञ्चेत् कलेवरम्।**
**संस्थितो योगचारेण सर्वसङ्गविवर्जितः।।१९।।**

योगयुक्त योगी ब्रह्म के ध्यान में तल्लीन होकर अपने शरीर तथा अविद्या और उसके कार्यों को धीरे-धीरे त्यागकर चैतन्यमात्र रह जाता है। वह योगाभ्यास में भली-भांति स्थित रहकर सभी सांसारिक सम्बन्धों से मुक्त हो जाता है।

**ततो विलीनपाशोऽसौ विमलः कमलाप्रभुः।**
**तेनैव ब्रह्मभावेन परमानन्दमश्नुते।।२०।।**

सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त निर्मल अन्तःकरण वाला योगी विदेह कैवल्य की स्थिति का स्वामी बनकर परमानन्द का उपभोग करता है।

**ब्रह्मज्ञानी के प्रारब्ध कर्मों का विचार**

**आत्मानं सततं ज्ञात्वा कालं नय महामते।**
**प्रारब्धमखिलं भुञ्जन् नोद्वेगं कर्तुमर्हसि।।२१।।**

हे ब्रह्मज्ञानी! अपने ब्रह्म स्वरूप को सदा अनुभव करते हुए शेष जीवन व्यतीत करो। अपने कर्मफलों का भोग करते हुए तुम्हें उद्विग्न नहीं होना चाहिये।

**उत्पन्ने चात्मविज्ञाने प्रारब्धं नैव मुञ्चति।**
**तत्वज्ञानोदयादूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते।।२२।।**

आत्मविज्ञान हो जाने पर भी तुम्हें प्रारब्ध नहीं छोड़ेगा, क्योंकि इस जन्म में कर्मों का फल मिलना प्रारम्भ हो चुका है। यह जगत्प्रपंच; ब्रह्ममात्र है यह तत्वज्ञान हो जाने पर ही प्रारब्ध से छुटकारा मिल जायेगा।

**देहादीनामसत्वात्तु यथास्वप्नो विबोधतः।**
**कर्म जन्मान्तरीयं यत् प्रारब्धमिति कीर्तितम्।।२३।।**

हमारे शरीर आदि वास्तव में नहीं हैं अर्थात् सदा नहीं रहने वाले हैं या असत् हैं। अगले जन्म में मिलने वाले कर्मफल प्रारब्ध कहलाते हैं। जैसे जागने पर स्वप्न नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार तत्वज्ञान हो जाने पर सुख-दुख आदि भोगं देने वाला प्रारब्ध भी नष्ट हो जाता है।

**यत्तु जन्मान्तराभावात् पुंसो नैवास्ति कर्हिचित्।**
**स्वप्नदेहो यथाध्यासस्तस्तथैवायं हि देहकः।।२४।।**

जब हमारे शरीर आदि असत् या सदा रहने वाले नहीं हैं तब हमारे शरीर का अगला जन्म भी नहीं हो सकता। जैसे स्वप्न का देह या स्वप्न की सत्ता भ्रम मात्र ही है उसी तरह देह की सत्ता भी हमारा भ्रम ही है।

**अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे कुतः स्थितिः।**
**उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्भाण्डस्येव पश्यति।।२५।।**

भ्रमपूर्ण पदार्थ का जन्म ही नहीं होता और जन्म न होने पर उस पदार्थ की सत्ता कैसे हो सकती है? इसीलिये ब्रह्मज्ञानी इस जगत् की सत्ता को मिट्टी के बर्त्तन की तरह नश्वर मानता है।

**अज्ञानं चेति वेदान्तैस्तस्मिन्नष्टे क्व विश्वता।**
**यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात्।।२६।।**

यदि अज्ञान के कारण यह जगत् सत्य दिख रहा है तो वेदान्तशास्त्र का ज्ञान हो जाने पर इस जगत् की स्थिति उसी प्रकार समाप्त हो जाती है जैसे कोई अज्ञानी व्यक्ति भ्रम से रस्सी को रस्सी न समझकर सांप समझ बैठता है।

**तद्वत् सत्यमविज्ञाय जगत् पश्यति मूढधीः।**
**रज्जुखण्डे परिज्ञाते सर्परूपं न तिष्ठति।।२७।।**

इसी तरह मूर्ख व्यक्ति सत्य को न जानकर संसार को सदा रहने वाला समझता है। किन्तु रस्सी, सांप नहीं है यह पता चल जाने पर रस्सी में सांप का भ्रम नष्ट हो जाता है।

**अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चे शून्यतां गते।**
**देहस्यापि प्रपञ्चत्वात् प्रारब्धावस्थितिः कुतः।।२८।।**

इस जगत् के आश्रय या आधार का पता चल जाने पर यह जगत् समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार हमारा शरीर भी असत् या अस्थायी है इसलिये उसके प्रारब्ध या कर्म भोग भी अस्थायी हैं।

**अज्ञानजनबोधार्थं प्रारब्धमिति चोच्यते।**
**ततः कालवशादेव प्रारब्धे तु क्षयं गते।।२९।।**

अज्ञानी पुरुषों को समझाने के लिये प्रारब्ध की बात कही जाती है किन्तु समय बीतने पर या ईश्वर की कृपा के कारण प्रारब्ध नष्ट हो जाने पर।

**ब्रह्मप्रणव सन्धाननादो ज्योतिर्मयः शिवः।**
**स्वयमाविर्भवेदात्मा मेघापाये अंशुमानिव।।३०।।**

प्रणव जप और अनाहत नाद के द्वारा ब्रह्म की खोज करने से योगी को पता चलता है कि उसकी आत्मा के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की सत्ता भ्रम के ही कारण दिखाई देती है। यह तत्वज्ञान हो जाने पर ज्योतिष्मान

कल्याणकारी अनाहत नाद उसी प्रकार प्रकट हो जाता है जैसे बादल छंटने पर सूर्य।

### तुरीय अवस्था प्राप्ति का उपाय नादानुसन्धान

**सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम्।**
**शृणुयाद् दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा।।३१।।**

योगी को सिद्धासन लगाकर बैठना चाहिये और शाम्भवी मुद्रा लगानी चाहिये। ध्यान मग्न होकर उसे अपने दांये कान में अनाहत नाद सदा सुनना चाहिये।

### अनाहत नाद

अनाहत नाद का अर्थ किसी भी प्रकार की टक्कर या रगड़ के बिना उत्पन्न ध्वनि है। नि:शब्द स्थान में चित्त स्थिर करने से तथा कुछ प्राणायाम करने से शरीर के अन्दर नाद सुनाई देते हैं। सबसे पहिले अनाहत नाद प्राय: दांये कान में सुनाई देता है। अभ्यास होने पर हृदय, मस्तिष्क और सारे शरीर में नाद अनुभव होने लगता है। अनाहत नाद का अभ्यास करने के लिये शुरू में षण्मुखी मुद्रा का अभ्यास बहुत सहायक होता है। अनाहत नाद वस्तुत: शरीर में रक्तसंचार की गति से उत्पन्न शब्द है। शरीर के नीरोग होने पर और मन एकाग्र होने पर योगी अनाहत नाद को सुनते हैं। दीर्घकाल तक प्राणायाम के अभ्यास से और संयमित जीवन बिताने से बिना किसी प्रयत्न के योगी अनाहत-नाद सदा सुनते रहते हैं। उनका मन इसी नाद में सदा मग्न रहता है। अनाहत नाद कुण्डलिनी शक्ति के व्यक्त होने का भी संकेत है।

### शाम्भवी मुद्रा

इस मुद्रा को वैष्णवी मुद्रा भी कहते हैं। शाम्भवी मुद्रा से प्राणलय होता है और प्राणलय से चित्त का लय होता है। शरीर के मूलाधार चक्र से लेकर सहस्रार चक्र या ब्रह्मरन्ध्र तक किसी भी आन्तरिक चक्र पर अन्त:करण एकाग्र करके और आँखों की पलकें झपके बिना ही किसी बाह्यलक्ष्य पर

दृष्टि एकाग्र कर ध्यान करने का अभ्यास शाम्भवी मुद्रा है। हठयोग प्रदीपिका (४/३५-३८) के अनुसार अपने शरीर के अन्दर किसी चक्र में योगी का मन एकाग्र हो जाने पर ध्येय लक्ष्य में मन, प्राणवायु सहित लीन हो जाता है और उसकी अपलक तथा स्थिर दृष्टि, आँखें खुली रहने पर भी बाह्य जगत् को या नीचे पड़ी किसी वस्तु को भी नहीं देखतीं। शाम्भवी मुद्रा के निरन्तर अभ्यास से योगी अपने अन्तःकरण में स्फुरित (प्रकट) अत्यन्त कल्याणकारी तत्त्व परब्रह्म को साक्षात् करता है। यह तत्त्व बड़ा विचित्र है। यह न तो शून्य है और न ही अशून्य अर्थात् ध्येयाकार वृत्ति होने के कारण शून्य से विचित्र और अन्त में ध्येयाकार वृत्ति का भी अभाव हो जाने के कारण अशून्य से भी विलक्षण वास्तविक परम तत्त्व है।

शाम्भवी मुद्रा में आँखें अपलक खुली रहती हैं इसलिये शाम्भवी मुद्रा की स्थिति बाहर की है। किन्तु खेचरी मुद्रा में बन्द आँखें भ्रूमध्य में लगी रहती हैं।

शाम्भवी मुद्रा में ध्यान, हृदय आदि किसी आन्तरिक लक्ष्य पर लगाया जाता है जबकि खेचरी मुद्रा में मन, भ्रूमध्य पर एकाग्र किया जाता है। इस प्रकार दोनों मुद्राओं के अभ्यास में मन और आँखों की स्थिति और स्थान अलग-अलग होते हैं किन्तु इन दोनों मुद्राओं के अभ्यास से साधक को देश, काल, वस्तु और सीमा (परिच्छेद) से शून्य अथवा सजातीय, विजातीय या स्वगत के भेद से शून्य (रहित) चैतन्य और आनन्द स्वरूप आत्मतत्त्व में चित्त के लय होने से आनन्द मिलता हैं।

घेरण्ड संहिता (३/५९) के अनुसार आँख में पड़े सुरमे को देखते हुए परमात्म चिन्तन करना शाम्भवी मुद्रा कहलाता है। सिद्धासन या पद्मासन लगाकर मूलबन्ध और उड्डीयानबन्ध के साथ शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। इस मुद्रा में नेत्र थोड़े खुले रहते हैं। आँखे पूरी तरह खुली रखने से चित्त में विक्षेप होता है और आँखें बन्द कर लेने पर आलस्य आने लगता है। शाम्भवी मुद्रा में पलकें नहीं झपकनी चाहियें।

**अभ्यस्यमानो नादोऽयं बाह्यमावृणुते ध्वनिम्।**
**पक्षाद् विपक्षमखिलं जित्वा तुर्यपदं व्रजेत्।।३२।।**

अनाहत नाद सुनने का अभ्यास करने से योगी को बाहर की आवाजें

और शोर आदि सुनाई नहीं देता। यह अभ्यास निरन्तर करते रहने से योगी एक पखवाड़े के बाद अपने अस्तित्व के अतिरिक्त अन्य सभी विरोधी भावनाओं पर नियन्त्रण पा लेता है और तुरीय पद की ओर अग्रसर होने लगता है अर्थात् आत्मा की चतुर्थ अवस्था प्राप्त करने की दिशा में बढ़ने लगता है। तुरीयावस्था में हमारी आत्मा, ब्रह्म के साथ तदाकार हो जाती है। हठयोग प्रदीपिका ४/८३ श्लोक में 'विपक्ष' के स्थान पर 'विक्षेप' शब्द का प्रयोग है। विक्षेप शब्द इस प्रसंग में अधिक उचित प्रतीत होता है। इसके अनुसार अनाहत नाद में एक पक्ष तक चित्त लगाने से मन की चंचलता नष्ट हो जाती है।

**श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान्।**
**वर्धमान तथाऽभ्यासे श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मतः।।३३।।**

नादानुसन्धान के प्रारम्भ में तरह-तरह के नाद सुनाई देते हैं। अभ्यास बढ़ने पर अत्यन्त सूक्ष्म नाद सुनाई देने लगते हैं।

**आदौ जलधिजीमूत भेरी निर्झर सम्भवः।**
**मध्ये मर्दलशब्दाभो घण्टाकाहलजस्तथा।।३४।।**

**अन्ते तु किंकिणीवंशवीणा भ्रमर निस्वनः।**
**इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः।।३५।।**

नादानुसन्धान के प्रारम्भ में योगी को समुद्र और बादलों की गरज, नगाड़ों के बजने और झरनों के बहने की आवाजें सुनाई देती हैं। मध्यम अवस्था में ढोल, घण्टे, घड़ियाल आदि बजने की आवाजें सुनाई देती हैं और अन्तिम अवस्था में घूंघरू, बांसुरी, वीणा बजने की मधुर ध्वनियाँ और भौंरों की गुंजार आदि सुनाई देती हैं। अभ्यास बढ़ने पर सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नाद सुनाई देने लगते हैं।

**महति श्रूयमाणे तु महाभेर्यादिकध्वनौ।**
**तत्रसूक्ष्मं सूक्ष्मतरं नादमेव परामृशेत्।।३६।।**

नगाड़ों आदि का शोर सुनने की अपेक्षा योगी को सूक्ष्म से सूक्ष्म आवाजों में मन लगाने का प्रयत्न करना चाहिये।

**घनमुत्सृज्य वा सूक्ष्मे सूक्ष्ममुत्सृज्य वा घने।**

**रममाणमपि क्षिप्तं मनो नान्यत्र चालयेत्।।३७।।**

यदि क्षिप्त चित्त या अस्थिर मन घनी आवाज सुनना छोड़ कर सूक्ष्म ध्वनि सुनना चाहे अथवा सूक्ष्म ध्वनि की अपेक्षा गम्भीर ध्वनि सुनना चाहे तब मन को और कहीं न लगाकर किसी न किसी नाद को सुनने में लगाये रखना चाहिये।

**यत्र कुत्रापि वा नादे लगति प्रथमं मनः।**
**तत्र तत्र स्थिरीभूत्वा तेन सार्धं विलीयते।।३८।।**

नादानुसन्धान के प्रारम्भ में मन जिस किसी भी शब्द में लगे उसे वहीं लगे रहने देना चाहिये। किसी भी प्रकार के नाद में मन लगा रहने से मन उसी नाद में लीन हो जाता है।

**विस्मृत्य सकलं बाह्यं नादे दुग्धाम्बुवन्मनः।**
**एकीभूयाथ सहसा चिदाकाशे विलीयते।।३९।।**

नादानुसन्धान का अभ्यास परिपक्व होने पर मन बाहर के सभी शब्दों को छोड़कर अनाहत नाद में दूध में पानी की तरह नाद के साथ मिल जाता है। इस स्थिति में मन अचानक चिदाकाश में लीन हो जाता है।

**उदासीनस्ततो भूत्वा सदाऽभ्यासेन संयमी।**
**उन्मनीकारकं सद्यो नादमेवावधारयेत्।।४०।।**

जितेन्द्रिय योगी नादानुसन्धान का सदा अभ्यास करते रहने से संसार से उदासीन हो जाता है इसलिये मन की उन्मनी अवस्था प्राप्त कराने वाले नादानुसन्धान का अभ्यास जल्दी ही शुरू कर देना चाहिये। मन की उन्मनी अवस्था में मन का लय हो जाने पर योगी को ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई दूसरी वस्तु दिखाई नहीं देती।

**सर्वचिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः।**
**नादमेवानुसंदध्यान्नादे चित्तं विलीयते।।४१।।**

सभी प्रकार की चिन्ताओं को छोड़कर और शरीर की सारी गतिविधियाँ त्याग कर अनाहत नाद का ही अभ्यास करना चाहिये, क्योंकि अनाहत नाद में चित्त लीन हो जाता है।

## मन पर नियन्त्रण करने में अनाहत नाद की सामर्थ्य

**मकरन्दं पिबन् भृङ्गो गन्धान् नापेक्षते यथा।**
**नादासक्तं सदा चित्तं विषयं न हि काङ्क्षते।।४२।।**

जैसे भौंरा फूलों का रस पीते हुए फूलों की गन्ध पर ध्यान नहीं देता उसी प्रकार अनाहत नाद में लगा चित्त सांसारिक भोग-विषयों की ओर नहीं दौड़ता।

**बद्धः सुनादगन्धेन सद्यः संत्यक्तचापलम्।**
**नादग्रहणतश्चित्तमन्तरङ्गभुजङ्गमः।।४३।।**
**विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्रचिन्न हि धावति।**
**मनोन्मत्तगजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।।४४।।**
**नियामन समर्थोऽयं निनादो निशिताङ्कुशः।**
**नादोऽन्तरङ्गसारङ्ग बन्धने वागुरायते।।४५।।**
**अन्तरङ्गसमुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि च।**

अनाहत नाद की सुगन्ध में डूबा हुआ चित्त जल्दी ही चंचलता छोड़ देता है। सांप की तरह अत्यन्त चंचल हमारा चित्त अनाहत नाद को सुनकर सब कुछ भूल जाता है और वह किसी भी विषय-भोग की ओर नहीं दौड़ता है।

जैसे किसी मतवाले हाथी को अंकुश से वश में किया जाता है उसी प्रकार सांसारिक भोग-ऐश्वर्यों और रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गन्ध आदि विषयों के प्रलोभनों से भरे इस संसार के बाग में स्वच्छन्द घूमने वाले हाथी जैसे मतवाले मन पर नियन्त्रण करने के लिये अनाहत नाद का अंकुश ही सबसे अच्छा उपाय है।

जैसे शिकारी हरिण को जाल में फंसाकर उसकी भागदौड़ रोक देता है उसी तरह हमारे अन्तःकरण या मन रूपी हरिण को बांधने के लिये अनाहत नाद उत्तम उपाय है। मन के समुद्र में सदा उठती रहने वाली संकल्प-विकल्पों की लहरों को रोकने में भी अनाहत नाद सर्वश्रेष्ठ साधन है।

## अनाहतनाद का स्वरूप

**ब्रह्मप्रणवसंलग्ननादो ज्योतिर्मयात्मकः।।४६।।**
**मनस्तत्र लयं याति तद् विष्णोः परमं पदम्।**

अनाहत नाद में लगा मन ज्योतिर्मय ब्रह्मप्रणव में लीन हो जाता है। यह ब्रह्मतत्त्व किसी भी प्रकार की उपाधि से रहित होने के कारण विष्णु अर्थात् विभुरूप या सर्वव्यापक परमात्मा का परम पद या श्रेष्ठ पद है।

भावार्थ यह है कि अनाहत नाद में लगा हुआ मन परमात्मा का ध्यान करते-करते परमात्मतत्त्व में ही लीन हो जाता है।

**तावदाकाशसंकल्पो यावच्छन्दः प्रवर्तते।।४७।।**

**निःशब्दं तत् परं ब्रह्म परमात्मा समीयते।**

साधक को जबतक अनाहत नाद सुनाई देता है तबतक आकाश भलीभांति प्रतीत होता है, क्योंकि शब्द, आकाश का ही गुण है अर्थात् कोई भी शब्द आकाश में ही सुनाई देता है। जब मन के साथ अनाहत नाद भी लीन हो जाता है तब मन शब्दहीन परब्रह्म पद में लीन हो जाता है अर्थात् मन की सारी वृत्तियाँ नष्ट हो जाने पर मन की अपने रूप में अर्थात् स्वरूप में स्थिति ही परब्रह्म या परमात्मा आदि शब्दों से व्यक्त की जाती है। वृत्तिहीन चित्त ही परब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

**नादो यावन्मनस्तावन्नादान्ते तु मनोन्मयी।।४८।।**

**सशब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।**

**सदा नादानुसन्धानात् संक्षीणा वासना भवेत्।।४९।।**

जबतक अनाहतनाद सुनाई देता रहता है तबतक मन की सत्ता भी बनी रहती है। अनाहत नाद सुनाई देना बन्द होने पर उन्मनी अवस्था आ जाती है अर्थात् मन का लय हो जाता है।

शब्दों और अक्षरों की भावना समाप्त हो जाने पर मन शब्दहीन परब्रह्म परम पद में लीन हो जाता है। नादानुसन्धान का अभ्यास सदैव करते रहने से मन की वासनाएँ क्षीण होने लगती हैं।

**निरञ्जने विलीयेते बिन्दुकोटिशतानि च।।५०।।**

**सर्वे तत्र लयं यान्ति ब्रह्मप्रणवनादके।**

इस स्थिति में मन और प्राणवायु शोक, मोह आदि से रहित और माया के आवरण से रहित निर्गुण चैतन्य में या निरञ्जन ब्रह्म में निश्चित रूप से लीन हो जाते हैं। प्रणवरूपी अनाहत नाद में स्थिति होने पर ब्रह्म साक्षात्कार के जितने भी उपाय है वे सब बिन्दु अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति हो

जाने पर सालोक्यादि और इन पदों को प्राप्त कराने वाले करोड़ों साधन प्रत्यक् चैतन्य परमात्मा में लीन हो जाते हैं।

## नादारूढ योगियों की विदेह मुक्ति

**सर्वावस्थाविनिर्मुक्तः सर्वचिन्ताविवर्जितः।।५१।।**
**मृतवत् तिष्ठते योगी स मुक्तो नात्र संशयः।**

उन्मनी अवस्था को प्राप्त योगी सभी अवस्थाओं से परे हो जाता है अर्थात् वह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा और मरण शरीर की इन पाँच तरह की अवस्थाओं से ऊपर उठ जाता है। ये पाँच अवस्थाएँ व्युत्थान की अवस्थाएँ होती हैं। व्युत्थान अवस्था में चित्त, निरुद्ध या एकाग्र नहीं होता। ऐसा योगी मन में उठने वाली स्मृति आदि सभी चिन्ताओं से भी छूट जाता है। उसके चित्त की सारी वृत्तियों का निरोध हो जाने के कारण वह तुरीयवस्था में पहुँच जाता है और जीवन्मुक्त हो जाता है। जैसे मरे हुए व्यक्ति को संसार से कोई सरोकार नहीं रह जाता वैसे ही जीवन्मुक्त योगी के लिये भी यह संसार नहीं रह जाता। सांसारिक-व्यवहारों की दृष्टि से वह मरे हुए पुरुष की भांति आचरण करता है।

**शंखदुन्दुभिनादं च न श्रृणोति कदाचन।।५२।।**
**काष्ठवज्जायते देहः उन्मन्यावस्थया ध्रुवम्।**

उन्मनी अवस्था को प्राप्त योगी को शंख, नगाड़े आदि किसी भी तरह का कोई शब्द सुनाई नहीं देता। उसका शरीर लकड़ी की तरह चेष्टारहित हो जाता है।

**न जानाति स शीतोष्णं न दुःखं न सुखं तथा।।५३।।**
**न मानं नावमानं च संत्यक्त्वा तु समाधिना।**

ऐसे योगी को गर्मी-सर्दी, सुख-दुख, मान-अपमान कुछ भी अनुभव नहीं होता। समाधि से बाहर आने पर भी वह मान-अपमान, आदि द्वन्द्वों से प्रभावित नहीं होता।

**अवस्थात्रयमन्वेति न चित्तं योगिनः सदा।।५४।।**
**जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्तः स्वरूपावस्थतामियात्।।५५।।**

ऐसे योगी का चित्त जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति शरीर की इन तीन अवस्थाओं के प्रति उदासीन रहता है। योगी का चित्त जाग्रत् अवस्था और नींद के वश में नहीं रहता।

जीवन्मुक्त योगी स्वरूपावस्था को प्राप्त हो जाता है। समाधिमग्न योगी संसार के विषयों को ग्रहण नहीं करता किन्तु वह साधारण मनुष्यों की तरह सोया भी नहीं रहता। उसकी इन्द्रियाँ और मन जागे हुए मनुष्यों की भांति सांसारिक विषयों को ग्रहण नहीं करतीं अतः वह जागा भी नहीं रहता।

**दृष्टिः स्थिरा यस्य विना सदृश्यं**
**वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम्।**
**चित्तंस्थिरंयस्य विनाऽवलम्बनम्**
**स ब्रह्मतारान्तरनादरूपः।।५६।।**

**इत्युपनिषत्**

जिस योगी की दृष्टि किसी दृश्य वस्तु के बिना भी स्थिर रहती है। जिसकी प्राणवायु, प्राणायाम आदि किसी भी प्रयत्न के बिना स्थिर रहती है और जिसका चित्त किसी आलम्बन या ध्येय के बिना भी स्थिर रहता है ऐसा योगी ब्रह्मतारान्तर अर्थात् तुर्यतुर्य अवस्था में नादरूप ही शेष रह जाता है अर्थात् विदेहमुक्त हो जाता है।

**।।नादबिन्दूपनिषद्समाप्त।।**

१०

# पाशुपतब्रह्मोपनिषद्

**ओ३म् भद्रं कर्णेभिः इति शान्तिः!**

**पाशुपतब्रह्मविद्यासंवेद्यं परमाक्षरम्।**
**परमानन्दसम्पूर्णं रामचन्द्रपदं भजे।।**

परमश्रेष्ठ अविनाशी परमात्मा; पाशुपत ब्रह्मविद्या से जाने जा सकते हैं। परमानन्द से परिपूर्ण रामचन्द्र के चरणों का मैं स्मरण करता हूँ।

## पूर्व काण्ड

### जगन्नियन्ता के सम्बन्ध में सात प्रश्न

**अथ ह वै स्वयंभूः ब्रह्मा प्रजाः सृजानीति कामकामो जायते कामेश्वरो वैश्रवणः।।१।।**

स्वयम्भू अर्थात् स्वयं उत्पन्न ब्रह्मा के मन में प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा हुई। ब्रह्मा ने अपने इस संकल्प के अनुसार वैश्रवण नाम का पुत्र उत्पन्न किया।

**वैश्रवणो ब्रह्मपुत्रो बालखिल्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति जगतां का विद्या, का देवता, जाग्रत्तुरीययोरस्य को देवो यानि कस्य वशानि, कालाः कियत् प्रमाणाः, कस्याज्ञयया रविचन्द्रग्रहादयो भासन्ते, कस्य महिमा गगन स्वरूप, एतदहं श्रोतुमिच्छामि नान्यो जानाति त्वं ब्रूहि ब्रह्मन्।।२।।**

ब्रह्मा के पुत्र वैश्रवण बालखिल्य ऋषि ने ब्रह्मा से पूछा– (१) सृष्टियों की विद्या क्या है? (२) देवता कौन है? (३) जाग्रत और तुरीय अवस्थाओं

का देव कौन है? (४) ये किसके वश में हैं? (५) काल की अवधि कितनी है? (६) सूर्य, चन्द्र और ग्रह-नक्षत्र किसकी आज्ञा से चमकते हैं? (७) आकाशस्वरूप महिमा किसकी है? मैं इन प्रश्नों के उत्तर आपसे सुनना चाहता हूँ क्योंकि अन्य कोई इन प्रश्नों के उत्तर नहीं जानता, इसलिये हे ब्रह्मा! आप ही बतलाइये।

## सात प्रश्नों के उत्तर

**स्वयम्भूरुवाच – कृत्स्नजगतां मातृका विद्या।।३।।**

ब्रह्मा ने बतलाया कि सभी संसारों की विद्या मातृका है। अ से लेकर क्ष तक अक्षरों वाली मातृका विद्या है। यह विद्या वैखरी वाणी या वाक् शक्ति का आधार है।

**द्वित्रिवर्णसहिता द्विवर्ण माता, त्रिवर्णसहिता। चतुर्मात्रात्मकोङ्कारो मम प्राणात्मिका देवता।।४।।अहमेव जगत् त्रयस्य एकः पतिः।।५।। मम वशानि सर्वाणि युगान्यपि च।।६।। अहोरात्रादिमत् संवर्धिताः कालाः।।७।। मम रूपा रवेस्तेजश्चन्द्रनक्षत्रग्रहतेजांसि च।।८।।गगनो मम त्रिशक्तिमायास्वरूपो नान्यो मदस्ति।।९।। तमोमायात्मको रुद्रः सात्विकमायात्मको विष्णु राजसमायात्मको ब्रह्मा। इन्द्रादयस्तामसराजसात्मिका न सात्विकः कोऽपि। अघोरः सर्व साधारणस्वरूपः।।१०।।**

देवता कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मा ने बताया कि द्विवर्णमाता अर्थात् 'अ' और 'उ' इन दो वर्णों से मापी जाने वाली 'म्' को मिलाकर तीन वर्णों के साथ ओङ्कारात्मक बन जाती है।

चार मात्राओं का यह ओङ्कार मेरा प्राणात्मक देवता है।

जाग्रत् और तुरीय का कौन देव है? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मा ने कहा जाग्रत अवस्था से लेकर तुरीयान्त तक के तीनों लोकों का मैं ही एकमात्र देव हूँ। क्योंकि मैं **सूत्रात्मा** आदिरूप से तीनों लोकों को नियमित करता हूँ। **सूत्रात्मा** का अर्थ है जिस तत्व में जड़, चेतन सभी कुछ उसी तरह पिरोया हुआ है जैसे माला के तागे या सूत्र में फूल।

**ये सब किसके वश में हैं**? ब्रह्म ने बताया कि सत्ययुग, त्रेता युग आदि और चल-अचल जगत् मेरे वश में है।

**काल की अवधि कितनी है?** क्षण, दिन, रात आदि के द्वारा मापे गये काल की अवधि कल्प के अन्त तक होती है।

**सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र किसकी आज्ञा से चमकते हैं**? ब्रह्मा ने बताया कि सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र आदि मेरे ही रूप हैं। गीता में भी कहा है–

**यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।**
**यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।**

सूर्य का जो तेज सारे विश्व को प्रकाशित कर रहा है वह और चन्द्रमा तथा अग्नि में जो तेज दीख रहा है वह मेरा ही तेजस्वी स्वरूप है।

**आकाश के रूप में किसकी महिमा है?** इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मा ने कहा कि क्रिया, ज्ञान और इच्छा के रूप में अथवा दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में मायात्मिका तीन शक्तियाँ और इन तीन शक्तियों के कार्य मेरी ही महिमा बता रहे हैं। मैं परमेश्वर हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई शक्ति आदि नहीं है।

**रुद्रादि देवताओं में कौन से प्रधान गुण हैं?** इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्मा ने कहा रुद्र सारी सृष्टि का नाश करने वाले हैं अत: वे तमोगुण प्रधान हैं। विष्णु के अतिरिक्त और कोई देवता सात्विक गुण प्रधान नहीं है। अपने शुद्ध सात्विक स्वरूप से विष्णु जगत का पालन-पोषण करते हैं।

ब्रह्मा रजस् गुण प्रधान हैं क्योंकि वे रजस् गुण की प्रधानता से इस मायामयी सृष्टि की रचना करते हैं।

इन्द्र आदि देवता तामसिक और राजसिक गुणों वाले हैं। इनमें से कोई भी देवता सात्विक गुण प्रधान नहीं है।

विष्णु अपने शुद्ध सत्वस्वरूप से सृष्टि की सभी मर्यादाओं का पालन करते हैं। उनका स्वरूप अघोर है अर्थात् डरावना नहीं है। विष्णु शान्तस्वभाव वाले हैं इसीलिये करोड़ों लोग उनकी उपासना करते हैं।

### सृष्टियज्ञ में कर्त्ता आदि का निरूपण

**समस्तयागानां रुद्रः पशुपतिः कर्ता रुद्रोयागदेवो विष्णुर-ध्वर्युर्होतेन्द्रो देवता यज्ञभुग् मानसं ब्रह्म माहेश्वरं ब्रह्म।।११।।**

पशुपति रुद्र सभी यज्ञों को कराने वाले हैं। विष्णु यज्ञों के देवता हैं, क्योंकि यज्ञ की प्रधान आहुतियों के पदार्थ विष्णु के अधीन होते हैं। विष्णु, अध्वर्यु हैं। इन्द्र, यज्ञ करने वाले या होता है। देवता, यज्ञ की आहुतियों का भोग करने वाले हैं। ब्रह्म मौन रहकर यज्ञ की सारी प्रक्रियाओं का निरीक्षण करते रहते हैं इसलिये यज्ञ के ब्रह्मा है और महेश्वर हैं।

### नादानुसन्धान यज्ञ

**मानसो हंसः सोऽहं हंस इति। तन्मय यज्ञो नादानुसन्धानो। तन्मयविकारो जीवः।।१२।।**

मानसिक यज्ञ क्या है?

हमारे श्वास-प्रश्वास के साथ 'सोऽहम्' का अजपा जप जीवन भर जारी रहता है किन्तु इस अजपा जप में 'सोऽहम्' की ध्वनि उल्टी होकर हंस-हंस हो जाती है। इस मानसिक जप में तन्मय साधक अपने मन में सदा यज्ञ करता रहता है। साधक का मन अपने श्वास-प्रश्वास पर लगा रहता है। वह सांस लेते हुए और सांस छोड़ते हुए 'सोऽहम्' या 'हंस-हंस' के अनाहत नाद के अनुसन्धान में सदा लगा रहता है। हमारी आत्मा; प्राण और मन के साथ एक होकर देखती-सुनती है इसलिये अनाहतनाद के अनुसन्धान में दत्तचित्त रहने के कारण आत्मा को तन्मय विकार वाला या 'सोऽहम्' के अनुसन्धान में लगे प्राण और मन के विकार वाला कहा गया है।

### परमात्मा का हंसस्वरूप

**परमात्मस्वरूपो हंसः। अन्तर्बहिश्चरति हंसः। अन्तर्गतोऽनवकाशान्तर्गत सुपर्णस्वरूपो हंसः।।१३।।**

परमात्मा को हंस इसीलिये कहते हैं क्योंकि जीवात्मा को अपने तत्त्वज्ञान से पता चल जाता है कि वह परमात्मा से अलग नहीं है। तत्त्वज्ञान होने से पहिले जीवात्मा भ्रम के कारण अपने को परमात्मा से अलग मानता रहता था। उसके इस भ्रम को नष्ट कर देने के कारण परमात्मा को हंस कहते हैं **''स्वतत्त्वज्ञानेन स्वातिरिक्तभ्रमं हन्ति अपह्नवं करोति इति हंसः परमात्मा भवति।''**

हमारा जीवरूपी हंस प्राण-अपान के साथ या श्वास-प्रश्वास के साथ शरीर के अन्दर-बाहर गति करता रहता है।

सभी प्राणियों के मन के अन्दर काम, क्रोध आदि की भावनाएँ रहती हैं और बाहर शब्द, स्पर्श, रूप आदि विषय। मन, इन भावनाओं और बाह्य विषयों के चिन्तन में सदा फंसा रहता है, उसे इनसे कभी फुरसत या अवकाश नहीं मिल पाता।

इन भावनाओं और बाह्य विषयरूपी सांप को ग्रस लेने के कारण हंस को सुपर्ण या गरुड़ कहते हैं।

**स्मृति के अनुसार**

**विषया बाह्यदेशस्था देहस्यान्तरहंकृतिः।**
**सर्वग्रहोपसंशान्तौ स्वयमेवावशिष्यते।।**

रूप, रस आदि विषय शरीर से बाहर रहते हैं और अहंकार की भावना मन या शरीर के अन्दर। साधक की सभी विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाने पर जीव मात्र बचा रहता है।

इस उपनिषद् में योगाभ्यास से सम्बद्ध विशेष जानकारी नहीं है। प्रश्नोत्तर के रूप में दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या ही है।

**।।पाशुपतब्रह्मोपनिषद् समाप्त।।**

# ११

# ब्रह्मविद्योपनिषद्

**ओ३म् सह नाववतु – इतिशान्तिः!**

**स्वाविद्या तत्कार्यजातं यद्विद्यापह्नवं गतम्।**
**तद् हंसविद्यानिष्पन्नं रामचन्द्रपदं भजे।।**

अपने अज्ञान से उत्पन्न कार्यों को जिस विद्या से नष्ट कर दिया जाता है, ऐसी हंसविद्या में निष्णात मैं रामचन्द्र जी के चरणों का ध्यान करता हूँ।

**ब्रह्मविद्या के रहस्य भरे अर्थ वाले प्रणव ब्रह्म**

**अथ ब्रह्मविद्योपनिषदुच्यते:–**

**प्रसादाद् ब्रह्मणस्तस्य विष्णोरद्भुतकर्मणः।**
**रहस्यं ब्रह्मविद्याया ध्रुवाग्निः संप्रचक्षते।।१।।**

ब्रह्मविद्या उपनिषद; कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें प्रणव हंसविद्या से जानने योग्य ब्रह्मानुभूति का वर्णन किया गया है।

सम्पूर्ण सृष्टि के रचयिता और पालन करने वाले ब्रह्मा तथा आश्चर्यजनक कार्य करने वाले विष्णु की कृपा से ब्रह्मविद्या के रहस्य परमात्मा का वर्णन किया जा रहा है। हमारे अज्ञान से उत्पन्न कार्यों को भस्म कर देने के कारण परमात्मा को ध्रुवाग्नि कहा गया है।

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः।**
**शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कालत्रयं तथा।।२।।**

ब्रह्मविदों ने जिस ब्रह्म को एक अक्षर स्वरूप ओ३म् बताया है। मैं उस ब्रह्म के शरीर या स्वरूप, स्थान और तीन कालों का वर्णन करूँगा।

**तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः।**
**तिस्रो मात्रार्धमात्रा च त्र्यक्षरस्य शिवस्य तु।।३।।**

तीन देव, तीन लोक, तीन वेद और तीन अग्नियाँ हैं। तीन अक्षर वाले और कल्याणकारी ओ३म् में साढ़े तीन मात्राएँ हैं।

**प्रणव की चार मात्राएँ**

**ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च।**
**अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः।।४।।**

ब्रह्मज्ञानियों ने ओ३म् के 'अ' अक्षर का शरीर ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथिवी और ब्रह्म बतलाया है।

**यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च।**
**विष्णुश्च भगवान् देव उकारः परिकीर्तितः।।५।।**

ओ३म् के 'उ' अक्षर में यजुर्वेद, अन्तरिक्ष, दक्षिणाग्नि और विष्णु भगवान् समाविष्ट हैं।

**सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च।**
**ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः।।६।।**

ओ३म् के 'म्' अक्षर में द्युलोक, आहवनीय अग्नि और परम देव ईश्वर समाविष्ट हैं या समाये हुए हैं।

**सूर्यमण्डलमध्येऽथ ह्यकारः शंखमध्यगः।**
**उकारश्चन्द्रसंकाशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः।।७।।**

सूर्य मण्डल के बीच में शंख के अन्दर 'अ' प्रतिष्ठित है। चन्द्र जैसी प्रभा से युक्त 'उ' इस 'अ' के बीच में समाया हुआ है।

**मकारस्त्वग्निसंकाशो विधूमो विद्युतोपमः।**
**तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याग्निरूपिणः।।८।।**

ओ३म् का 'म्' अक्षर अग्नि के समान प्रदीप्त, धुएँ से रहित और बिजली की चमक जैसा है। ओ३म् की अ, उ, म् ये तीन मात्राएँ सूर्य, चन्द्र और अग्नि स्वरूप हैं।

**शिखा तु दीपसंकाशा तस्मिन्नुपरि वर्तते।**
**अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता।।९।।**

जैसे दीपक की दीपशिखा ऊपर की ओर होती है वैसे ही प्रणव के ऊपर आधी मात्रा है।

## सुषुम्ना योग से सूर्य नाड़ी का भेदन

**पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखा सा दृश्यते परा।**
**सा नाडी सूर्यसंकाशा सूर्यं भित्त्वा तथा परा।।१०।।**
**द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीं भित्त्वा च मूर्धनि।**
**वरदा सर्वभूतानां सर्वं व्याप्येव तिष्ठति।।११।।**

सुषुम्ना नाड़ी कमलनाल के तन्तु जैसी अत्यन्त सूक्ष्म और सूर्य के समान तेज युक्त है। सुषुम्ना; शरीर में फैली ७२ हजार नस-नाड़ियों का जाल पार करके और सूर्यमण्डल को भेदकर के ब्रह्मरन्ध्र में या सहस्रारचक्र में प्रवेश करती है।

इस संक्षिप्त वर्णन से कुण्डलिनी योग क्या है यह स्पष्ट नहीं होता। हमारे शरीर में तीन मुख्य नाड़ियाँ इडा, पिंगला और सुषुम्ना हैं। ये तीनों मूलाधार या गुदा से लेकर ब्रह्मरन्ध्र या मस्तक के सहस्रारचक्र तक फैली हुई हैं। मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी शक्ति सोई रहती है। प्राणायाम, शक्तिचालन आदि योग की क्रियाओं के निरन्तर और दीर्घकालीन अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति को सुषुम्ना के रास्ते सहस्रार तक पहुँचाया जाता है।

## प्रणव नाद के लय से मोक्ष प्राप्ति

**कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयते शान्तये।**
**ओङ्कारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता।।१२।।**

जैसे कांसे से बने घण्टे की आवाज की झंकार धीरे-धीरे शान्त हो जाती है वैसे ही शान्ति चाहने वाले साधक को ओंकार का उच्चारण दीर्घकाल तक करना चाहिये।

ओंकार का उच्चारण करने से सारे शरीर की ज्ञानवहा सूक्ष्म नाड़ियों

में और मस्तिष्क में कम्पन होता है। यह कम्पन साधक को परम शान्ति प्रदान करता है। ओंकार का एकतान उच्चारण करने के लिये श्वास भरते समय मन ही मन 'ओ' का उच्चारण करते रहना चाहिये और प्रश्वास या श्वास निकालते हुए 'म्' का उच्चारण करते रहना चाहिये। इस विधि से ओ३म् का मानसिक जप निरन्तर और यथाशक्ति दीर्घकाल तक करने से अपूर्व शान्ति मिलती है।

**यस्मिन्स लीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते।**
**धियं हि लीयते ब्रह्म सोऽमृतत्वाय कल्पते।।१३।।**

ओंकार का मानसिक जप करते हुए जिस साधक की बुद्धि ओंकार के नाद में या प्रणवनाद में लीन हो जाती है। वह साधक ब्रह्म साक्षात्कार के द्वारा अमरत्व की दिशा में बढ़ता है।

**जीव का स्वरूप निरूपण**

**वायुस्तेजस्तथाकाशस्त्रिविधो जीवसंज्ञकः।**
**स जीवः प्राण इत्युक्तो बालाग्रशतकल्पितः।।१४।।**

जीव का स्वरूप वायुरूप, तेजस्वरूप और आकाश जैसा इन तीन प्रकारों का है। यह जीव ही प्राण कहलाता है और यह सिर के बाल के अगले सिरे से भी सौ गुना सूक्ष्म है।

**नाभिस्थाने स्थितं विश्वं शुद्धतत्त्वं सुनिर्मलम्।**
**आदित्यमिव दीप्यन्तं रश्मिभिश्चाखिलं शिवम्।।१५।।**

यह जीवात्मा हमारी नाभि में है। वैश्वानर का अंश अर्थात् व्यक्ति रूप में प्रकट जीव विशुद्ध और अत्यन्त निर्मल है। कल्याणमय यह जीवात्मा चारों ओर से किरणों से घिरे हुए सूर्य की भांति दैदीप्यमान है।

**बन्धन और मुक्ति का कारण**

**सकारं च हकारं च जीवो जपति सर्वदा।**
**नाभिदेशाद् विनिष्क्रान्तं विषयव्याप्ति विवर्जितम्।।१६।।**

यह जीवात्मा अपने श्वास-प्रश्वास के साथ सोऽहम् जाप सदा करता रहता है। हम श्वास लेते हुए स और श्वास छोड़ते समय ह का जप अर्थात्

'सोऽहम्' का जप दिन-रात करते रहते हैं। जप के कारण जीवात्मा देहान्त के समय नाभि से निकलते हुए विषय भोगों की वासना से रहित हो जाता है।

**तेनेदं निष्कलं विद्यात् क्षीरात् सर्पिर्यथा तथा।**
**कारणेनात्मना युक्तः प्राणायामैश्च पञ्चभिः।।१७।।**

जैसे दूध से निकला घी; अपने कारण दूध से अलग दिखता है किन्तु घी अपनी कारणावस्था में दूध ही होता है। इसी प्रकार जीव अपने कारण आत्मा से संयुक्त रहता है। परन्तु अज्ञान के कारण इस सम्बन्ध को नहीं जानता। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन पाँच साधनों के द्वारा जीवात्मा निष्कल अर्थात् सांसारिक विषयों और कामनाओं से रहित होकर अपने कारण परमात्मा में लीन हो जाता है।

**चतुष्कला समायुक्तो भ्राम्यते च हृदि स्थितः।**
**गोलकस्तु यदा देहे क्षीरदण्डेन वाऽहतः।।१८।।**

विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय इन चार अवस्थाओं वाला जीवात्मा हृदय में विराजमान है। वह जीवन मरण के बन्धन में तब तक घूमता रहता है जब तक वह गोलक में अर्थात् मूलाधार के त्रिकोण पर स्थित सुषुम्ना में प्रविष्ट नहीं हो जाता। जीवात्मा को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराने के लिये कुण्डलिनी शक्ति का और प्राणायाम का सहारा उसी प्रकार लेना पड़ता है जैसे दही में से घी निकालने के लिये मथानी का।

**एतस्मिन् वसते शीघ्रमविश्रामं महाखगः।**
**यावन्निश्वसितो जीवस्तावन्निष्कलतां गतः।।१९।।**
**नभस्थं निष्कलं ध्यात्वा मुच्यते भवबन्धनात्।**
**अनाहतध्वनियुतं हंसं यो वेद हृद्गतम्।।२०।।**
**स्वप्रकाशचिदानन्दं स हंस इति गीयते।**

इस शरीर में महाखग अर्थात् हंस या प्राणों का आधार जीवात्मा तब तक आराम किये बिना निरन्तर चलता रहता है जब तक यह जीवात्मा प्राणायाम आदि के अभ्यास से चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण नहीं पा लेता और निर्विकल्प समाधि में मग्न होकर शुद्ध स्वरूप नहीं बन जाता।

योगी अपने हृदयाकाश में विराजमान शुद्ध परमात्मस्वरूप का ध्यान

करके सांसारिक बन्धनों से छूट जाता है। जो साधक अपने हृदय में अनाहत नाद से संयुक्त जीवात्मा को जान लेता है वह स्वयम्-प्रकाशित चैतन्य और आनन्दस्वरूप परमात्मा में लीन हो जाता है।

**हंसविद्या से परमेश्वर प्राप्ति**

**रेचकं पूरकं मुक्त्वा कुम्भकेन स्थितः सुधीः।।२१।।**
**नाभिकन्दे समं कृत्वा प्राणापानौ समाहितः।**
**मस्तकस्थामृतास्वादं पीत्वा ध्यानेन सादरम्।।२२।।**

बुद्धिमान साधक रेचक और पूरक प्राणायामों को त्याग कर केवल कुम्भक प्राणायाम करता है और ध्यान लगाकर नाभिकन्द में प्राण और अपान वायु को मिला देता है। वह खेचरी मुद्रा के द्वारा सहस्रार की पीयूष ग्रन्थि से झरने वाले अमृत का आस्वादन श्रद्धा और भक्तिपूर्वक करता है।

**दीपाकारं महादेवं ज्वलन्तं नाभि मध्यमे।**
**अभिषिच्यामृतेनैव हंस हंसेति यो जपेत्।।२३।।**

वह नाभि के बीच में दीपक की शिखा जैसे दैदीप्यमान परमेश्वर का सहस्रार से उत्पन्न अमृत रस से अभिषेक करके सोऽहम् का जप करता है।

**जरामरणरोगादि न तस्य भुवि विद्यते।**
**एवं दिने दिने कुर्यादणिमादि विभूतये।।२४।।**

ऐसे योगी को बुढ़ापा, मृत्यु और रोग आदि नहीं सताते। वह अपनी निरन्तर साधना से अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त करता रहता है।

**ईश्वरत्वमवाप्नोति सदाऽभ्यासरतः पुमान्।**
**बहवो नैकमार्गेण प्राप्ता नित्यत्वमागताः।।२५।।**
**हंसविद्यामृते लोके नास्ति नित्यत्वसाधनम्।**

इस विधि से निरन्तर अभ्यास करता हुआ योगी ईश्वर जैसा बन जाता है। अनेक साधक अलग-अलग उपायों से मोक्ष प्राप्त करते हैं। किन्तु जन्म मरण के चक्र से छूटने के लिये हंस विद्या के अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है।

## हंस विद्या के गुरु की पूजा विधि

**यो ददाति महाविद्यां हंसाख्यां पावनीं पराम्।।२६।।**
**तस्य दास्यं सदा कुर्यात् प्रज्ञया परया सह।**
**शुभं वाऽशुभमन्यद्वा यदुक्तं गुरुणा भुवि।।२७।।**
**तत्कुर्यादविचारेण शिष्यः सन्तोष संयुतः।**
**हंस विद्यामिमां लब्ध्वा गुरुशुश्रूषया नरः।।२८।।**
**आत्मानमात्मना साक्षात् ब्रह्म बुद्ध्वा सुनिश्चलम्।**
**देहजात्यादिसम्बन्धान् वर्णाश्रमसमन्वितान्।।२९।।**
**वेदशास्त्राणि चान्यानि पादपांसुमिव त्यजेत्।**
**गुरुभक्तिं सदा कुर्यात् श्रेयसे भूयसे नरः।।३०।।**
**गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्यइत्यब्रवीच्छ्रुतिः ।।३१।।**

जो सद्गुरु परम पवित्र हंस विद्या सिखाता है शिष्य को ऐसे गुरु की अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दासता स्वीकार करनी चाहिये। सद्गुरु शिष्य से बुरा-भला जो कोई भी काम करने को कहे शिष्य को सोच-विचार किये बिना वह काम कर देना चाहिये और ऐसा करके सन्तोष अनुभव करना चाहिये। गुरुसेवा से इस हंसविद्या को प्राप्त करके शिष्य निश्चित रूप से जान लेता है कि मैं परमात्मा से अभिन्न स्वयं ब्रह्म हूँ। यह ज्ञान प्राप्त करके योगी अपने शरीर के जाति आदि के और वर्णों तथा आश्रमों के सम्बन्धों को त्याग देता है। वह वेद-शास्त्रों आदि को भी पैर की धूलि की तरह त्याग देता है। योगी को अपने कल्याण और आनन्द के लिये सद्गुरु की सेवा सदा करनी चाहिये। श्रुति के अनुसार सद्गुरु की सेवा सदा करनी चाहिये क्योंकि सद्गुरु साक्षात् परमेश्वर हैं।

## विद्वानों द्वारा आत्मा की एकता का ज्ञान

**श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेव तत् संशयो नात्र ततः समस्तम्।**
**श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणं भवेदनर्थाय विना प्रमाणम्।।३२।।**

वेद शास्त्रों में जो कहा गया है वह परमकल्याणकारी उपदेश है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये। जो बात वेदशास्त्रों के विरुद्ध कही

जाती है उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता। प्रमाण रहित विचार अनिष्टकारी होते हैं।

**देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः।**
**आप्तोपदेशगम्योऽसौ सर्वतः किमवस्थितः।।३३।।**

परमात्मा सर्वव्यापक होने पर भी हमारे शरीर में आत्मारूप में स्थिर रहकर सकल अर्थात् अवयव युक्त बन जाता है। देह छोड़ देने पर आत्मा और परमात्मा दोनों ही निष्कल अर्थात् अंगों से रहित शुद्धस्वरूप और निर्मल होते हैं। अपने सद्गुरु से ही सर्वव्यापक परमात्मा और आत्मा का ज्ञान हो सकता है अन्यथा नहीं।

**हंस हंसेति यो ब्रूयात् हंसो ब्रह्मा हरिः शिवः।**
**गुरुवक्त्रात्तु लभ्येत प्रत्यक्षं सर्वतोमुखम्।।३४।।**

शिष्य को सद्गुरु के मुख से ही सर्वव्यापी ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। सद्गुरु सदा हरिस्मरण में लीन रहते हैं। सोऽहम् के जप में ब्रह्मा, विष्णु, महेश सभी का ध्यान हो जाता है।

**तिलेषु यथा तैलं पुष्पे गन्ध इवास्थितः।**
**पुरुषस्य शरीरेऽस्मिन् स बाह्याभ्यन्तरे स्थितः।।३५।।**

जैसे तिलों में तेल और फूलों में सुगन्ध व्याप्त रहती है वैसे ही मनुष्य देह में परमात्मा अन्दर-बाहर सर्वत्र विराजमान हैं।

### सकल निष्कल देवता का विवेक ज्ञान

**उल्काहस्तो यथा कश्चित् द्रव्यमालोक्य तां त्यजेत्।**
**ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य पश्चाज्ज्ञानं परित्यजेत्।।३६।।**

जैसे कोई व्यक्ति अंधेरे में दीपक से अपनी वस्तु पाकर दीपक को अलग रख देता है वैसे ही अपने ज्ञान से जानने योग्य परमात्मतत्त्व को जानकर ज्ञान को त्याग देना चाहिये।

**पुष्पवत् सकलं विद्यात् गन्धस्तस्य तु निष्कलः।**
**वृक्षस्तु सकलं विद्यात् छाया तस्य तु निष्कला।।३७।।**

सकल या सगुण ब्रह्म फूल की तरह स्थूल स्वरूप है किन्तु निष्कल ब्रह्म या निर्गुण ब्रह्म फूल की सुगन्ध की भांति सूक्ष्म स्वरूप है। वृक्ष को यदि सगुण ब्रह्म के रूप में मानें तो उसकी छाया निर्गुण ब्रह्म है।

**निष्कलः सकलो भावः सर्वत्रैव व्यवस्थितः।**
**उपायः सकलस्तद्वत् उपेयश्चैव निष्कलः।।३८।।**

इस सृष्टि में सकल और निष्कलस्वरूप ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है। ब्रह्म प्राप्ति का उपाय सकल है और उपेय अर्थात् ब्रह्म निष्कल।

**सकले सकलो भावो निष्कले निष्कलस्तथा।**
**एकमात्रो द्विमात्रश्च त्रिमात्रश्चैव भेदतः।।३९।।**

सगुण ब्रह्म का ध्यान करने पर मन में सगुण ब्रह्म की भावना उदित हो जाती है। निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करने पर निष्कल ब्रह्म का भाव आ जाता है। सगुण ब्रह्म मात्राओं या अक्षरों की दृष्टि से एकमात्रा अर्थात् 'अ' वाला, दो मात्राओं वाला या 'अ और उ' वाला तथा तीन मात्राओं वाला अर्थात् अ, उ, म् अक्षरों वाला ओ३म् होता है।

**अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं परात्परम्।**
**पञ्चधा पञ्चदैवत्यं सकलं परिपठ्यते।।४०।।**

प्रणव या ओऽम् की आधी मात्रा अर्थात् म् का हलन्त सर्वश्रेष्ठ है।

माण्डूक्य उपनिषद् में ओंकार का वर्णन, जीवात्मा और परमात्मा की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन चार अवस्थाओं के अनुसार किया गया है। ओ३म् शब्द अ, उ, म् इन तीन मात्राओं या अक्षरों से बना है। ओ३म् की प्रथम मात्रा 'अ' जीवात्मा और परमात्मा की जाग्रत अवस्था की प्रतिनिधि है। ओ३म् की दूसरी मात्रा 'उ' जीवात्मा और परमात्मा की स्वप्नावस्था की प्रतिनिधि है। 'म' अक्षर ओ३म् की तीसरी मात्रा है। यह जीवात्मा और परमात्मा की सुषुप्ति अवस्था को बताती है। 'म्' स्पर्श व्यंजनों का अन्तिम अक्षर है उसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था प्रकृति की अन्तिम अवस्था है। मात्रा रहित ओ३म् या म् का हलन्त जीवात्मा और परमात्मा की तुरीय या चौथी अवस्था को बताती है। इस अवस्था में जीवात्मा का शरीर या हमारा शरीर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं से निकल कर अपने चतुर्थ या तुरीय रूप में आ जाता है।

ब्रह्म भी प्रकृति की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं से निकल कर तुरीयावस्था में आ जाता है। अ, उ, म इन तीन जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं की प्रतिनिधि तीन मात्राओं से पृथक् ओ३म् का अमात्र रूप भी है। वह व्यवहार में नहीं आता। वह शिव है। वह अद्वैत है। वहाँ संसार का प्रपंच या विस्तार शान्त हो जाता है। ओ३म् का यह अमात्र रूप, जीवात्मा और परमात्मा का तात्त्विक रूप है। इस रूप में ओ३म् मानो आत्मा ही है। जो ओ३म् के इस रूप को जानता है वह बाहर न भटककर आत्मज्ञान द्वारा अन्तरात्मा में प्रवेश कर जाता है। इसीलिये यहाँ पर अर्धमात्रा को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है और इससे भी परे सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म का स्थान है। हमारे शरीर में ब्रह्म पाँच स्थानों में पाँच देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित है।

**ब्रह्मणो हृदयस्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः।**
**तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटस्थो महेश्वरः।।४१।।**

**नासाग्रे अच्युतं विद्यात् तस्यान्ते तु परं पदम्।**
**परत्वात्तु परं नास्तीत्येवं शास्त्रस्य निर्णयः।।४२।।**

हमारे हृदय में ब्रह्मा, कण्ठ में विष्णु, तालु के बीच में रुद्र, मस्तक में महेश्वर और नाक के अगले सिरे पर अच्युत या सदाशिव विराजमान हैं। ब्रह्म के इन पाँच दैवीय स्वरूपों से परे परब्रह्म का परम पद ही है। ब्रह्म के इस सर्वश्रेष्ठ स्वरूप से परे उनका कोई अन्य स्वरूप नहीं है, शास्त्रों का यही निर्णय है।

**देहातीतं तु तं विद्यान्नासाग्रे द्वादशाङ्गुलम्।**
**तदन्तं तं विजानीयात्तत्रस्थो व्यापयेत् प्रभुः।।४३।।**

परमात्मा या ब्रह्म हमारे शरीरों से परे सर्वव्यापक स्वरूप में विद्यमान है। प्राणायाम करते हुए हमारा प्रश्वास नासाग्र से आगे बारह अंगुलि की दूरी तक जाकर वायुमण्डल में मिल जाता है या लय को प्राप्त होता है। इस सम्पूर्ण वायुमण्डल में ब्रह्म अपने विश्व, विराट् आदि स्वरूपों में सर्वत्र व्याप्त है।

**मनोऽप्यन्यत्र निक्षिप्तं चक्षुरन्यत्र पातितम्।**
**तथापि योगिनां योगो ह्यविच्छिन्नः प्रवर्तते।।४४।।**

यद्यपि योगी का मन कहीं और लगा होता है और आँखें कुछ और वस्तु देख रही होती हैं फिर भी योगी का योगाभ्यास बिना रुके निरन्तर चलता रहता है।

## परम गोपनीय योग विद्या

**एतत्तु परमं गुह्यमेतत्तु परमं शुभम्।**
**नातः परतरं किंचिन्नातः परतरं शुभम्।।४५।।**

यह योगविद्या अत्यन्त गोपनीय है। योगविद्या अत्यधिक कल्याणकारिणी है। इस योग विद्या से बढ़कर कोई और विद्या नहीं है। योग विद्या से बढ़कर कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है।

**शुद्धज्ञानामृतं प्राप्य परमाक्षर निर्णयम्।**
**गुह्याद् गुह्यतमं गोप्यं ग्रहणीयं प्रयत्नतः।।४६।।**

योग विद्या से शुद्ध ज्ञान अमृत प्राप्त करके और इस विद्या के द्वारा परात्पर ब्रह्म का स्वरूप जान करके इस परम गोपनीय योग विद्या को गुप्त ही रखना चाहिये।

**नापुत्राय प्रदातव्यं नाशिष्याय कदाचन।**
**गुरुदेवाय भक्ताय नित्यं भक्तिपराय च।।४७।।**
**प्रदातव्यमिदं शास्त्रं नेतरेभ्यः प्रदापयेत्।**
**दाताऽस्य नरकं याति सिध्यते न कदाचन।।४८।।**

यह योग विद्या पुत्र रहित व्यक्ति को और ऐसे मनुष्य को नहीं बतानी चाहये जो शिष्य बनने योग्य नहीं हो। अपने सद्गुरु की और परमात्मा की सदा भक्ति करने वाले शिष्य को ही यह विद्या सिखानी चाहिये। यदि कोई योगी किसी अयोग्य शिष्य को योग सिखायेगा तो वह नरक में जायेगा और उसकी योगसिद्धि नहीं होगी।

## योगविद्या के ज्ञान से पाप-पुण्य का नाश

**गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।**
**यत्र तत्र स्थितो ज्ञानी परमाक्षरवित् सदा।।४९।।**
**विषयी विषयासक्तो याति देहान्तरे शुभम्।**
**ज्ञानादेवास्य शास्त्रस्य सर्वावस्थोऽपि मानवः।।५०।।**
**ब्रह्महत्या अश्वमेधाद्यैः पुण्य पापैर्न लिप्यते।**

कोई व्यक्ति गृहस्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी या सन्यासी कोई भी क्यों

न हो यदि वह अविनाशी परमात्मा के स्वरूप को जानता है तो उस पर ब्रह्महत्या के पाप का या अश्वमेध यज्ञ करने के पुण्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भोग-ऐश्वर्यों में फंसा हुआ व्यक्ति यदि योग शास्त्र को जान लेता है तो उसे अगले जन्म में शुभ योनि मिलती है।

**तीन प्रकार के आचार्य**

**चोदको बोधकश्चैव मोक्षदश्च परः स्मृतः।।५१।।**
**इत्येषां त्रिविधो ज्ञेयं आचार्यस्तु महीतले।**
**चोदको दर्शयेन्मार्गं बोधकः स्थानमादिशेत्।।५२।।**
**मोक्षदस्तु परं तत्त्वं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते।**

इस पृथ्वी पर **चोदक**, **बोधक** और **मोक्षद** इन तीन प्रकारों के गुरु हैं। चोदक आचार्य अपने शिष्य को बताता है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म का एक अंश हूँ। वह वेदान्तशास्त्र का यह ज्ञान पाने की प्रेरणा देता है। चोदक गुरु, शिष्य का मार्गदर्शन करता है। बोधक आचार्य, अबोध शिष्य को उपदेश देता है कि तू ही उस ब्रह्म का अंश है। वह अपने शिष्य को ब्रह्मप्राप्ति का उपाय बतलाता है। मोक्षद आचार्य, शिष्य को मोक्ष का मार्ग बतलाता है। वह शिष्य को बतलाता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् का कोई पदार्थ और हमारे शरीर आदि भी नित्य नहीं हैं वास्तविक नहीं। हम अपने अज्ञान के कारण सारे संसार को नित्य और वास्तविक मान रहे हैं। यह अज्ञान या भ्रम माया के कारण है। मोक्षद आचार्य अपने शिष्य का यह भ्रम दूर कर देता है और ब्रह्म का शुद्धस्वरूप दिखाता है जिसे जानकर शिष्य मोक्षमार्ग पर बढ़ने लगता है।

**प्रणव और हंस जप द्वारा प्रत्यक्ष यज्ञ**

**प्रत्यक्षयजनं देहे संक्षेपाच्छृणु गौतम।।५३।।**
**तेनेष्ट्वा स नरो याति शाश्वतं पदमव्ययम्।**

हे गौतम! मैं शरीर के प्रत्यक्ष यज्ञ को संक्षेप से बताता हूँ। प्रत्यक्षयज्ञ के द्वारा मनुष्य शाश्वत और अव्यय पद प्राप्त करता है।

**स्वयमेव तु संपश्येद्देहे बिन्दुं च निष्कलम्।।५४।।**

**अयने द्वे च विषुवे सदा पश्यति मार्गवित्।**
**कृत्वा यामं पुरा वत्स रेचक पूरक कुम्भकान्।।५५।।**
**पूर्वं चोभयमुच्चार्य अर्चयेत्तु यथाक्रमम्।**
**नमस्कारेण योगेन मुद्रयाऽऽरभ्यचार्चयेत्।।५६।।**
**सूर्यस्य ग्रहणं वत्स प्रत्यक्षयजनं स्मृतम्।**

जब योगी का प्राण पिङ्गला नाड़ी से कुण्डलिनी में चला जाता है तब सूर्यग्रहण हो जाता है। प्राणवायु को कुण्डलिनी में प्रविष्ट कर लेने वाला योगी ब्रह्मपद या मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। प्राणवायु के कुण्डलिनी में प्रवेश को ही प्रत्यक्षयजन या प्रत्यक्ष यज्ञ कहते हैं।

हमारे शरीर में इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ प्राणवायु की मुख्य नाड़ियाँ हैं। इन नाड़ियों के देवता क्रमश: चन्द्र, सूर्य और अग्नि हैं। नाक के बांये सुर की नाड़ी इडा नाड़ी में चन्द्रमा की तरह शीतल प्राणवायु चलता है। दायें सुर की नाड़ी पिंगला में सूर्य की भांति गरम प्राणवायु चलता है। सुषुम्ना में अग्नि जैसा तीव्र प्राणवायु होता है। सामान्य अवस्था में मनुष्य देह की नाक के दोनों सुरों में से एक ही स्वर से श्वास-प्रश्वास होता है। दो घण्टे चौबीस मिनट बाद श्वास-प्रश्वास दूसरे स्वर से होने लगता है। किन्तु दोनों स्वरों के एक साथ चलने पर प्राणवायु सुषुम्ना में चलने लगता है। इस अवस्था में कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना में प्रवेश करती है। सुषुम्ना में कुण्डलिनी के प्रविष्ट हो जाने पर योगी सिद्ध हो जाता है। सुषुम्ना के मार्ग से प्राण त्यागने वाले योगी का पुनर्जन्म नहीं होता।

जब प्राणवायु इडा नाड़ी से पिंगला नाड़ी में चलने लगता है तब शरीर में दक्षिणायन होता है। पिंगला नाड़ी से इडा नाड़ी में श्वास चलना शुरू होने पर उत्तरायण होता है। जब प्राणवायु मूलाधार चक्र में और सिर के सहस्रार चक्र में प्रविष्ट होता है तब शरीर में दो विषुव होते हैं। सूर्य के भूमध्यरेखा पार करने को विषुव कहते हैं। तब दिन-रात बराबर होते हैं। वर्ष में सूर्य दो बार २२ सितम्बर को और २० मार्च को भूमध्यरेखा पार करता है तब क्रमशः शरदीय विषुव और वसन्तकालीन विषुव होते हैं। इन दोनों अयनों या मार्गों को और दोनों विषुवों को और प्राण के मार्ग को जानने

वाला योगी अपने शरीर में बिन्दु अर्थात् शब्द तन्मात्र को तथा ब्रह्म के सगुण और निर्गुण स्वरूप को सदा देखता है। योग शास्त्र में बिन्दु का सामान्य अर्थ वीर्य किया जाता है। किन्तु वीर्य के अतिरिक्त बिन्दु का अर्थ शब्द का विस्तारहीन मानसिक भाव मात्र भी है। शब्द में चित्त स्थिर होने पर दैशिक विस्तारज्ञान का लोप हो जाता है। वही बिन्दु है। शब्द वस्तुत: क्रिया की धारा है। अनाहत नाद घना हो जाने पर बिन्दु बन जाता है—

**'नाद एव घनीभूत: क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्।'**

योगाभ्यास के प्रारम्भ में रेचक, पूरक और कुम्भक सहित या केवल कुम्भक के साथ प्राणायाम प्रतिदिन करना चाहिये। ओ३म् और हंस अर्थात् सोऽहं इन दो मन्त्रों का अर्थ सहित जाप करके तथा शाम्भवी मुद्रा या खेचरी मुद्रा लगाकर आत्मतत्त्व की उपासना करनी चाहिये।

प्रत्यक्षयजन या प्रत्यक्ष यज्ञ की यही विधि है।

### हंसयोग से प्राप्त ज्ञान द्वारा सायुज्य प्राप्ति

**ज्ञानात्सायुज्यमेवोक्तं तोये तोयं यथा तथा।।५७।।**
**एते गुणा: प्रवर्तन्ते योगमार्गकृतश्रमै:।**
**तस्माद्योगं समादाय सर्वदु:खबहिष्कृत:।।५८।।**
**योगध्यानं सदा कृत्वा ज्ञानं तन्मयतां व्रजेत्।**
**ज्ञानात् स्वरूपं परमं हंसमन्त्रं समुच्चरेत्।।५९।।**

ब्रह्मज्ञान से प्रत्यक् चैतन्य या ब्रह्म के साथ जीवात्मा का सायुज्य अर्थात् एकत्व उसी प्रकार हो जाता है जैसे जल में जल मिलकर एक हो जाता है। इस स्थिति में योगी में जीवन्मुक्त योगी के गुण आ जाते हैं। योगाभ्यास से मनुष्य के सारे दुख दूर हो जाते हैं। दुखों से छूटकर योगी धारणा, ध्यान, समाधि के द्वारा या योगध्यान के अभ्यास से उत्पन्न ब्रह्मज्ञान को पा लेता है और ब्रह्ममात्र हो जाता है। जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त योगी को बाह्यजगत् में और अन्त:करण में जो कुछ दिखता है वह उसे परमात्मा का स्वरूप ही दिखता है।

## हंस की प्राप्ति का स्थान

**प्राणिनां देहमध्ये तु स्थितो हंसः सदाऽच्युतः।**
**हंस एव परं सत्यं हंस एव तु सत्यकम्।।६०।।**
**हंस एव परं वाक्यं हंस एव तु वैदिकम्।**
**हंस एव परो रुद्रो हंस एव परात्परम्।।६१।।**
**सर्व देवस्य मध्यस्थो हंस एव महेश्वरः।**
**पृथिव्यादि शिवान्तं तु अकाराद्याश्च वर्णकाः।।६२।।**
**कूटान्ता हंस एव स्यान्मातृकेति व्यवस्थिताः।**

समाधि का नियमित अभ्यास करने से पता चलता है कि हंस या जीवात्मा हमारे हृदय में ही विराजमान है। जीवात्मा; स्वरूप से डिगता नहीं इसीलिये यह अच्युत कहलाता है। यह हंस या जीवात्मा अथवा परमात्मा ही परम सत्य है। हंस मन्त्र या 'सोऽहम्' का जप श्रेष्ठ वाक्य है। हंस ही श्रेष्ठ रुद्र देवता और परात्पर ब्रह्म है। सभी देवताओं के हृदयों में विराजमान हंस ही महेश्वर है। पृथिवी से लेकर शिव आदि देवताओं तक हंस ही व्याप्त है। अ, इ, उ, क, ख, ग आदि मात्राओं और वर्णों से लेकर कूटान्त तक अर्थात् अन्तिम अक्षर क्ष तक हंस ही व्याप्त है। प्रणव या ओंकार का नाद जीवसृष्टि में उत्पन्न होता है। ओंकार से ५२ मातृकाएँ या वर्णमाला उत्पन्न हुई। इनमें से ५० अक्षरमय है। ५१ वीं प्रकाशस्वरूप है और ५२वीं प्रकाश का प्रवाह है। तन्त्रशास्त्र के अनुसार ५२वीं मात्रा को सत्रहवीं जीवन कला कहते हैं। ये ५० अक्षरमय मातृकाएँ (वर्ण) अनुलोम और विलोम रूप से १०० होती हैं। ये ही सौ कुण्डल हैं। इन कुण्डलों को धारण किये हुए मातृकामयी कुण्डलिनी है। इस कुण्डलिनी शक्ति से चैतन्यमय जीव देह इन्द्रियादि युक्त नाना जीवनरूप धारण कर प्राणशक्ति के साथ स्थूल शरीर अर्थात् अन्नमय कोष का स्वामी होता है। इस जीव को जीवत्व की चेतना; सहस्रार चक्र से अनाहत चक्र अर्थात् हृदय चक्र में आने पर होती है।

## हंस मन्त्र के जप के साथ समाधि का अभ्यास

**मातृकारहितं मन्त्रमादिश्यन्ते न कुत्रचित्।।६३।।**

मातृका या वर्णमाला अथवा अक्षरों से रहित मन्त्र का जप नहीं किया जाता।

**हंसज्योतिरनूपम्यं मध्ये देवं व्यवस्थितम्।**
**दक्षिणमुखमाश्रित्य ज्ञानमुद्रां प्रकल्पयेत्।।६४।।**
**सदा समाधिं कुर्वीत हंसमन्त्रमनुस्मरन्।**
**निर्मलस्फटिकाकारं दिव्यरूपमनूपमम्।।६५।।**
**मध्यदेशे परं हंसं ज्ञानमुद्राऽऽत्मरूपकम्।**

मातृका अर्थात् वर्णमाला और मन्त्र के बीच एकमात्र हंसज्योति को जानकर 'सोऽहम्' मन्त्र जपते हुए समाधि लगानी चाहिये। हंस ज्योति की उपमा किसी भी ज्योति से नहीं दी जा सकती। हंस ज्योति परमात्मा में विराजमान है। ये देव या परमात्मा निर्मल और स्फटिक की भांति शुद्ध हैं। परमात्मा की किसी से उपमा नहीं दी जा सकती। दक्षिण दिशा की ओर मुख करके ज्ञानमुद्रा लगाकर हंसमन्त्र या 'सोऽहम्' का जाप करते हुए समाधि का अभ्यास नित्य करना चाहिये।

## हंस के स्थान का निरूपण

**प्राणापानसमानाश्चोदानव्याना च वायवः।।६६।।**
**पञ्च कर्मेन्द्रियैर्युक्ताः क्रियाशक्ति बलोद्यताः।**
**नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः।।६७।।**
**पञ्चज्ञानेन्द्रियैर्युक्ताः ज्ञानशक्तिबलोद्यताः।**
**पावकः शक्तिमध्ये तु नाभिचक्रे रविः स्थितः।।६८।।**
**बन्धमुद्रा कृता येन नासाग्रे तु स्वलोचने।**

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पाँच प्राणवायु बल और क्रियाशक्ति से युक्त हैं तथा हाथ-पैर आदि पाँच कर्मेन्द्रियों से संयुक्त हैं। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये पाँच प्राणवायु बल और ज्ञानशक्ति से युक्त हैं तथा आँख, नाक, कान आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों से संयुक्त हैं। मूलाधार चक्र में अग्नि और नाभिचक्र या मणिपूर चक्र में सूर्य स्थित है। अग्नि और सूर्य की इन दो शक्तियों के बीच में हंस का स्थान है।

जो योगी नासाग्र पर और अपने नेत्रों पर ध्यान केन्द्रित कर तीनों बन्ध और खेचरी मुद्रा लगता है वह नाभिचक्र और आँखों में स्थित हंस का ध्यान करता है।

**हंसयोग के अभ्यास का क्रम**

**अकारे वह्निरित्याहुरुकारे हृदि संस्थितः।।६९।।**
**मकारे च भ्रुवो र्मध्ये प्राणशक्त्या प्रबोधयेत्।**
**ब्रह्मग्रन्थिरकारे च विष्णुग्रन्थिर्हृदि स्थितः।।७०।।**
**रुद्रग्रन्थि भ्रुवोर्मध्ये भिद्यतेऽक्षरवायुना।**

ओ३म् के अकार में या मूलाधार में वैश्वानर अग्नि है। ओ३म् का 'उ' अक्षर हृदय का या अनाहत चक्र का तथा 'म' अक्षर भौहों के बीच आज्ञाचक्र का द्योतक है। प्रणव के अ, उ, म इन तीन अक्षरों में ब्रह्म; विश्व, विराट् आदि रूपों में विराजमान है। ब्रह्म को प्रणव जप के द्वारा अर्थात् ओंकार जप की प्राणों से युक्त शक्ति से अपने हृदय में जगाना चाहिये। ओ३म् के 'अ' में ब्रह्मग्रन्थि है। विष्णुग्रन्थि हृदय में है और रुद्रग्रन्थि भौहों के बीच में है। ये तीनों ग्रन्थियाँ हंसज्ञान की वायु से अर्थात् ओंकार जप की ध्वनि से खुल जाती हैं।

**कण्ठं संकुच्य नाड्यादौ स्तम्भिते येन शक्तितः।।७२।।**
**रसना पीड्यमानेयं षोडशीवोर्ध्वगामिनी।**
**त्रिकूटं त्रिविधं चैव गोलाखं निखरं तथा।।७३।।**
**त्रिशङ्खं वज्रमोंकारमूर्ध्वनालं भ्रुवोर्मुखम्।**
**कुण्डलीं चालयन् प्राणान् भेदयन् शशिमण्डलम्।।७४।।**

जो योगी सिद्धासन में बैठकर जालन्धर बन्ध लगाता है। मूलाधार चक्र में सुषुम्ना नाड़ी के सिरे पर सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर अपनी आँखों और प्राणों को लक्ष्य पर केन्द्रित कर लेता है। सोलह वर्ष की छरहरी तरुणी युवती की तरह जीभ पतली करके खेचरी मुद्रा के द्वारा जीभ को कपाल के छेद में ले जाकर भ्रूमध्य के चिदाकाश पर लगा देता है। इस चिदाकाश में ब्रह्म विराजमान है। योगी यहाँ पर ब्रह्म का साक्षात्कार कर

लेता है। भ्रूमध्य के चिदाकाश में मूलाधार, विशुद्ध और आज्ञा ये तीन चक्र तथा इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ मिलती हैं। अत: भ्रूमध्य को त्रिकूट कहते हैं। चिदाकाश से ही पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत प्रकट होते हैं और सृष्टि की प्रलयावस्था में इसी चिदाकाश में लीन हो जाते हैं अत: यह चिदाकाश गोलाख कहलाता है। यह चिदाकाश निर्मल अर्थात् निखर है।

यह भ्रूमध्य त्रिशंख है अर्थात् अपनी इच्छा, अनिच्छा और दूसरे की इच्छा से उत्पन्न सुख, दुख और उदासीनता की अन्त:करण की भावनाओं को भ्रूमध्य का चिदाकाश नष्ट कर देता है। भ्रूमध्य का चिदाकाश वज्र है अर्थात् साधारण व्यक्ति चिदाकाश में प्रवेश नहीं कर सकता किन्तु योगी ओंकार की अ, उ, म् इन तीन मात्राओं के अन्तिम स्थान भ्रूमध्य के आज्ञाचक्र को खोलकर या ऊर्ध्वमुख करके आज्ञाचक्र के बन्द कमल को खिला देता है। शक्तिचालन मुद्रा और प्राणायाम आदि उपायों से कुण्डलिनी शक्ति को भ्रूमध्य में लाकर योगी ज्योतिर्लिंग या ज्ञानदीप के दर्शन कर लेता है।

**साधयन् वज्रकुम्भानि नव द्वाराणि बन्धयेत्।**
**सुमनः पवनारूढः सरागो निर्गुणस्तथा।।७५।।**
**ब्रह्मस्थाने तु नादः स्यात् शंकिन्यमृतवर्षिणी।**
**षट्चक्रमण्डलोद्धारं ज्ञानदीपं प्रकाशयेत्।।७६।।**

सूर्य भेदी, उज्जायी, शीतली आदि प्राणायाम वज्रकुम्भक प्राणायाम कहलाते हैं, क्योंकि इन प्राणायामों के नियमित अभ्यास से रुद्र, विष्णु और ब्रह्म ये तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं या आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के सन्देह नष्ट हो जाते हैं। योगी प्राणायाम के द्वारा आँख, कान, नाक आदि शरीर के नौ द्वारों या इन्द्रियों को वश में कर लेता है। इस प्रकार ध्यानमग्न योगी के शरीर में अनाहत नाद प्रकट होने लगता है। यह नाद सुमन है या मन को अच्छा लगता है। पवनारूढ़ है, कुम्भक प्राणायाम से प्रकट होता है। सराग है अर्थात् मन इसमें लग जाता है तथा निर्गुण है अर्थात् सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों से रहित है।

अनाहत नाद ब्रह्मस्थान में अर्थात् हृदयपुण्डरीक में या ब्रह्मरन्ध्र में प्रकट होता है। सहस्त्रार से टपकने वाला अमृत रस या चान्द्रीकला अमृत बरसाने वाली या सुधा बरसाने वाली शंकिनी है। योगी खेचरी मुद्रा से ब्रह्मरन्ध्र के रास्ते भ्रूमध्य में पहुँची हुई जीभ से इस अमृतरस का पान करता है। वह शरीर के मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा इन छह चक्रों के कमलों को विकसित करके या कुण्डलिनी शक्ति से भेदकर परमात्मस्वरूप ज्ञानदीप को अपने हृदय में प्रकाशित कर देता है।

**सर्वभूतस्थितं देव सर्वेशं नित्यमर्चयेत्।**
**आत्मरूपं तमालोक्य ज्ञानरूपं निरामयम्।।७७।।**

**दृश्यन्तं दिव्यरूपेण सर्वव्यापी निरञ्जनः।**
**हंस हंस वदेत् वाक्यं प्राणिनां देहमाश्रितः।**
**सप्राणापानयोर्ग्रन्थिरजपेत्यभिधीयते।।७८।।**

सभी प्राणियों के शरीरों में स्थित, सभी प्राणियों के प्रभु परमात्म देव की स्तुति सदा करनी चाहिये। परमात्मा हमारी आत्मा की भांति चैतन्य हैं, ज्ञान के भण्डार हैं और दोषरहित हैं। परमात्मा के इस दिव्यस्वरूप के दर्शन करने चाहियें। उनका यह स्वरूप सर्वव्यापक और निरञ्जन अर्थात् शोक-मोह, राग-द्वेष आदि से रहित है। परमात्मा सभी प्राणियों के देह में विराजमान हैं।

हम श्वास लेते हुए 'स' और श्वास छोड़ते हुए 'ह' शब्द का या 'हंस-हंस' का अजपा जप निरन्तर करते रहते हैं। हंस-हंस की यह ध्वनि अपने आप होती रहती है। प्राण और अपान वायु के साथ होने वाली हंस-हंस की ध्वनि अजपाजप कहलाती है।

**सहस्त्रमेकं द्विअयुतं षट् शतं चैव सर्वदा।**
**उच्चरन् पतितो हंसः सोऽहमित्यभिधीयते।।७९।।**

दिन-रात के २४ घण्टों में हम श्वास-प्रश्वास के साथ २१६०० बार अजपा जप करते हैं। हंस-हंस का जप ही 'सोऽहम्' का जाप कहलाता है।

**पूर्वभागे ह्यधोलिङ्गं शिखिन्यां चैव पश्चिमम्।**
**ज्योतिर्लिङ्गं भ्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत् सदा यतिः।।८०।।**

सुषुम्ना के पूर्वभाग में अर्थात् मूलाधार चक्र में अधोलिंग अर्थात् ब्रह्म के विराट् तत्व का ध्यान करना चाहिये। हृदय के अनाहत चक्र में स्थित अग्निशिखा के पश्चिम में प्रत्यगात्मस्वरूप लिंग का "अहं ब्रह्मास्मि" मन्त्र का उच्चारण करके ध्यान करना चाहिये। दोनों भौंहों के बीच आज्ञाचक्र में ज्योतिर्लिंग स्वरूप निर्गुण ब्रह्म का नित्य ध्यान करना चाहिये अर्थात् मैं ब्रह्म का ही अंश मात्र हूँ इस तथ्य का अनुसन्धान करना चाहिये।

**हंसयोगी द्वारा आत्मस्वरूप का अनुसन्धान**

**अच्युतोऽहमचिन्त्योऽहमतर्क्योऽहमजोऽस्म्यहम्।**
**अप्राणोऽहमकायोऽहमनङ्गोऽस्म्यभयोऽस्म्यहम्।।८१।।**

मेरा स्वभाव गिरने वाला नहीं है अतः मैं अच्युत हूँ। चित्तवृत्तियाँ नष्ट हो जाने के कारण मैं अचिन्त्य हूँ। मेरा वर्णन नहीं किया जा सकता अतः अतर्क्य हूँ। मेरा जन्म-मरण नहीं होता अतः अज हूँ। मेरा स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर नहीं है अतः मैं प्राण, शरीर और अंगों से रहित हूँ। मुझ में द्वैत की भावना नहीं रही है अतः मुझे दूसरे से कोई डर नहीं सताता।

**अशब्दोऽहमरूपोऽहमस्पर्शोऽस्म्यहमद्वयः।**
**अरसोऽहमगन्धोऽहमनादिरमृतोस्म्यहम्।।८२।।**

पाँच महाभूतों से रहित होने के कारण मैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से रहित हूँ। मैं अद्वय अर्थात्, द्वैत की भावना से रहित, अमर और अनादि हूँ।

**अक्षयोऽहमलिङ्गोऽहमजरोऽस्म्यकलोऽस्म्यहम्।**
**अप्राणोऽहममूकोऽहमचिन्त्योऽस्म्यकृतोऽस्म्यहम्।।८३।।**

मेरा स्थूल शरीर न होने के कारण मैं अनश्वर हूँ। मेरी कोई पहिचान या चिह्न नहीं है। मैं कभी जीर्ण या बूढ़ा नहीं होता। मैं प्राण रहित हूँ। मैं गूंगा नहीं हूँ। मेरे बारे में कोई सोच-विचार नहीं कर सकता। मैं शरीर की प्राण आदि से लेकर नाम तक की सोलह कलाओं से रहित हूँ। मैं पाप, झूठ और अशुभ से रहित हूँ।

**अन्तर्याम्यहमग्राह्योऽनिर्देश्योऽहमलक्षणः।**
**अगोत्रोऽहमगात्रोऽहमचक्षुष्कोऽस्म्यवागहम्।।८४।।**

मैं सबके अन्तःकरण में हूँ। मुझे कोई इन्द्रियों से पकड़ नहीं सकता। मुझे कोई नहीं बता सकता। मेरा कोई लक्षण नहीं है। मेरा कोई कुल-गोत्र, शरीर, आँख या वाणी भी नहीं है।

**अद्रेश्योऽहमवर्णोऽहमखण्डोऽस्म्यहमद्भुतः।**
**अश्रुतोऽहमदृष्टोऽहमन्वेष्टव्योऽमरोऽस्म्यहम्।।८५।।**

मुझे आँख, कान आदि इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। मेरा ब्रह्मचर्य आदि कोई आश्रम और ब्राह्मण आदि कोई वर्ण नहीं है। मेरे टुकड़े नहीं किये जा सकते क्योंकि मैं पूर्ण हूँ। निर्गुण होने के कारण मैं विलक्षण हूँ। मुझे कोई देख या सुन नहीं सकता। मुझे ढूँढना पड़ता है। मैं अमर हूँ। मोक्ष चाहने वाले वेदान्त शास्त्र के द्वारा मुझे ढूँढते हैं।

**अवायुरप्यनाकाशोऽतेजसोऽव्यभिचार्यहम्।**
**अमतोऽहमजातोऽहमतिसूक्ष्मोऽविकार्यहम्।।८६।।**

मैं वायु, आकाश और तेज भी नहीं हूँ। मुझ में कोई परिवर्तन नहीं आता। मैं सदा एकरूप हूँ। मुझे मन से नहीं जाना जा सकता! मेरा जन्म कभी नहीं होता। मैं अत्यन्त सूक्ष्म और विकार रहित हूँ।

**अरजस्कोऽ तमस्कोऽहमसत्त्वो स्म्यगुणोऽस्म्यहम्।**
**अमायोऽनुभवात्माऽहमनन्योऽविषयोऽस्म्यहम्।।८७।।**

मैं सत्त्व, रजस् और तमस इन तीनों गुणों से रहित हूँ। निर्गुण हूँ। मैं माया से रहित हूँ। मुझे अपने अन्तःकरण में अनुभव किया जा सकता है। मैं अद्वितीय हूँ। मुझमें कोई विषय-विकार नहीं है।

**अद्वैतोऽहमपूर्णोऽहमबाह्योऽहमनन्तरः।**
**अश्रोत्रोऽहमदीर्घोऽहमव्यक्तोऽ हमनामयः।।८८।।**

निर्गुण होने के कारण मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है। जीवात्मा; परमात्मा का एक अंश है अतः अपूर्ण है। तीनों शरीरों से रहित होने के कारण मुझमें अन्दर-बाहर की भावना नहीं है। मेरे कान आदि इन्द्रियाँ नहीं

हैं। मेरा छोटा-बड़ा कोई स्वरूप नहीं है। मैं अव्यक्त हूँ और मुझमें कोई रोग नहीं है क्योंकि मेरा शरीर अस्थि-मांस का नहीं है।

**अद्वयानन्दविज्ञानघनोऽस्म्यहमविक्रियः।**
**अनिच्छोऽहमलेपोऽहमकर्तास्म्यहमद्वयः।।८९।।**

मेरे समान आनन्द और उत्कृष्ट ज्ञान स्वरूप कोई नहीं है। पूर्णानन्दस्वरूप होने के कारण मुझमें कोई कामना नहीं है। मैं निर्लेप हूँ। मैं कुछ नहीं करता। मैं अद्वितीय हूँ अर्थात् मेरे जैसा कोई दूसरा नहीं है। मुझमें कोई विकार या दोष नहीं है।

**अविद्याकार्यहीनोऽहमवाङ्मनसगोचरः।**
**अनल्पोऽहमशोकोऽहमविकल्पोऽस्म्यविज्वलन्।।९०।।**

मैं अविद्या या अज्ञान से उत्पन्न किसी कार्य से रहित हूँ। मन का विषय न होने के कारण मुझे वाणी से नहीं बताया जा सकता। सर्वव्यापी होने से मुझमें कोई कमी नहीं है। मैं शोकरहित हूँ क्योंकि मुझमें अहंकार की भावना नहीं है। तरह-तरह के विचारों से रहित होने के कारण मुझमें संकल्प-विकल्प की भावना नहीं है। अग्नि तत्व न होने के कारण मैं अविज्वलन् हूँ।

**आदिमध्यान्तहीनोऽहमाकाशसदृशोऽस्म्यहम्।**
**आत्मचैतन्यरूपोऽहमानन्दचिद्घनः।।९१।।**

मेरी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय नहीं होता अतः मैं आदि, मध्य और अन्तहीन हूँ। चिदाकाशमय होने के कारण मैं विस्तृत हूँ। मैं स्वयं चैतन्यस्वरूप हूँ और आनन्द तथा चैतन्य से परिपूर्ण हूँ।

**आनन्दामृतरूपोऽहमात्मसंस्थोऽहमन्तरः।**
**आत्मकामोऽहमाकाशात्परमात्मेश्वरोऽस्म्यहम्।।९२।।**

मैं आनन्द और अमृत स्वरूप हूँ। मैं अपनी महिमा में स्थित हूँ। मैं सबसे अलग हूँ। मैं आनन्द से परिपूर्ण हूँ। मैं आकाश से भी अधिक विस्तार वाला परमात्मेश्वर हूँ।

**ईशानोऽस्म्यहमीड्योऽहमुत्तमपूरुषः।**
**उत्कृष्टोऽहमुपद्रष्टा अहमुत्तरतरोऽस्म्यहम्।।९३।।**

मैं ईश्वर हूँ। मेरी स्तुति की जाती है। क्षर और अक्षर के स्वरूप से रहित होने के कारण मैं पुरुषोत्तम हूँ। **"उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः"** गीता। मैं सबसे उत्कृष्ट हूँ। साक्षिस्वरूप होने से मैं उपद्रष्टा हूँ। मैं सर्वश्रेष्ठ होने के कारण उत्तरतर हूँ।

**केवलोऽहम् कविः कर्माध्यक्षोऽहम् करणाधिपः।**
**गुहाशयोऽहम् गोप्ताहम् चक्षुषश्चक्षुरस्म्यहम्।।९४।।**

प्रकृति से परे होने के कारण मैं केवल हूँ। क्रान्तदर्शी या दूरदर्शी होने के कारण मैं कवि हूँ। अच्छे-बुरे कर्मों का फल देने वाला होने के कारण कर्माध्यक्ष हूँ। मैं इन्द्रियों का स्वामी हूँ। प्राणियों की हृदयरूपी गुफा में बैठा हूँ। प्राणियों की और सृष्टि की रक्षा तथा पालन-पोषण करने वाला हूँ। आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियों को देखने, सुनने की शक्ति देने वाला हूँ।

**चिदानन्दोऽस्म्यहं चेता चिद्घनश्चिन्मयोऽस्म्यहम्।**
**ज्योतिर्मयोऽस्म्यहं ज्यायाञ्ज्योतिषां ज्योतिरस्म्यहम्।।९५।।**

मैं चैतन्य और आनन्दस्वरूप हूँ। मैं अचेतन या जड़ पदार्थों में चेतनाशक्ति डालने वाला अर्थात् चेता हूँ। चैतन्यपूर्ण हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ। मेरा स्वरूप ज्योतिर्मय है। मैं सृष्टि की पृथिवी आदि वस्तुओं से कहीं विराट् या बड़ा हूँ। मैं सृष्टि के सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह-नक्षत्रों को उनकी ज्योति या प्रकाश देने वाला हूँ।

**तमसः साक्ष्यहं तुर्यतुर्योऽहं तमसः परः।**
**दिव्यो देवोऽस्मि दुर्दर्शो दृष्टाध्यायो ध्रुवोऽस्म्यहम्।।९६।।**

मैं सृष्टि की प्रलयावस्था या अन्धकारपूर्ण अवस्था को देखने वाला हूँ। मेरा स्वरूप तुरीयातीत अवस्था और अविद्या, अज्ञान से परे है। मैं दिव्य और देवत्व की भावना वाला हूँ। मेरा स्वरूप बड़ी कठिनाई से देखा जा सकता है। मेरी सत्ता शाश्वत या त्रिकाल में सदा रहती है अतः ध्रुव हूँ।

**नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽस्मि निरञ्जनः।**
**निर्मलो निर्विकल्पोऽहं निराख्यातोऽस्मि निश्चलः।।९७।।**

मैं नित्य हूँ। मैं अनिन्दनीय हूँ। मैं निष्क्रिय अर्थात् कूटस्थ या अपनी

महिमा से प्रतिष्ठित हूँ, निर्लेप हूँ, निर्मल हूँ, तरह-तरह के विचारों से रहित हूँ। मेरे स्वरूप का वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता। मैं निश्चल अर्थात् अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में सदा विराजमान हूँ।

**निर्विकारो नित्यपूतो निर्गुणो निस्पृहोऽस्म्यहम्।**
**निरिन्द्रियो नियन्ताऽहं निरपेक्षोऽस्मि निष्कलः।।९८।।**

मैं विकार रहित, नित्य पवित्र, सत्व, रजस्, तमस् प्रकृति के इन तीन गुणों से रहित, किसी भी कामना से रहित हूँ। मेरा शरीर न होने के कारण मेरी इन्द्रियाँ भी नहीं हैं। मैं इस सृष्टि को नियन्त्रित करता हूँ। मुझे किसी से कोई आशा-अपेक्षा नहीं है। मैं निष्कल अर्थात् अंगों से रहित हूँ।

**पुरुषः परमात्माऽहं पुराणः परमोऽस्म्यहम्।**
**परावरोऽस्म्यहं प्राज्ञः प्रपञ्चोपशमोऽस्म्यहम्।।९९।।**

मैं परम पुरुष परमात्मा हूँ। मैं पुराण अर्थात् नित्य सनातन श्रेष्ठ आत्मा हूँ। मैं परमश्रेष्ठ हूँ। मैं उत्तम ज्ञान से युक्त हूँ। मुझमें इस त्रिगुणात्मक जगत् का लय हो जाता है।

**परामृतोऽस्म्यहं पूर्णः प्रभुरस्मि पुरातनः।**
**पूर्णानन्दैकबोधोऽहं प्रत्यगेकरसोऽस्म्यहम्।।१००।।**

मैं उत्कृष्ट अमृत से परिपूर्ण हूँ। मैं पुराण पुरुष इस सृष्टि का स्वामी हूँ। मुझमें एकमात्र पूर्णानन्द की अनुभूति होती है। मैं हृदय में निवास करने वाला परमात्मा हूँ। मैं सदा एक रूप में ही रहता हूँ।

**प्रज्ञातोऽहं प्रशान्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः।**
**एकधा चिन्त्यमानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः।।१०१।।**

मुझे सभी प्राणी भलीभांति जानते हैं। मैं प्रशान्त स्वरूप, प्रकाशमान परमेश्वर हूँ। मेरा चिन्तन निर्गुण रूप में भलीभांति किया जा सकता है। मेरा स्वरूप न तो द्वैत है और न ही अद्वैत अतः विलक्षण हूँ।

**बुद्धोऽहं भूतपालोऽहं भारूपो भगवानहम्।**
**महादेवो महानस्मि महाज्ञेयो महेश्वरः।।१०२।।**

मैं अपने ज्ञान से बुद्ध हूँ। मैं प्राणियों का पालन-पोषण करता हूँ। मैं

तेजस्वी स्वरूप ऐश्वर्यशाली परमात्मा हूँ। मैं सभी देवों से श्रेष्ठ और महान हूँ। मैं महानतम ज्ञान से परिपूर्ण महेश्वर हूँ।

**विमुक्तोऽहं विभुरहं वरेण्यो व्यापकोस्म्यहम्।**
**वैश्वानरो वासुदेवो विश्वतश्चक्षुरस्म्यहम्।।१०३।।**

मैं सभी कामनाओं और बन्धनों से मुक्त हूँ। सर्वत्र व्यापक, वरणीय, और सभी स्थानों पर उपस्थित रहता हूँ। मैं सभी तरह के मनुष्यों को अनेक प्रकार से चलाता हूँ। वासुदेव हूँ। मेरी आँखें चारों ओर देखती रहती हैं।

**विश्वाधिकोऽहं विशदो विष्णुर्विश्वकृदस्म्यहम्।**
**शुद्धोऽस्मि शुक्रः शान्तोऽस्मि शाश्वतोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम्।।१०४।।**

मैं इस सम्पूर्ण सृष्टि से भी कहीं अधिक महान हूँ। मैं विस्तारहीन हूँ। प्राणियों का पालन-पोषण करने वाला और सृष्टि का रचयिता हूँ। मैं शुद्ध, तेजस्वी, शान्त, शाश्वत, सदा स्थायी और कल्याण स्वरूप हूँ।

**सर्वभूतान्तरात्माऽहमहमस्मि सनातनः।**
**अहं सकृद्विभातोऽस्मि स्वे महिम्नि सदा स्थितः।।१०५।।**

मैं सनातन परमेश्वर सभी प्राणियों के अन्तःकरण में विराजमान हूँ। मैं सदैव प्रकाशमान हूँ। मैं अपनी महिमा में सदा वर्तमान रहता हूँ।

**सर्वान्तरः सर्वज्योतिः सर्वाधिपतिरस्म्यहम्।**
**सर्वभूताधिवासोऽहं सर्वव्यापी स्वराडहम्।।१०६।।**

मैं सभी प्राणियों में समाया हुआ हूँ। सभी पदार्थों को प्रकाशित करता हूँ। मैं सभी का स्वामी और सब प्राणियों का निवास स्थान हूँ। मैं सर्वव्यापी हूँ और अपने प्रकाश से प्रकाशित हूँ।

**समस्तसाक्षी सर्वात्मा सर्वभूतगुहाशयः।**
**सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः।।१०७।।**

मैं सारी सृष्टि को देखने वाला हूँ। सभी का आत्मा हूँ और सभी प्राणियों की हृदय-गुफा में बैठा हुआ हूँ। मुझमें सारी इन्द्रियाँ दीखती हैं किन्तु सभी इन्द्रियों से रहित हूँ।

**स्थानत्रयव्यतीतोऽहं सर्वानुग्राहकोऽस्म्यहम्।**
**सच्चिदानन्दपूर्णात्मा सर्व प्रेमास्पदोऽस्म्यहम्।।१०८।।**

मैं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन स्थानों या अवस्थाओं से परे हूँ। सब पर कृपा करता हूँ। सभी का प्रेमपात्र हूँ और सत्, चित्, आनन्द से परिपूर्ण स्वभाव वाला हूँ।

**सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्घनः।**
**सत्त्वस्वरूपसन्मात्रसिद्ध सर्वात्मकोऽस्म्यहम्।।१०९।।**

मैं केवल सत्, चित् और आनन्द स्वरूप हूँ। स्वयं ज्योति हूँ। चैतन्यपूर्ण हूँ। सत्त्वगुण स्वरूप, सत्तामात्र, सिद्ध और सभी की आत्मा वाला हूँ।

**सर्वाधिष्ठानसन्मात्रः स्वात्मबन्धहरोऽस्म्यहम्।**
**सर्वग्रासोऽस्म्यहं सर्वद्रष्टा सर्वानुभूरहम्।।११०।।**

मैं सभी प्राणियों का आश्रय स्थल हूँ। सत्ता मात्र हूँ। मैं अपनी आत्मा स्वरूप प्राणियों के बन्धन काटने वाला हूँ। प्रलय काल में सारी सृष्टि को मैं ग्रस लेता हूँ या अपने में लीन कर लेता हूँ। मैं सभी प्राणियों के भले-बुरे कामों को देखता रहता हूँ। सभी प्राणी मेरी सत्ता की अनुभूति कभी न कभी अवश्य करते हैं।

**।।एवं यो वेद तत्त्वेन स वै पुरुष उच्यत इत्युपनिषत्।।**

जो साधक परमात्मा के इस स्वरूप को वस्तुतः जान लेता है वह परमात्म स्वरूप ही कहलाता है।

**।।ओ३म् सहनाववतु इति शान्तिः।।**

**।।ब्रह्मविद्योपनिषद्समाप्त ।।**

# १२

# मण्डलब्राह्मणोपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में सूक्ष्म अष्टांग योग से सम्बद्ध तीन लक्ष्यों, पाँच आकाशों और दो तारकों आदि का वर्णन है। इस उपनिषद् में सम्पूर्ण राजयोग पर भी प्रकाश डाला गया है।

## प्रथम ब्राह्मण

### प्रथम खण्ड

**बाह्यान्तस्तारकाकारं व्योमपञ्चकविग्रहम्।**
**राजयोगैकसंसिद्धं रामचन्द्रमुपास्महे।।**

**आत्मतत्वजिज्ञासा**

**याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोकं जगाम। तमादित्यं नत्वा भो भगवन्नादित्य आत्मतत्त्वमनुब्रूहीति।।१।।**

महामुनि याज्ञवल्क्य ने आदित्यलोक जाकर भगवान आदित्य को प्रणाम करके उनसे कहा कि आप आत्मतत्त्व का उपदेश दीजिये।

**सूक्ष्माष्टांगयोग प्रतिज्ञा**

**स होवाच नारायणः। ज्ञानसहित यमाद्यष्टाङ्गयोग उच्यते।।२।।**

सूर्यमण्डल में रहने वाले नारायण ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान सहित यम आदि वाले अष्टांगयोग को बताता हूँ।

### चार यम

**शीतोष्णाहारनिद्राविजयः सर्वदा शान्तिर्निश्चलत्वं विषयेन्द्रियनिग्रहश्चैते यमाः।।३।।**

अपने शरीर को अपना समझने की भावना को त्याग देने से गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास और निद्रा पर नियन्त्रण कर लिया जाता है। परायी वस्तु मेरी नहीं है इस भावना के द्वारा मन सदा शान्त रहता है। अपने मन के अनुकूल लक्ष्य पर मन एकाग्र करने से मन निश्चल हो जाता है। आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियों के विषय रूप, शब्द, गन्ध आदि के बारे में न सोचने से इन्द्रिय निग्रह होता है।

### नौ नियम

**गुरुभक्तिः सत्यमार्गानुरक्तिः सुखागतवस्त्वनुभवश्च तद् वस्त्वनुभवेन तुष्टिर्निःसङ्गता एकान्तवासो मनोनिवृत्तिः फलानभिलाषो वैराग्यभावश्च नियमाः।।४।।**

अपना अज्ञान दूर करने वाले गुरु का गुणगान करना गुरुभक्ति होती है। सत्स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कराने वाला मार्ग अपनाना सत्यमार्ग की अनुरक्ति कहलाती है। अत्यधिक सुखस्वरूप ब्रह्म का साक्षात् कराने वाले शास्त्रों और आचार्यों की कृपा से ब्रह्म की अनुभूति सुखागत वस्तु का अनुभव होता है। सुखस्वरूप ब्रह्म की अनुभूति से तुष्टि या मन की प्रसन्नता होती है। सांसारिक विषय भोगों के अनुभव से मन वस्तुतः प्रसन्न नहीं होता। मन की इस प्रसन्नता के प्रति उदासीनता का भाव निस्सङ्गता है। आदि, मध्य और एकान्त इन तीन भेदों के अनुसार रहना एकान्तवास माना जाता है। सुनसान स्थान में प्रयत्नपूर्वक मन पर नियन्त्रण करने का अभ्यास–आदि एकान्त होता है। सुनसान में या चहल-पहल वाली जगह में मन पर नियन्त्रण करना मध्य-एकान्त होता है। किसी भी स्थान पर प्रयत्न किये बिना मन को नियन्त्रित रखना अन्त-एकान्त होता है। साधक जिस किसी भी स्थान पर अपने मन पर नियन्त्रण कर सके उसे वहीं रहना चाहिये। आत्मा के अतिरिक्त मन आदि कुछ नहीं है ऐसा दृढ़निश्चय करना मनोवृत्ति कही जाती है। स्वयं किये गये जप-तप आदि कर्मों के फलों के प्रति कोई इच्छा न होना कर्मफल अनभिलाषा कहलाती है। अपने आत्मतत्व के

सिवाय सांसारिक विषयों के प्रति मल-मूत्र की तरह इच्छा न होना वैराग्य कहलाता है।

**आसन आदि छह योगांग**

**सुखासनवृत्तिश्चिरवासश्चैवमासननियमो भवति।।५।।**

जिस किसी तरह बैठने से मन और हृदय में ब्रह्म की अखण्डाकार वृत्ति या भावना उत्पन्न हो वह सुखासनवृत्ति कहलाती है। जिस स्थान पर बिना किसी प्रयत्न के बहुत समय तक रहा जा सके वह चिरवास कहलाता है।

**प्राणायाम का लक्षण**

**पूरककुम्भकरेचकैः षोडशचतुष्षष्टिद्वात्रिंशत् संख्यया यथाक्रमं प्राणायामः।।६।।**

यदि प्राणायाम में पूरक सोलह मात्राओं से किया जाता है तो इससे चौगुनी मात्रा चौंसठ मात्राओं तक कुम्भक करना चाहिये और बत्तीस मात्राओं से रेचक।

**प्रत्याहार**

**विषयेभ्यः इन्द्रियार्थेभ्यो मनोनिरोधनं प्रत्याहारः।।७।।**

आँख, कान, नाक आदि के रूप, शब्द, गन्ध आदि विषयों की ओर मन को न जाने देना प्रत्याहार कहलाता है।

**धारणा**

**विषयव्यावर्तनपूर्वकं चैतन्ये चेतः स्थापनं धारणं भवति।।८।।**

सांसारिक भोग विषयों से मन को हटाकर चैतन्य सत्ता ब्रह्म में मन को लगाना धारणा कहलाती है।

**ध्यान**

**सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता ध्यानम्।।९।।**

जैसे घड़ा, सकोरा आदि मिट्टी के पदार्थ टूट जाने पर इनके अन्दर का आकाश बाहर के आकाश में मिलकर एक हो जाता है वैसे ही सभी प्राणियों

की आत्मा एक जैसी ही है एकता की इस भावना पर मन लगाये रखना ध्यान कहलाता है।

**समाधि**

**ध्यानविस्मृतिः समाधिः।।१०।।**

ध्यान करते-करते जब ध्याता, ध्यान और ध्येय की इस त्रिपुटी का भान न रहे और मन में केवल ध्येय वस्तु की भावना बनी रहे तब मन की एकाग्र अवस्था समाधि होती है।

**सूक्ष्म अष्टांगयोग ज्ञान का फल**

**एवं सूक्ष्माङ्गानि। य एवं वेद स मुक्तिभाग्भवति।।११।।**

सूक्ष्म अष्टांगयोग के इन आठों अंगों को जान लेने वाला मुक्ति का पात्र बन जाता है।

**।। प्रथम खण्ड समाप्त।।**

## द्वितीय खण्ड

**शरीर के पाँच दोषों की समाप्ति**

**देहस्य पञ्चदोषा भवन्ति कामक्रोधनिश्वास भय निद्राः।।१।।**

हमारे शरीर में काम, क्रोध, निश्वास, भय और नींद ये पाँच दोष हैं।

**तन्निरासस्तु निःसंकल्पक्षमालघ्वाहाराप्रमादता तत्त्वसेवनम्।।२।।**

इन दोषों को मन में काम भावना को रोककर कामवासना को, क्षमा करके क्रोध को, अल्पाहार से और प्राणायाम के द्वारा श्वास रोककर श्वास-प्रश्वास को, द्वैतबुद्धि के त्याग से भय को और परमार्थ तत्व में मन लगाने से नींद को दूर किया जा सकता है। यहाँ पर नींद से अभिप्राय अज्ञान की नींद है। इन पाँच दोषों को दूर करने से मुक्ति की भावना बढ़ती है।

**तारक ध्यान का फ़ल**

**निद्रा भयसरीसृपं हिंसादितरङ्गं तृष्णावर्तं दारपङ्कम् संसारवार्धिं तर्तुं**

**सूक्ष्ममार्गमवलम्ब्य सत्त्वादिगुणानतिक्रम्य तारकमवलोकयेत्।।३।। भ्रूमध्ये सच्चिदानन्दतेजःकूटरूपं तारकं ब्रह्म।।४।।**

इस दुस्तर संसार सागर को पार करने के लिये तीन लक्ष्यों वाला तारक ध्यान है। इस संसार सागर में नींद और भय; सांप हैं। हिंसा आदि बुरे काम लहरें हैं। तृष्णा भंवर है। स्त्री कीचड़ है। इस भयानक संसार सागर से पार उतरने का उपाय सूक्ष्म अष्टांगयोग है। इसके द्वारा सत्व, रज, तम इन तीन गुणों को पार करके तारक का ध्यान करना चाहिये। यह तारक लक्ष्य हमारी दोनों भौंहों के बीच में है। अपनी नाक के अगले भाग पर ध्यान लगाने से भ्रूमध्य में ज्योति के दर्शन होने लगते हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्म सर्वव्यापक है। आँखों और मन की एकाग्रता से उत्पन्न इस तेज या प्रकाश में भी कूटस्थ अर्थात् शाश्वत ब्रह्म का तेज व्याप्त होता है। भ्रूमध्य में दिखाई देने वाले इस तेज पर मन एकाग्र होने पर ब्रह्म का ध्यान ही संसार-सागर को तैरकर पार करने का उपाय है। इसलिये भ्रूमध्य में ध्यान लगाना तारक ब्रह्म कहलाता है।

## तीन लक्ष्यों पर ध्यान करने से तारक ब्रह्म की प्राप्ति

**तदाप्त्युपायं लक्ष्यत्रयावलोकनम्।।५।।**

तारक ब्रह्म को प्राप्त करने का उपाय तीन लक्ष्यों पर ध्यान करना है।

## अन्तर्लक्ष्य दर्शन

**मूलाधारात् आब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा।**
**तन्मध्ये तटित्कोटिसमा मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी।**
**तत्र तमोनिवृत्तिः। तद्दर्शनात् सर्वपाप निवृत्तिः।।६।।**

हमारे शरीर में मूलाधार चक्र से लेकर सिर में ब्रह्मरन्ध्र तक सूर्यज्योति जैसी चमकीली सुषुम्ना नाड़ी है। इस नाड़ी के अन्दर करोड़ों बिजलियों की चमक वाली कुण्डलिनी शक्ति है। कुण्डलिनी कमलनाल के तार जितनी सूक्ष्म है। इस कुण्डलिनी पर मन एकाग्र हो जाने पर हमारे अज्ञान का अन्धकार दूर हो जाता है। कुण्डलिनी के अन्दर वाले आकाश को देखकर हमारे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

**तर्जन्यग्रोन्मीलित कर्णरन्ध्रद्वये फूत्कार शब्दो जायते। तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्य नीलज्योतिः पश्यति। एवं हृदयेऽपि।।७।।**

मुकुन्द मुद्रा से दोनों कानों को तर्जनी अंगुलियों से अर्थात् अंगूठे से अगली हाथ की दोनों अंगुलियों से बन्द करने पर बादल गरजने जैसी आवाज सुनाई देती है। इस नाद या शब्द में मन एकाग्र करने पर आँखों के बीच में नीले रंग का प्रकाश दिखाई देता है। ऐसा ही प्रकाश हृदय में भी दिखाई देता है।

### बहिर्लक्ष्य दर्शन

**बहिर्लक्ष्यं तु नासाग्रे चतुःषडष्टदशद्वादशाङ्गुलीभिः क्रमान्नीलद्युति श्यामत्वसदृग्रक्त भङ्गीस्फुरत् पीतवर्ण द्वयोपेतं व्योमत्वं पश्यति स तु योगी।।८।।**

बाहर का लक्ष्य नाक के अगले भाग पर है। नासाग्र पर दृष्टि स्थिर करके योगी चार, छह, आठ, दस और बाहर अंगुली की दूरी तक आकाश भाव को देखता है। इस आकाश में उसे क्रमशः नीला, हल्के काले रंग मिला लाल और पीला रंग दिखाई देने लगता है। जब इन दोनों रंगों का आकाश दीखने लगता है तब साधक योगी बन जाता है।

**चलदृष्ट्या व्योमभागवीक्षितुः पुरुषस्य दृष्टयग्रे ज्योतिर्मयूखाः वर्तन्ते। तद्दृष्टिः स्थिरा भवति।।९।। शीर्षोपरि द्वादशाङ्गुलि-मानं ज्योतिः पश्यति तदाऽमृतत्वमेति।।१०।।**

चंचल आँखों से आकाश देखने पर आँखों के सामने प्रकाश की किरणें दीखती हैं। इन किरणों पर आँख एकटक लग जाती है। जब सिर के ऊपर बारह अंगुली की दूरी पर प्रकाश दिखाई देने लगता है तब योगी अमरत्व पाने के मार्ग पर बढ़ने लगता है।

### मध्यलक्ष्य दर्शन

**मध्यलक्ष्यं तु प्रातश्चित्रादिवर्णसूर्यचन्द्रवह्निज्वालावलीवत् तद्विहीनान्तरिक्षवत् पश्यति।।११।। तदाकारकारी भवति।।१२।।**

**अभ्यासान्निर्विकारं गुणरहिताकाशं भवति। विस्फुरत् तारकाकार गाढतमोपमं पराकाशं भवति। कालानलसमं द्योतामानं महाकाशं भवति। सर्वोत्कृष्ट परमाद्वितीयप्रद्योतमानं तत्त्वाकाशं भवति। कोटिसूर्यसंकाशं सूर्याकाशं भवति।।१३।। एवमभ्यासात्तन्मयो भवति। य एवं वेद।।१४।।**

मध्यलक्ष्य के अभ्यास में सवेरे साधक को कुछ दूरी पर रंगबिरंगी सूर्य और चन्द्रमा की किरणों या आग की लपटों अथवा इन सबसे रहित आकाश दीखता है। इस प्रकार के आकाश को देखते रहने से मन इस प्रकाश में लग जाता है। यह अभ्यास बढ़ने पर उसका मन विकार और तीनों गुणों से रहित आकाशमय हो जाता है। इसके बाद उसकी आँखों के सामने आँख की पुतलियों जैसा गाढ़े काले रंग का पराकाश चमकने लगता है। अभ्यास बढ़ने पर कालाग्नि या प्रलय की अग्नि के समान अत्यन्त देदीप्यमान महाकाश में साधक का मन खो जाता है। फिर उसे करोड़ों सूर्यों की चमक वाला सूर्याकाश दीखता है। इन मध्य लक्ष्यों को देखने का अभ्यास करते रहने पर साधक का मन गुणरहित आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश इन पाँच आकाशों में लीन होजाता है। उसे इन पाँचों आकाशों का ज्ञान हो जाता है।

**।।द्वितीय खण्ड समाप्त।।**

# तृतीय खण्ड

## तारक और अमनस्क योग

**तद्योगं च द्विधा विद्धि पूर्वोत्तर विधानतः।**
**पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कं तदुत्तरमिति।।**

**तारकं द्विविधम्। मूर्तितारकममूर्तितारकमिति। यद् इन्द्रियान्तं तन्मूर्तितारकम्। यद् भ्रूयुगातीतं तदमूर्तितारकमिति।।१।।**

यह योग तारकयोग और अमनस्क योग इन दो प्रकार का होता है। उपरोक्त पाँच आकाशों पर मन लगाने का अभ्यास करने पर तारक योग

और अमनस्क योग सिद्ध हो जाता है। योग साधना के इन दो उपायों में तारक योग भी दो प्रकार का होता है **मूर्तितारक** और **अमूर्तितारक**। मूर्तितारक योग में मूलाधार चक्र से लेकर आज्ञाचक्र तक ध्यान लगाना होता है। अमूर्तितारक योग में दोनों भौंहों के बीच में स्थित आज्ञाचक्र से लेकर सहस्रार चक्र तक ध्यान किया जाता है।

## मन लगाने की विधि

**उभयमपि मनोयुक्तमभ्यसेत्। मनोयुक्तानान्तरदृष्टिस्तारक प्रकाशाय भवति।।२।।**

साधारण रूप से किसी भी लक्ष्य पर आँख लगानी होती है। मन के साथ आँखों को एकटक लगाने से आँखें; मन और हृदय के भाव देखने लगती हैं। अन्तरदृष्टि हो जाने पर साधक तारकदृष्टि सम्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में साधक की आँखें किसी वस्तु को केवल देखती ही नहीं हैं अपितु उस वस्तु पर आँखों के साथ-साथ मन भी लगने लगता है। इसीलिये कहा है कि मूर्तितारक और अमूर्तितारक इन दोनों ही योगों का अभ्यास मन लगाकर करना चाहिये। मन लगाकर तारक योग का अभ्यास करने पर अन्तरदृष्टि से तारक योग का प्रकाश होता है।

## पूर्वतारक योग

**भ्रूयुग मध्य बिले तेजस आविर्भावः। एतत् पूर्वतारकम्।।३।।**

दोनों भौंहों के बीच माथे के आज्ञाचक्र में जब तेज का प्रकाश दीखता है तब पूर्वतारक योग होता है।

## उत्तर तारक योग

**उत्तरं त्वमनस्कम्। तालुमूलोर्ध्वभागे महज्ज्योति र्विद्यते। तद्दर्शनादणिमादि-सिद्धिः।।४।।**

उत्तरतारक योग अमनस्क कहलाता है। तालु के अन्त में ऊपर का भाग अत्यन्त ज्योतिर्मय है। यहाँ पर ध्यान में जब यह प्रकाश दीखने लगता है तब योगी को अणिमा आदि सिद्धियाँ होने लगती हैं। खेचरी मुद्रा का अभ्यास देर तक करते रहने से साधक को यह प्रकाश दीखने लगता है।

### उत्तर तारक से शाम्भवी मुद्रा

**लक्ष्येऽन्तर्बाह्यायां दृष्टौ निमेषोन्मेषवर्जितायां च इयं शाम्भवी मुद्रा भवति। सर्वतन्त्रेषु गोप्या महाविद्या भवति। तज्ज्ञानेन संसारनिर्वृत्तिः। तत् पूजनं मोक्षफलदम्।।५।।**

उत्तर तारक योग का अभ्यास सिद्ध होने पर साधक शाम्भवी मुद्रा लगाने लगता है। इस मुद्रा का अभ्यास करने से मुक्ति मिल जाती है। शाम्भवी मुद्रा में भौंहों के बीच में आन्तरतत्त्व में मन लगाया जाता है। इस मुद्रा में नेत्र थोड़े खुले रहते हैं। आँखें पूरी खुली रखने पर चित्त में विक्षेप होता है और बन्द कर लेने पर आलस्य आने लगता है। शास्त्रों में शाम्भवी मुद्रा लगाने के अभ्यास की विधि गुप्त रखने का आदेश दिया गया है। शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास से संसार से वैराग्य हो जाता है और योगी मुक्त हो जाता है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार शाम्भवी मुद्रा की विधि इस प्रकार है:-

**अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषा वर्जिता।।४/३६।।**

शरीर के मूलाधार चक्र से लेकर सहस्रार चक्र या ब्रह्मरन्ध्र तक किसी भी आन्तरिक चक्र पर अन्तःकरण एकाग्र करके और आँखों की पलकें झपके बिना ही किसी बाह्यलक्ष्य पर दृष्टि एकाग्र कर ध्यान लगाने का अभ्यास शाम्भवी मुद्रा कहलाता है। शाम्भवी मुद्रा से प्राणलय होता है और प्राणलय से चित्त का लय होता है।

### अन्तर्लक्ष्य का लक्षण

**अन्तर्लक्ष्यं जलज्योतिःस्वरूपं भवति।<br>महर्षिवेद्यं अन्तर्बाह्येन्द्रियैरदृश्यम्।।६।।**

अन्तर्लक्ष्य जलज्योति के स्वरूप वाला होता है। अन्तर्लक्ष्य को हमारी इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं इसीलिये यह अन्तर्लक्ष्य कहलाता है। अन्तर्लक्ष्य पर ध्यान लगाने के अभ्यास की विधि महर्षि ही बता सकते हैं।

**।।तृतीय खण्ड समाप्त।।**

# चतुर्थ खण्ड

### अन्तर्लक्ष्य के सम्बन्ध में मतभेद

**सहस्रारेजलज्योतिरन्तर्लक्ष्यम्। बुद्धिगुहायां सर्वाङ्गसुन्दरं पुरुषरूपमन्तर्लक्ष्यमित्यपरे। शीर्षान्तर्गत मण्डलमध्यगं पञ्चवक्त्रमुमासहायं नीलकण्ठं प्रशान्तम्। अन्तर्लक्ष्यमिति केचित्। अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तर्लक्ष्यमित्येके।।१।।**

शरीर में अन्तर्लक्ष्य कहाँ है इस सम्बन्ध में मतभेद हैं। योगियों के अनुसार सहस्रार चक्र में दिखाई देने वाली जल जैसी तरल ज्योति अन्तर्लक्ष्य है। हमारी बुद्धि की गुहा में सर्वाङ्गसुन्दर पुरुष की छवि अन्तर्लक्ष्य होता है ऐसा वैष्णवों का मानना है। शैवों के मत में सिर के अन्दर दोनों कपालों के बीच पाँच मुखों वाले प्रशान्तस्वरूप उमापति नीलकण्ठ शिव अन्तर्लक्ष्य हैं। दहर विद्या के उपासकों के मत में हृदय की गुफा में बैठे हाथ के अंगूठे जितने छोटे आकार के पुरुष या परमात्मा अन्तर्लक्ष्य हैं।

### सभी लक्ष्यों में वर्तमान आत्मदर्शन की विधि

**उक्तविकल्पं सर्वमात्मैव। तल्लक्ष्यं शुद्धात्मदृष्ट्या वा यः पश्यति स एव ब्रह्मनिष्ठो भवति।।२।।**

अन्तर्लक्ष्य के सम्बन्ध में जो विचार या मत बताये गये हैं वे सब आत्मा के स्वरूप का ही दिग्दर्शन कराते हैं। जो योगी इन लक्ष्यों में से किसी भी लक्ष्य पर पवित्र मन-बुद्धि से ध्यान एकाग्र करता है वह ब्रह्मनिष्ठ बन जाता है।

### आत्मनिष्ठ योगी को ब्रह्मभाव की प्राप्ति

**जीवः पञ्चविंशकः स्वकल्पितचतुर्विंशतितत्त्वं परित्यज्य षड्विंशकः परमात्माऽ-हमिति निश्चयाज्जीवन्मुक्तो भवति।।३।। एवमन्तर्लक्ष्यदर्शनेन जीवन्मुक्तिदशायां स्वयम् अन्तर्लक्ष्यो भूत्वा परमाकाशाखण्डमण्डलो भवति।।४।।**

हमारे शरीर में २५ तत्व हैं। ये तत्व हैं आँख, नाक आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, हाथ पैर आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, प्राण-अपान आदि पाँच प्राण,

पृथिवी, जल, वायु आदि पाँच महाभूत और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चार अन्त:करण ये २४ तत्व और इन तत्वों के सहित जीवात्मा २५वां तत्व है। इन सब तत्वों से रहित २६वां तत्व परमात्मा है। जब योगी को दीर्घकाल की नियमित और निरन्तर साधना करते रहने के बाद यह निश्चय हो जाता है कि मैं भी परमात्मा का ही अंश हूँ तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है। अन्तर्लक्ष्य पर ध्यान लगाने से जीवन्मुक्ति की अवस्था में पहुँच कर योगी जीवन्मुक्त की यह स्थिति भी त्याग कर स्वयं ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। इस अवस्था में वह योगियों के लिये अन्तर्लक्ष्य बनकर परम अखण्ड आकाश मण्डल की तरह सर्वव्यापक परमात्मा के स्वरूप जैसा ही बन जाता है।

महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में योग की सात ज्ञान भूमियाँ बताई हैं। इनमें से प्रथम ज्ञानभूमि **'शुभेच्छा'** कहलाती है। इसमें मन में विवेक, वैराग्य और शम, दम आदि से मोक्ष के लिये तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। जब शास्त्र-श्रवण और मनन आदि के अभ्यास से मन परम तत्त्व का विचार करने लगता है तब योगी का मन **'विचारणा'** नाम की दूसरी भूमि में पहुँच जाता है। मन में सदैव तरह-तरह के विचार या वृत्तियाँ उठती रहती हैं, किन्तु मन एकाग्र करने के परिणामस्वरूप मन एकमात्र परमतत्त्व में ही लगने लगता है तब योगी तीसरी ज्ञानभूमि 'तनुमानसा' में पहुँचता है। ज्ञानभूमि की यह अवस्था निदिध्यासन अर्थात् ध्यान के अभ्यास से उत्पन्न होती है। ज्ञान की ये तीन भूमियाँ **'साधन-भूमि'** कहलाती हैं। इनमें स्थित योगी साधक कहलाता है। इन तीन ज्ञानभूमियों के कारण साधक का मन सात्विक वृत्ति से युक्त हो जाता है। तब शुद्ध सात्विक अन्त:करण में 'मैं ही ब्रह्म हूँ' **(अहं ब्रह्मास्मि)** की भावना वाली प्रत्यक्ष वृत्ति उत्पन्न होती है जो **'सत्वापत्ति'** भूमि कहलाती है। यह चौथी ज्ञानभूमि **'फलभूमि'** है और ज्ञान के इस स्तर पर स्थित योगी 'ब्रह्मवित्' हो जाता है। क्योंकि उसे ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। यह **'सम्प्रज्ञात योग भूमि'** है। अगली तीन ज्ञानभूमियाँ **असम्प्रज्ञात योग भूमियाँ** हैं। **'सत्वापत्ति'** भूमि में पहुँचे योगी को सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। किन्तु इन सिद्धियों में न फंसकर आगे बढ़ने वाला योगी ज्ञान की पाँचवी भूमि **'असंसक्ति'** में पहुँच जाता है। इस भूमि को प्राप्त योगी समाधि से स्वयं ही उठ सकता है। इस स्थिति को प्राप्त

योगी **'ब्रह्मविद्वर'** कहलाता है। यह अवस्था आने पर योगी का मन परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी विषय में नहीं लगता। ज्ञानभूमि की छठी अवस्था **'परार्थभाविनी'** कहलाती है। इस स्थिति को प्राप्त योगी किसी दूसरे व्यक्ति के जगाने पर ही समाधि से बाहर आ पाता है। इस ज्ञानभूमि में पहुँचा योगी **'ब्रह्मविद वरीयान्'** कहलाता है। ज्ञान की सातवीं भूमि **'तुर्यगा'** कहलाती है। इसमें पहुँचा हुआ योगी न तो स्वयं समाधि भंग कर सकता है और न ही अन्य कोई व्यक्ति उसे समाधि से बाहर ला सकता है। इस ज्ञानभूमि को प्राप्त योगी **'ब्रह्मविद वरिष्ठ'** अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी कहलाता है। यह योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। श्रुति में इस स्थिति का वर्णन इन शब्दों में है– **'आत्मक्रीड आत्मरतिरेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः'**। जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त योगी अपने में ही सन्तुष्ट रहता है। उसे किसी से राग या द्वेष नहीं होता। गीता में इस स्थिति का वर्णन इन शब्दों में है—

**'आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते'**।।गीता २/५५।।

**महोपनिषद्**(५/२४-२५) के अनुसार सात ज्ञानभूमियाँ हैं—

**ज्ञानभूमि शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता।**
**विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी।।२४।।**
**सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्ति नामिका।**
**परार्थभाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता।।२५।।**

**।। चतुर्थ खण्ड और प्रथम ब्राह्मण समाप्त।।**

# द्वितीय ब्राह्मण

## प्रथम खण्ड

**अथ ह याज्ञवल्क्य आदित्यमण्डलं पुरुषं पप्रच्छ। भगवन्नन्तर्लक्ष्यादिकं बहुधोक्तम्। मया तन्न ज्ञातम्। तद् ब्रूहि मह्यम्।।१।। तदुहोवाच पञ्चभूतकारणं तडित्कूटाभं तदवत् चतुःपीठम्। तन्मध्ये तत्त्वप्रकाशो भवति। सोऽतिगूढ अव्यक्तश्च।।२।।**

ऋषि याज्ञवल्क्य ने आदित्यमण्डल पुरुष से पूछाः – भगवन्! आपने अन्तर्लक्ष्य आदि की चर्चा कई बार की है। किन्तु मैं इस सम्बन्ध में कुछ

नहीं समझा। आप इस सम्बन्ध में मुझे फिर बताइये। आदित्यमण्डल के पुरुष ने कहा– पृथिवी, जल, वायु, आकाश और तेज इन पाँच महाभूतों का कारण पुरुष या परमात्मा है। यह पुरुष आकाश की करोड़ों बिजलियों के समान तेजस्वी है। इस पुरुष से अधिष्ठित एक चतुष्पीठ है। प्रकृति की सत्व, रज, तम की साम्यावस्था के रूप से अथवा विश्व, विराट्, तैजस और प्राज्ञ अथवा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन चार अवस्थाओं के भेद के कारण यह आसन चतुष्पीठ कहलाता है। इस चतुष्पीठ में तत्त्व का प्रकाश है। यह प्रकाश अज्ञान को नष्ट करके तत्त्व को प्रकाशित कर देता है। अज्ञान से ढकी दृष्टि के कारण हमें यह प्रकाश नहीं दिखता इसीलिये यह प्रकाश अत्यन्त गुप्त और अव्यक्त या अप्रकट है।

**तज्ज्ञानप्लवाधिरूढेन ज्ञेयम्। तद्बाह्याभ्यन्तर्लक्ष्यम्।।३।।**
**तन्मध्येजगल्लीनम्। तन्नादबिन्दुकलाऽतीतमखण्डमण्डलम्।**
**तत् सगुणनिर्गुणस्वरूपम्। तद् वेत्ता विमुक्तः।।४।।**

इस परमात्मा पुरुष को ज्ञान की नाव पर सवार होकर जाना जा सकता है। यह पुरुष ही साधकों का बाह्य लक्ष्य और अन्तर्लक्ष्य है। प्रलय होने पर सारी सृष्टि इसी पुरुष में समा जाती या लीन हो जाती है। परमात्मा नाद, बिन्दु और कला के भेद से परे अखण्ड मण्डल रूप है। परमात्मा; सगुण और निर्गुण स्वरूप है। परमात्मा के स्वरूप को जान लेने वाला मुक्त हो जाता है।

## शाम्भवी से परमात्मा की प्राप्ति

**आदावग्निमण्डलम्। तदुपरि सूर्यमण्डलम्। तन्मध्ये सुधाचन्द्रमण्डलम्। तन्मध्येऽखण्डब्रह्मतेजोमण्डलम्। तद्विद्युतल्लेखावच्छुक्ल भास्वरम्। तदेव शाम्भवी लक्षणम्।।५।।**

योगी सिद्धासन में बैठकर षणमुखी मुद्रा का अभ्यास करता है। यह अभ्यास सिद्ध होने पर उसे सबसे पहिले अग्नि-मण्डल दिखाई देता है। फिर इसके ऊपर सूर्यमण्डल दिखता है। सूर्यमण्डल के बीच में अमृतमय चन्द्रमण्डल है। चन्द्रमण्डल के अन्दर अखण्ड ब्रह्म का तेजोमण्डल है। यह तेजोमण्डल बिजली की चमक जैसा दैदीप्यमान और सफेद रंग का है। यही शाम्भवी स्थिति है।

### पूर्णिमा दृष्टि की विधि

**तद्दर्शनि त्रयो दृष्ट्य अमा प्रतिपत्पूर्णिमाचेति। निमीलितदर्शनममा दृष्टिः। अर्धोन्मीलितं प्रतिपत्। सर्वोन्मीलनं पूर्णिमा भवति। तासु पूर्णिमाऽभ्यासः कर्तव्यः।।६।। तल्लक्ष्यं नासाग्रम्। तदा तालुमूले गाढतमो दृश्यते। तदभ्यासादखण्ड-मण्डलाकारज्योति र्दृश्यते। तदेव सच्चिदानन्दं ब्रह्म भवति।।७।।**

ब्रह्मदर्शन का उपाय क्या है इसे स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि अन्तर्लक्ष्य या बहिर्लक्ष्य पर ध्यान तीन प्रकार लगाया जाता है। आँखें बन्द करके, आँखें अधखुली रखकर और आंखे पूरी खुली रखकर। आंखें बन्द करके ध्यान करना अमादृष्टि ध्यान होता है। आंखें आधी खुली रखकर ध्यान करन प्रतिपदा दृष्टि ध्यान होता है। आंखें पूरी खुली रखकर ध्यान करना पूर्णिमा दृष्टि होती है। साधक को पूर्णिमा दृष्टि से अर्थात् आँखें पूरी खुली रखकर ध्यान करने का अभ्यास करना चाहिये। उसे आँखें नाक के अगले भाग पर एकटक लगाये रखनी चाहियें। यह अभ्यास बढ़ने पर साधक को अपने तालु के सिरे पर गहरा अन्धकार दिखता है। यह अन्धकार देखने का अभ्यास करते-करते अखण्ड मण्डलाकार ज्योति दिखती है। यही सच्चिदान्द ब्रह्म की ज्योति है। यही सहजानन्दरूप ब्रह्म साक्षात्कार है।

### पूर्णिमादृष्टि की शाम्भवी में समाप्ति

**एवं सहजानन्दे यदा मनो लीयते तदा शाम्भवी भवति। तामेव खेचरीमाहुः।।८।।**

इस सहजानन्द में जब योगी का मन लीन हो जाता है तब वह शाम्भवी अवस्था में पहुँच जाता है। शाम्भवी स्थिति ही खेचरी होती है। भावार्थ यह है कि शाम्भवी मुद्रा और खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने का लक्ष्य एक ही है अर्थात् ब्रह्मासाक्षात्कार ही है और इन दोनों मुद्राओं के अभ्यास से योगी ब्रह्मसाक्षात्कार करते हैं।

### मुद्रासिद्धि के चिह्न

**तदभ्यासान्मनः स्थैर्यम्। ततो बुद्धिस्थैर्यम्।।९।।**

**तच्चिन्हानि। आदौ तारकवद् दृश्यते। ततो वज्रदर्पणम्। ततः परिपूर्णचन्द्रमण्डलम्। ततो रत्नप्रभामण्डलम्। ततो मध्याह्नार्कमण्डलम्। ततो वह्निशिखामण्डलं क्रमाद् दृश्यते।।१०।।**

शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास सिद्ध होने पर मन की चंचलता नष्ट हो जाती है और मन एकाग्र हो जाता है। मन के एकाग्र होने पर बुद्धि भी एक लक्ष्य पर स्थिर हो जाती है। मुद्रा सिद्धि के लक्षण इस क्रम से प्रकट होते हैं—

ध्यान में सबसे पहिले तारे जैसा प्रकाश दिखता है। फिर चिकने पत्थर जैसा दर्पण दिखता है। अभ्यास और परिपक्व होने पर पूर्णिमा का चन्द्रमा दिखाई देता है। फिर रत्नों की चमक, दोपहर का चमकीला सूर्य और अन्त में अग्निशिखा दिखने लगती है।

श्वेताश्वर उपनिषद् में इस स्थिति का वर्णन इन शब्दों में है—

**नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्।**
**एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे।।२/११।।**

जब योगी ब्रह्म का ध्यान करता है तब उसे शुरू-शुरू में भिन्न-भिन्न रूप दिखाई देते हैं। कुहरा सा, धुआँ सा, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनू, बिजली, स्फटिक, चन्द्रमा इनकी ज्योतियाँ दिखाई देती हैं। योगाभ्यास में ब्रह्मदर्शन से पहिले ये रूप या ज्योतियाँ ब्रह्म को अभिव्यक्त करने के लिये होती हैं। ब्रह्म का प्रकाश इतना महान है कि इसे सहने के लिये ये प्रकाश दिखाई देते हैं ताकि योगी ब्रह्म के अत्यन्त तेजस्वी प्रकाश को झेल सके।

**।। प्रथम खण्ड समाप्त।।**

# द्वितीय खण्ड

### प्रणवस्वरूपप्रत्यक्प्रकाश का अनुभव और इसके चिह्न

**तदा पश्चिमाभिमुखप्रकाशः स्फटिक धूम्र बिन्दु नाद कला नक्षत्र खद्योतदीप नेत्रसुवर्णनवरत्नादि प्रभा दृश्यन्ते। तदेव प्रणवस्वरूपम्।।१।।**

तब पश्चिम दिशा की ओर प्रकाश दिखाई देता है। फिर स्फटिक,

धुएँ, बिन्दु अर्थात् मनस्तत्त्व, नाद अर्थात् बुद्धितत्त्व, कला अर्थात् महत्तत्त्व, तारों, जुगनू, दीपक, नेत्र, सुवर्ण, रत्नों की प्रभा जैसी ज्योतियाँ दिखती है। यही ज्योतियाँ या प्रकाश प्रणव या ब्रह्म का रूप हैं।

**षण्मुखी मुद्रा से प्रणवप्राप्ति**

**प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा धृत्कुम्भको नासाग्रदर्शनदृढभावनया द्विकराङ्गुलिभिः षण्मुखीकरणेन प्रणवादि ध्वनिं निशम्य मनस्तत्र लीनं भवति।।२।।**

षण्मुखी मुद्रा के साथ प्राणायाम के द्वारा प्राण और अपान वायुओं को मिलाकर तथा कुम्भक प्राणायाम करके नाक के अगले भाग पर दृष्टि जमानी चाहिये। षण्मुखी मुद्रा में हाथों की अंगुलियों और अंगूठों से कान, आँखें, मुख आदि बन्द किये जाते हैं और मुख से श्वास भरकर श्वास को मुख में ही रोका जाता है तथा जालन्धर, उड्डीयान और मूल ये तीनों बन्ध लगाये जाते हैं। थोड़ी देर तक श्वास रोके रखने पर कानों में बादलों की गरज जैसा नाद सुनाई देने लगता है। षण्मुखी मुद्रा और प्राणायाम का अभ्यास बढ़ने पर सूक्ष्म अनाहत नाद सुनाई देने लगता है। अनाहत नाद में योगी का मन लीन हो जाता है। अनाहत नाद सबसे पहिले आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) में मन के अनुभव में आता है। इसके बाद अनाहत चक्र (हृदयचक्र) में जाकर कानों को सुनाई देता है। आज्ञाचक्र के अनाहत नाद की 'सोऽहम्' ध्वनि में ओंकार या प्रणवध्वनि होती है।

मूलाधार से शब्दस्रोत निरन्तर ऊपर की ओर उठ रहा है। यही शब्द समस्त जगत के केन्द्र में नित्य विद्यमान है। बहिर्मुख जीव इन्द्रियों के वश में पड़कर विषयों की ओर दौड़ रहा है। इसी कारण उसे इस शब्द का पता नहीं चलता। जब किसी क्रिया-कौशल से या अन्य किसी उपाय से इन्द्रियों की बहिर्गति रुक जाती है और प्राण तथा मन स्तम्भित हो जाते हैं, तब साधक इस चेतन शब्द को सुनने के अधिकारी होते हैं। षण्मुखी-मुद्रा द्वारा इस नाद के अनुसन्धान की चेष्टा की जाती है। नोदन अथवा अभिघात जनित शब्द को अनाहत नाद में लीन न कर सकने पर मन्त्र अक्षरों का समूह ही रह जाता है। उसका सामर्थ्य और प्रकाश अनुभव गोचर नहीं होता। इडा - पिंगला में प्राणवायु की गति रुक कर; प्राणवायु और मन के सुषुम्ना के अन्दर प्रविष्ट होने पर यह नित्य सारस्वत स्रोत अनुभूत होता है। यही

साधक को क्रमशः आज्ञाचक्र में ले जाता है और वहाँ से बिन्दुस्थान भेदकर क्रमशः सहस्रार के केन्द्र में महाबिन्दु तक पहुँचा देता है। हंस-मन्त्र, जिसका जीव श्वास-प्रश्वास के साथ निरन्तर जप करता है, गुरुकृपा से प्राण की विपरीत भावापन्न अवस्था में 'सोऽहम्' मन्त्र के रूप में बदल जाता है।

### प्रणववित् की कर्मनिवृत्ति

**तस्य न कर्मलेपः। रवेरुदयास्तमययोः किल कर्म कर्तव्यम्। एवं विधश्चिदा दित्यस्योदयास्तमया भावात् सर्वकर्माभावः।।३।।**

ऐसे योगी के कर्म उसे बन्धन में नहीं डालते। प्राणी को सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त होने तक अपने कर्म करने चाहियें, किन्तु ऐसे योगी के लिये सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा रूपी सूर्य कभी उदय या अस्त नहीं होता इसलिये वह अपने कर्तव्य कर्म करता हुआ भी कर्म-बन्धन में नहीं पड़ता।

### उन्मनी अवस्था द्वारा अमनस्क सिद्धि

**शब्दकाललयेन दिवारात्र्यातीतो भूत्वा सर्वपरिपूर्णज्ञानेनोन्मन्यवस्थावशेन ब्रह्मैक्यं भवति। उन्मन्या अमनस्कं भवति।।४।।**

बद्ध-जीव श्वास-प्रश्वास के अधीन होकर इडा-पिंगला मार्ग में निरन्तर चल रहा है। उसका सुषुम्ना पथ प्रायः बन्द है। इसीलिये उसकी इन्द्रियाँ और चित्त सब बहिर्मुख हैं। जो अखण्डनाद जगत के अन्तस्थल में, आकाशमण्डल में निरन्तर ध्वनित हो रहा है उसे बद्ध जीव चित्त और प्राणों की विक्षिप्तता (कभी स्थिर, कभी चंचल) के कारण सुन नहीं पाता। परन्तु जिस समय गुरुकृपा से तथा क्रिया विशेष के द्वारा सुषुम्ना मार्ग खुल जाता है उस समय प्राण; स्थिर और सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट होते हैं और उस शून्य पथ (सुषुम्ना-मार्ग) से मन अनाहत ध्वनि को सुनता है। इस ध्वनि का निरन्तर अनुसरण करते-करते मन क्रमशः निर्मल और शान्त अवस्था को प्राप्त करता है। जब मन पूर्णरूप से स्थिर हो जाता है तब नादध्वनि सुनायी नहीं पड़ती। उस समय चिदात्मक आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होकर बाह्य प्रकृति के स्पर्श से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

नाद मूलतः एक होने पर भी औपाधिक सम्बन्ध के कारण विभिन्न स्तरों में विभक्त है। योगियों ने इस प्रकार के सात स्तरों का उल्लेख किया

है। शास्त्र जिसको ओंकार या प्रणव का स्वरूप कहते हैं, वही उपाधि रहित शब्द तत्त्व है। वैयाकरणों ने तथा किसी प्राचीन साधक सम्प्रदाय ने 'स्फोट' नाम से इसकी व्याख्या की है। यह स्फोट ही अखण्ड सत्तारूप ब्रह्म तत्त्व का वाचक है अर्थात् इसी से ब्रह्मभाव की स्फूर्ति होती है। प्रणव, ईश्वर का वाचक है, इस बात का तात्पर्य भी यही है। वाचक स्फोट शब्द-ब्रह्म के रूप में और वाच्य सत्ता परब्रह्म के रूप में वर्णित है। अतएव, एक तरह से ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रकाशक है। स्वप्रकाश ब्रह्म अपने स्वरूप के अतिरिक्त और किसी पदार्थ के द्वारा प्रकाशित नहीं हो सकता। परन्तु स्फोट या शब्द तत्त्व जब तक जीव के लिये अव्यक्त रहता है, तब तक उसके द्वारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसीलिये योगी यथाविधि ध्वनि और नाद का अवलम्बन करके इसकी अभिव्यक्ति करते हैं। कुण्डलिनी को जगाना भी कुछ अंशों में इसी कार्य के समान है। नाद, मूलाधार से उठना प्रारम्भ होता है और सहस्रार में जाकर लय को प्राप्त हो जाता है। इस नाद के साथ युक्त होने पर साधक का मन, अनायास परब्रह्म पद तक उठकर चिन्मय आकार धारण कर लेता है और अपने आप को चैतन्य के अन्दर मिला देता है।

शब्द या प्रणवनाद का और काल का लय हो जाने पर योगी को यह विशिष्ट ज्ञान हो जाता है कि दिन रात के नाम से कही जाने वाली जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएँ वास्तविक नहीं हैं तथा ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है यह परिपूर्ण ज्ञान भलीभांति हो जाने पर योगी उन्मनी अवस्था में पहुँच जाता है अर्थात् उसे तत्त्वज्ञान हो जाता है। तत्त्वज्ञान हो जाने पर या उन्मनी अवस्था में पहुँच जाने पर योगी; ब्रह्म के साथ एक हो जाता है, वह अमनस्क हो जाता है अर्थात् ब्रह्म ही हो जाता है।

## अमनस्क की पूजा विधि

**तस्य निश्चिन्तता ध्यानम्। सर्वकर्मनिराकरणमावाहनम्। निश्चयज्ञानमासनम्। उन्मनीभावः पाद्यम्। सदाऽमनस्कमर्घ्यम्। सदा दीप्तिरपारामृतमवृत्तिः स्नानम्। सर्वत्र भावना गन्धः। दृक्स्वरूपावस्थानमक्षताः। चिदाप्तिः पुष्पम्। चिदग्निस्वरूपं धूपः। चिदादित्यस्वरूपं दीपः। परिपूर्णचन्द्रामृतस्यैकीकरणं नैवेद्यम्। निश्चलत्वं प्रदक्षिणम्। सोऽहंभावो नमस्कारः। मौनं स्तुतिः। सर्वसन्तोषो विसर्जनमिति। य एवं वेद।।५।।**

अमनस्क ब्रह्म के ध्यान आदि से ब्रह्म की पूजा कैसे होगी इस सन्देह को दूर करने के लिये कहा है कि चिन्तारहित होना ब्रह्म का ध्यान है। सभी कर्मों का त्याग आवाहन है। ब्रह्म का निश्चयपूर्वक ज्ञान आसन है। उन्मनीभाव पाद्य है। सदा अमनस्क स्थिति में रहना अर्घ्य है। दीप्तिमान ब्रह्म की सदा अनुभव होने वाली अखण्डाकारवृत्ति ही स्नान है। सभी स्थानों और अवस्थाओं में ब्रह्म की भावना व्याप्त रहना गन्ध है। दृक्स्वरूपावस्थान अर्थात् द्रष्टा के स्वरूप में ही बने रहना अक्षत हैं। चिदाप्ति या चैतन्य तत्व की प्राप्ति पूजा के फूल हैं। चिदग्नि अर्थात् चैतन्यज्योति के स्वरूप में स्थिति धूप है। चिदादित्यस्वरूप अर्थात् चैतन्यतत्व के आदित्य स्वरूप का स्मरण दीपक है। भौंहों के बीच और सहस्रार के मध्य खाली स्थान में प्रकाशित परिपूर्ण चन्द्रमण्डल से निकले हुए अमृत को तथा सहस्रार के अमृत को मिला देने से बने अमृतसागर का समर्पण नैवेद्य है। समाधि की निश्चलता प्रदक्षिणा है। सोऽहंभाव नमस्कार है। मौनव्रत स्तुति है। सभी अवस्थाओं में सन्तुष्ट रहना विसर्जन है। जो योगी यह जानता है वह ब्रह्म का अनुसन्धान करते-करते ब्रह्म ही हो जाता है।

**।।द्वितीय खण्ड समाप्त।।**

## तृतीय खण्ड

### ब्रह्म के अनुसन्धान से कैवल्यप्राप्ति

**एवं त्रिपुट्यां निरस्तायां निस्तरंगसमुद्रवन्निवातस्थितदीपवदचलसम्पूर्णभावाभावविहीन कैवल्यज्योति र्भवति।।१।।**

योगी के ब्रह्म के ध्यान में मग्न हो जाने पर ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी समाप्त हो जाती है। तरंग रहित शान्त समुद्र की तरह या वायुरहित स्थान में रखे दीपक की स्थिर लौ की भांति ब्रह्म के अतिरिक्त कोई पदार्थ है या नहीं है अर्थात् भाव-अभाव का यह सन्देह दूर हो जाने पर योगी के हृदय में कैवल्यज्योति अर्थात् ब्रह्ममात्र की भावना शेष रह जाती है।

### ब्रह्मवित् का स्वरूप

**जाग्रन्निद्राऽन्तः परिज्ञानेन ब्रह्मविद् भवति।।२।।**

योगी को जागृत अवस्था और सुषुप्ति अवस्था का भलीभांति ज्ञान हो जाने पर वह ब्रह्मवित् हो जाता है।

### ब्रह्मवित्

ज्ञान की सात भूमियों में से चौथी ज्ञान भूमि में पहुँचा योगी ब्रह्मवित् कहलाता है। प्रथम ज्ञान भूमि **'शुभेच्छा'** कहलाती है। इसमें मन में विवेक, वैराग्य और शम-दम आदि से मोक्ष के लिये तीव्र इच्छा पैदा होती है। जब श्रवण-मनन आदि के अभ्यास से मन परमतत्त्व का विचार करने लगता है तब योगी का मन **'विचारणा'** नाम की दूसरी ज्ञान भूमि में पहुँच जाता है। मन में सदैव तरह-तरह के विचार या वृत्तियाँ उठती रहती हैं किन्तु मन एकाग्र करने के परिणामस्वरूप मन एकमात्र परम तत्त्व में ही लगने लगता है, तब योगी तीसरी ज्ञानभूमि **'तनुमानसा'** में पहुँच जाता है। ज्ञान भूमि की यह अवस्था निदिध्यासन अर्थात् ध्यान के अभ्यास से उत्पन्न होती है। ज्ञान की ये तीन भूमियाँ **'साधन भूमि'** कहलाती हैं। इनमें स्थित योगी साधक कहलाता है। इन तीन ज्ञानभूमियों के कारण साधक का मन सात्विक वृत्ति से युक्त हो जाता है और तब शुद्ध सात्विक अन्तःकरण में 'मैं ही ब्रह्म हूँ' (अहं ब्रह्माऽस्मि) की भावना वाली प्रत्यक्ष वृत्ति उत्पन्न होती है जो **'सत्वापत्ति'** भूमि कहलाती है। यह चौथी ज्ञानभूमि **'फलभूमि'** है और ज्ञान के इस स्तर पर स्थित योगी **'ब्रह्मवित्'** कहलाता है, क्योंकि उसे ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। यह सम्प्रज्ञात योग भूमि है। **'सत्वापत्ति'** भूमि में पहुँचे हुए योगी को सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

### सुषुप्ति और समाधि में भेद

**सुषुप्तिसमाध्योर्मनोलयाविशेषेऽपि महदस्त्युभयो र्भेदस्तमसिलीनत्वान्मुक्ति-हेत्वाभावाच्च।।३।। समाधौ मृदिततमोविकारस्य तदाकाराकारिता-खण्डाकारवृत्त्यात्मकसाक्षिचैतन्ये प्रपञ्चलयः सम्पद्यते प्रपञ्चस्य मनः कल्पित्वात्।।४।।**

सुषुप्ति अवस्था और समाधि अवस्था इन दोनों ही अवस्थाओं में मनोलय होने पर भी दोनों अवस्थाओं के बीच बहुत भेद है, क्योंकि सुषुप्ति अवस्था में मन तमोगुण में लीन हो जाता है और इस अवस्था में मुक्ति भी

नहीं होती। किन्तु समाधि अवस्था में साधक का मन तमोगुण से रहित होता है, मन में ब्रह्म की अखण्डाकारवृत्ति बनी रहती है और चैतन्य सत्ता के साक्षी या दर्शक अन्त:करण में सृष्टि लीन हो जाती है क्योंकि यह सृष्टि मन की कल्पना मात्र ही है, वास्तविक नहीं है।

**ब्रह्मवित् का ब्रह्मभाव**

**ततो भेदाभावात् कदाचित् बहिर्गतिऽपि मिथ्यात्वभानात्। सकृद्विभातसदानन्दानुभवैकगोचरोब्रह्मविदेव भवति।।५।।**

चैतन्य ब्रह्म और पुरुष जीव के बीच भेद समाप्त हो जाने पर अर्थात् मन के संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाने पर मन में चैतन्यसत्ता के साथ एकत्व की भावना आ जाती है। यदि मन से यह एकत्व भावना कभी हटती भी है तो भी मन अपनी कल्पना से बनाये गये इस जगत् प्रपंच का मिथ्यात्व या निस्सारता अनुभव कर लेने के कारण इस प्रपंच में नहीं ठहरता, क्योंकि मन एक बार नित्य आनन्द का अनुभव कर चुका है। ब्रह्मवित् की इस अवस्था को पहुँचा हुआ योगी सभी दृष्टियों से ब्रह्म ही हो जाता है अर्थात् वह ब्रह्मभावना में सदा लीन रहता है।

**संकल्पत्यागपूर्वक परमात्मा के ध्यान से मुक्ति**

**यस्य संकल्पनाशः स्यात्तस्य मुक्तिः करे स्थिता। तस्माद् भावाभावौ परित्यज्य परमात्मध्यानेन मुक्तो भवति।।६।।**

**पुनः पुनः सर्वावस्थासु ज्ञानज्ञेयौ ध्यानध्येयौ लक्ष्यालक्ष्ये दृश्यादृश्ये चोहापोहादि परित्यज्य जीवन्मुक्तो भवति। य एवं वेद।।७।।**

जिस साधक के मन के संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं उसकी मुक्ति उसके हाथ में ही आ जाती है। इसलिये परमात्मा है या नहीं है इन सब बातों को छोड़कर साधक परमात्मा का ध्यान करके मुक्त हो जाता है। यदि मन में ज्ञान और जानने योग्य क्या है, ध्यान और ध्येय क्या है, लक्ष्य और अलक्ष्य क्या है, दृश्य और अदृश्य क्या है, ये सब सन्देह और शंकाएँ कभी उठती भी हैं तब भी वह इन सबको त्यागकर जीवन्मुक्त हो जाता है। जो यह रहस्य जानता है।

**।।तृतीय खण्ड समाप्त।।**

# चतुर्थ खण्ड

## जाग्रत आदि पाँच अवस्थाएँ

**पञ्चावस्थाः जाग्रत्स्वप्न सुषुप्ति तुरीयतुरीयातीताः।।१।।**

हमारी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत ये पाँच अवस्थाएँ होती हैं।

## प्रवृत्तिसंकल्प

**जाग्रति प्रवृत्तो जीवः प्रवृत्तिमार्गासक्तः पापफलनरकादि मांऽस्तु शुभकर्म स्वर्गफलमस्त्विति कांक्षते।।२।।**

जाग्रत अवस्था में जीव प्रवृत्तिमार्ग पर चलता हुआ यही चाहता है कि मुझे पाप कर्मों का फल नरक आदि न मिले अपितु अच्छे कर्मों का फल स्वर्ग मिले। इस प्रकार की कामनाएँ करता हुआ जीव अपने अज्ञान के कारण जीवन-मरण के बन्धन में पड़ा रहता है।

## निवृत्तिसंकल्प

**स एव स्वीकृत वैराग्यात्कर्मफलजन्मऽलं संसारबन्धनमलमिति विमुक्त्यभिमुख निवृत्तिमार्गप्रवृत्तो भवति।।३।।**

इस प्रकार अनेकों जन्मों में अपने कर्मों का फल भुगतते रहने से परेशान जीव परमात्मा की कृपा से इस संसार से विरक्त हो जाता है और सोचता है कि अनेक जन्मों में बहुत कर्मफल पा लिये। संसार के विषय भोग भी बहुत भोग लिये। इसलिये इन्हें छोड़कर वह मुक्ति पाना चाहता है और निवृत्ति मार्ग पर चल पड़ता है।

## संसारतरण का मार्ग

**स एव संसारतारणाय गुरुमाश्रित्य कामादि त्यक्त्वा, विहितकर्माचरन् साधन-चतुष्टयसम्पन्नो हृदयकमलमध्ये भगवत् सत्तामात्रान्तर्लक्ष्यरूपमासाद्य सुषुप्त्य-वस्थायामुक्तब्रह्मानन्दस्मृतिं लब्ध्वा एक एवाहमद्वितीयः कञ्चित्कालमज्ञानवृत्त्या विस्मृत जाग्रद्वासनाऽनुफलेन तैजसोऽस्मीति तदुभयनिवृत्त्या**

**प्राज्ञ इदानीमस्म्यत्यहमेक एव स्थान भेदादवस्थाभेदस्य परंतु न हि मदन्यदिति जातविवेकः शुद्धाद्वैतब्रह्माहमिति भिदागन्धं निरस्य स्वान्तर्विजृम्भितभानुमण्डल ध्यानतदाकारकारित परंब्रह्माकारित मुक्तिमार्गमारूढः परिपक्वो भवति।।४।।**

निवृत्ति मार्ग पर चलने वाला साधक संसार सागर को पार करने के लिये सद्गुरु का सहारा लेता है। वह काम, क्रोध, राग-द्वेष आदि की भावनाएँ त्याग देता है। यज्ञ, दान, तप आदि शास्त्रसम्मत कर्म करता है। नित्य और अनित्य वस्तुओं के बीच विवेक; वैराग्य; मुमुक्षुत्व अर्थात् मोक्ष पाने की इच्छा; और शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान इन षट्सम्पत्तियों वाले साधन चतुष्टय को अपने जीवन में अपनाता है। अपने हृदयकमल में भगवत्सत्ता को ही अन्तर्लक्ष्य बनाता है। सुषुप्ति अवस्था में अनुभव हुए ब्रह्मानन्द को याद करके 'मैं एक अद्वितीय ब्रह्म ही हूँ' यह मानता है। कुछ समय के लिये अज्ञान दूर हो जाने के कारण वह जाग्रत अवस्था की वासनाओं के फलों को भूलकर 'मैं तैजस रूप हूँ' ऐसा अनुभव करता है। तैजस अवस्था में आने पर जीव के जाग्रत और स्वप्न इन दोनों अवस्थाओं के भोग नष्ट हो जाते हैं और वह अपने को प्राज्ञ अर्थात् प्रकृष्ट ज्ञान वाला अनुभव करने लगता है। इस ज्ञान से जाग्रत, स्वप्न आदि अवस्थाओं का भेद नष्ट हो जाने पर साधक के हृदय में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं रह जाता और वह अनुभव करता है कि मैं और ब्रह्म एक ही हैं। मेरी कोई जाति या जन्म आदि नहीं है अर्थात् यदि मैं ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ होता तो मेरी जाति या जन्म होता। यह विवेक उत्पन्न होने से मैं केवल अद्वैत ब्रह्म का ही अंश हूँ यह ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तथा भेद की भावना या गन्ध समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक के अन्त:करण में सूर्य के समान परमात्मा के तेजस्वी स्वरूप का साक्षात्कार होता है। परमात्मा में ध्यान परिपक्व होने पर साधक मुक्तिमार्ग पर बढ़ने लगता है।

## बन्धन और मोक्ष का कारण मन

**संकल्पादिकं मनो बन्धहेतुः। तद् वियुक्तं मनो मोक्षाय भवति।।५।। तद्वांश्चक्षुरादिबाह्य-प्रपञ्चोपरतो विगतप्रपञ्चगन्धः सर्वं जगत् आत्मत्वेन पश्यन् त्यक्ताहंकारो ब्रह्माहस्मीति चिन्तयन् इदं सर्वं यदयमात्मेति भावयन् कृतकृत्यो भवति।।६।।**

संकल्प-विकल्प करने वाला मन ही जन्म-मरण के बन्धन का कारण है। जब मन के सारे संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं तब एकाग्र मन मोक्षमार्ग पर चलने लगता है। मन की इस निर्विकल्पक वृत्ति वाला साधक आँख, नाक, कान आदि शरीर की बाह्य इन्द्रियों के भोग-विषयों को छोड़कर और संसार से विरक्त होकर सभी प्राणियों को अपने जैसा ही समझने लगता है। उसका अहंकार नष्ट हो जाता है और वह यही सोचता रहता है कि मैं ब्रह्म का ही अंश हूँ और दिखाई देने वाला यह सारा जगत ब्रह्म का ही रूप है। साधक के मन में यह भावना परिपक्व हो जाने पर वह अपने को कृतार्थ अनुभव करने लगता है।

**।।चतुर्थ खण्ड समाप्त।।**

# पञ्चम खण्ड

## निर्विकल्प समाधि के अभ्यास से ब्रह्मविद्वर अवस्था की प्राप्ति

**सर्वपरिपूर्णतुरीयातीत ब्रह्मभूतो योगी भवति। तं ब्रह्मेति स्तुवन्ति।।१।। सर्वलोकस्तुतिपात्रं सर्वलोकसंचारशीलः परमात्मगगने बिन्दुं निक्षिप्त शुद्धाद्वैताजाड्यसहजामनस्कयोगनिद्राऽखण्डानन्दपदानुवृत्त्या जीवन्मुक्तो भवति।।२।।**

अपनी सभी कामनाएँ पूरी होने पर तुरीय अवस्था को पार करके योगी ब्रह्म ही हो जाता है। उसकी ब्रह्म के रूप में स्तुति की जाती है। ऐसा योगी सारे संसार का स्तुति पात्र बन जाता है। वह सम्पूर्ण सृष्टि में विचरण कर सकता है। यह योगी परमात्मगगन में अर्थात् चिदाकाश में अपना बिन्दु अर्थात् मन लय करके शुद्ध अद्वैत ब्रह्म में जड़ता से रहित सहज और अमनस्क योगनिद्रा में अर्थात् निर्विकल्प समाधि में मग्न होकर अखण्ड आनन्द को अनुभव करता हुआ जीवन्मुक्त हो जाता है।

## अपरिच्छिन्नानन्दरूप ब्रह्म की प्राप्ति

**तच्चानन्दसमुद्रमग्ना योगिनो भवन्ति।।३।। तदपेक्षया इन्द्रादयः स्वल्पानन्दाः। एवं प्राप्तानन्दः परमयोगी भवति। इति उपनिषत्।।४।।**

निर्विकल्प समाधि में मग्न योगी ब्रह्मसाक्षात्कार के कारण शान्त आनन्दसागर में डूब जाते हैं। इन योगियों के असीम आनन्द की तुलना में इन्द्र आदि देवों का आनन्द अनुभव सीमित या कम होता है। इस निस्तरंग ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेने वाला योगी परमयोगी होता है।

### ब्रह्मविद्वर

योग की सात ज्ञान भूमियों में से चौथी भूमि **'सत्त्वापत्ति'** कहलाती है। इस भूमि में पहुँचे योगी को सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। किन्तु इनमें न फंसकर आगे बढ़ने वाला योगी ज्ञान की पाँचवी भूमि **'असंसक्ति'** में पहुँच जाता है। इस भूमि को प्राप्त योगी समाधि से स्वयं ही उठ सकता है। इस स्थिति को प्राप्त योगी **'ब्रह्मविद्वर'** कहलाता है। इस अवस्था के आने पर योगी का मन परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी विषय में नहीं लगता।

**।। पञ्चम खण्ड और द्वितीय ब्राह्मण समाप्त।।**

## तृतीय ब्राह्मण - प्रथम खण्ड

### शाम्भवी मुद्रा सहित अमनस्क

**याज्ञवल्क्यो महामुनिर्मण्डलपुरुषं पप्रच्छ स्वामिन्नमस्कलक्षणमुक्तमपि विस्मृतं पुनस्तल्लक्षणं ब्रूहीति।।१।।**

**तथेति मण्डलपुरुषोऽब्रवीत्। इदममनस्कमतिरहस्यम्।**
**यज्ज्ञानेन कृतार्थो भवति तन्नित्यं शाम्भवीमुद्राऽन्वितम्।।२।।**

महामुनि याज्ञवल्क्य ने मण्डलपुरुष से कहा–

स्वामिन्! आपने अमनस्क अवस्था का लक्षण बताया था किन्तु मैं इसे भूल गया। कृपाकर आप फिर बतलाइये।

मण्डलपुरुष ने बतलाया – यह अमनस्क बड़ा गुप्त है। इसे जान लेने वाला अपने जीवन में सफल हो जाता है। यह अमनस्क अवस्था शाम्भवी मुद्रा सहित होती है।

### परमात्मा की प्रतीति के लक्ष्य दर्शन से अमनस्क प्राप्ति

**परमात्मदृष्ट्या तत्प्रत्ययलक्ष्याणि दृष्ट्वा तदनु सर्वेशमप्रमेयमजं शिवं परमाकाशं निरालम्बमद्वयं ब्रह्मविष्णुरुद्रादीनामेकलक्ष्यं सर्वकारणं परं ब्रह्मात्मन्येव पश्यमानो गुहाविहरणमेवं निश्चयेन ज्ञात्वा भावाभावादिद्वन्द्वातीतः संविदित-मनोन्मन्यनुभवस्तदन्तरमखिलेन्द्रियक्षयवशादमनस्कसुखंब्रह्मानन्दसमुद्रे मनः प्रवाहयोगरूपनिवातस्थितदीपवदचलं परं ब्रह्म प्राप्नोति।।३।।**

परमात्मा में मन लगाने से परमात्मा की अनुभूति कराने वाले लक्षणों को देखकर योगी जान लेता है कि परमात्मा सब का ईश्वर है। वह घड़े आदि सामान्य वस्तुओं की भाँति मन की चित्तवृत्ति से नहीं जाना जा सकता अर्थात् अप्रमेय है। वह अजन्मा है, कल्याणस्वरूप है। व्यापक आकाश की तरह अत्यन्त विस्तार वाला या परमाकाश स्वरूप है। उसे किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं है। उसके जैसी कोई दूसरी सत्ता नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवता एकमात्र उन्हीं का ध्यान करते हैं। वह सृष्टि के सभी पदार्थों का कारण है। ऐसे परब्रह्म का अपनी आत्मा में साक्षात् करके योगी का मन अपनी बुद्धि रूपी गुफा में ब्रह्मवृत्ति के प्रकाशक ईश्वर रूप का साक्षात् या विहार करके उन्मनी अवस्था को प्राप्त कर लेता है अर्थात् संकल्प-विकल्पों से रहित उसका मन एकाग्र होकर अनुभव करता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ। यही मनोन्मनी अवस्था का अनुभव है। मनोन्मनी अवस्था में योगी; भाव या अभाव अर्थात् ब्रह्म है या नहीं है इस तरह के द्वन्दों से मुक्त हो जाता है। मनोन्मनी अवस्था का अनुभव भलीभांति हो जाने पर योगी की सभी इन्द्रियाँ विषय ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती हैं। अमनस्क अवस्था या ब्रह्म में लीन मन वाला योगी ब्रह्मानन्द के सागर में डूबकर वायुरहित स्थान में रखे दीपक की स्थिर ज्योति की भांति स्थायी रूप से परमब्रह्म को पा जाता है।

### मनोन्मनी से संसार के प्रति उदासीनता

**ततः शुष्कवृक्षवन्मूर्च्छानिद्रामयनिःश्वासोच्छ्वासाभावान्नष्टद्वन्द्वः सदाऽचञ्चलगात्रः परमशान्तिं स्वीकृत्य मनः प्रचारशून्यं परमात्मनि लीनं भवति।।४।।**

मनोन्मनी अवस्था प्राप्त योगी परब्रह्म का साक्षात् कर लेता है। इस अवस्था में उसका मन संसार के प्रति उदासीन हो जाता है। प्राणों और

अन्त:करण का लय हो जाने के कारण उसका शरीर बेहोशी और नींद की अवस्था जैसा हो जाता है। सूखे पेड़ की तरह उसका शरीर नहीं हिलता और श्वास-प्रश्वास रुक सा जाता है, इसलिये कामनाएँ और संकल्प आदि मन में नहीं उठते और वह सुख-दुख, गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्वों के प्रति उदासीन रहता है। उसके शरीर की बाह्य और आन्तरिक गतिविधियाँ रुक जाती हैं। वह परमशान्ति अनुभव करता है। उसका मन कामना और संकल्प रहित होकर परमात्मा के ध्यान में लीन हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त योगी दीर्घकाल तक निर्विकल्प समाधि में मग्न रहता है।

**निर्विकल्प समाधि :** ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के भान से रहित अखण्ड ब्रह्माकार अन्त:करण की वृत्ति की स्थिति निर्विकल्प-समाधि कहलाती है। निर्विकल्प समाधि के दो भेद हैं— **अद्वैत भावनारूप** और **अद्वैत अवस्थानरूप**। अन्त:करण की अद्वैत ब्रह्माकार अज्ञात वृत्ति सहित अद्वैत भावनारूप समाधि के अधिक अभ्यास से जब अन्त:करण की वृत्ति शान्त हो जाती है तब वृत्तिरहित अद्वैत अवस्थानरूप निर्विकल्प समाधि सिद्ध होती है। जैसे तपे हुए लोहे पर गिरी पानी की बूँद तप्त लोहे में प्रविष्ट हो जाती है वैसे ही अद्वैत भावनारूप समाधि के अभ्यास से वृत्ति, अत्यन्त आलोकमय ब्रह्म में लीन हो जाती है।

### तारकमार्ग से इन्द्रियविलय द्वारा मन का नाश

**पय:स्रावानन्तरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्वेन्द्रियवर्गे परिनष्टे मनोनाशं भवति तदेवामनस्कम्।।५।। तदनु नित्यशुद्धः परमात्माऽहमेवेति तत्त्वमसीत्युपदेशेन त्वमेवाहमहमेव त्वमिति तारकयोगमार्गेणाखण्डानन्दपूर्ण:कृतार्थो भवति।।६।।**

दूध निकाल लेने के बाद जैसे गाय के थन में दूध नहीं रहता उसी तरह समाधि में योगी की सभी इन्द्रियों के सम्बन्ध समाप्त हो जाने से मन नष्ट हो जाता है। मन की यह अवस्था ही अमनस्क अवस्था है। इस अवस्था में पहुँचा हुआ योगी अनुभव करता है कि मैं ही नित्यशुद्ध परमात्मा हूँ। 'तत्त्वमसि' अर्थात् 'वह ब्रह्म तुम ही हो' इस उपदेश के अनुसार तुम ही मैं हूँ और मैं ही तुम हो इस भावना से उसका मन लीन रहता है। वह तारकयोग के मार्ग से अखण्ड आनन्द से परिपूर्ण हृदय होकर कृतकृत्य अनुभव करता है।

**तारकज्ञान**

अज्ञान से पार कर देने वाला विवेक ज्ञान या आलोक विशेष तारक ज्ञान होता है। यह ज्ञान किसी निमित्त के बिना अपनी प्रतिभा से उत्पन्न होता है और संसार सागर से पार करा देता है। तारक ज्ञान, विवेकख्याति का पूर्वरूप होता है। इसे सूर्योदय से पहिले का आलोक कह सकते हैं।

**।।प्रथम खण्ड समाप्त।।**

# द्वितीय खण्ड

**उन्मनी प्राप्ति से योगी का ब्रह्मात्मभाव**

**परिपूर्णपरमाकाशमग्नमनाः प्राप्तोउन्मन्यवस्थः संन्यस्तसर्वेन्द्रिवर्गः अनेकजन्मार्जितपुण्यपुञ्जपक्व कैवल्यफलोऽखण्डानन्द निरस्त-सर्वक्लेशकश्मलो ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति।।१।।**

**त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात्परमात्मनः।**
**इत्युच्चरन्त्समालिङ्ग्य शिष्यं ज्ञप्तिमनीनयत्।।२।।**

परिपूर्ण परमाकाश में लीन मन वाले योगी की दीर्घकाल तक निर्विकल्प समाधि में बैठे रहने से शरीर की सभी इन्द्रियाँ अपना काम करना बन्द कर देती हैं। उसने अनेक जन्मों में जो पुण्य कमाये हैं उनके कारण उसे कैवल्य का फल अखण्डानन्द प्राप्त हो जाता है और उसके सारे क्लेश और दुख नष्ट हो जाते हैं। उसके हृदय में मैं ब्रह्म का ही अंश हूँ यह भावना सदा बनी रहती है। उसका जीवन सफल हो जाता है।

मण्डलपुरुष ने याज्ञवल्क्य से कहा— मैं पूर्णरूप से परमात्मभाव में मग्न रहता हूँ इसलिये तुम्हारे और मेरे बीच कोई भेद नहीं है। मण्डलपुरुष ने अपने शिष्य याज्ञवल्क्य का आलिंगन करके उसे मैं ब्रह्म ही हूँ यह ज्ञान करा दिया।

**।।तृतीय ब्राह्मण समाप्त।।**

# चतुर्थ ब्राह्मण

**पाँच आकाशों को जानने का फल**

**अथ ह याज्ञवल्क्यो मण्डलपुरुषं पप्रच्छ व्योमपञ्चकलक्षणं विस्तरेणानुब्रूहीति।।१।।**

अब याज्ञवल्क्य ने मण्डलपुरुष से पाँच आकाशों का विस्तृत ज्ञान देने का अनुरोध किया।

**स होवाचाकाशं पराकाशं महाकाशं सूर्याकाशं परमाकाशमिति पञ्च भवन्ति।।२।। सबाह्याभ्यन्तरमन्धकारमयमाकाशम्। सबाह्याभ्यन्तरे कालानलसदृशं पराकाशम्। सबाह्याभ्यन्तरेऽपरिमितद्युतिनिभं तत्त्वं महाकाशम्। सबाह्याभ्यन्तरे सूर्यनिभं सूर्याकाशम्। अनिर्वचनीयज्योतिः सर्वव्यापकं निरतिशयानन्द लक्षणं परमाकाशम्।।३।। एवमन्तर्लक्ष्य-दर्शनात्तद्रूपो भवति।।४।।**

मण्डल पुरुष ने बताया कि आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश और परमाकाश ये पाँच आकाश होते हैं। आकाश, अन्दर-बाहर से अन्धकार युक्त जड़ अस्तित्व वाला होता है। पराकाश अन्दर-बाहर से कालाग्नि के समान होता है। पराकाश; आकाश से भी अधिक व्यापक होने के कारण पराकाश कहलाता है। महाकाश, जड़ अस्तित्व और मोह अस्तित्व को ग्रस लेने के कारण लीला अस्तित्व वाला होता है। महाकाश; जड़ और मोह अस्तित्वों की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है और अपरिमित प्रकाश से परिपूर्ण तत्त्व होता है। सूर्याकाश में जड़, मोह और लीला ये तीनों अस्तित्व लीन हो जाते हैं और वह नित्य अस्तित्व वाला होता है। सूर्याकाश अन्दर-बाहर से सूर्य के प्रकाश जैसा तेजस्वी होता है। सूर्याकाश में सब पदार्थ दिखते हैं। परमाकाश में जड़भूति, मोहभूति, लीलाभूति और नित्यभूति ये चारों अस्तित्व समाये हुए हैं और चारों अस्तित्वों के त्याग देने योग्य अंश अर्थात् हेय अंश नष्ट हो जाते हैं। परमाकाश अवर्णनीय ज्योति से परिपूर्ण सर्वत्र व्यापक तथा अत्यधिक आनन्द से या सर्वोत्कृष्ट आनन्द से परिपूर्ण है। अन्तर्लक्ष्य दर्शन के साथ समाधि मग्न होने पर योगी इन आकाशों के स्वरूप वाला हो जाता है।

### राजयोग का सर्वस्व

**नवचक्रं षडाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।**
**सम्यगेतन्नजानाति स योगी नामतो भवेत्।।५।।**

जो मूलाधारआदि छह चक्रों और तालु, आकाश और भ्रू इन तीन चक्रों अर्थात् नौ चक्रों, मन एकाग्र करने के शरीर के हृदय, नाभि, भ्रूमध्य, मस्तक, सिर और ब्रह्मरन्ध्र इन छह स्थानों या आधारों को और अन्तर, बहि: तथा मध्य इन तीन लक्ष्यों एवं आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश और परमाकाश इन पाँच आकाशों को भली भांति नहीं जानता, वह नाम का ही योगी होता है।

**।।चतुर्थ ब्राह्मण समाप्त।।**

## पञ्चम ब्राह्मण

### परमात्मा में मनोलय की अभ्यास विधि

**सविषयं मनो बन्धाय निर्विषयं मुक्तये भवति।।१।। अतः सर्वंजगत् चित्तगोचरम्। तदेव चित्तं निराश्रयं मनोमन्यवस्थापरिपक्वं लययोग्यं भवति।।२।। तल्लयं परिपूर्णे मयि समभ्यसेत्। मनोलयकारणमहमेव।।३।।**

सांसारिक भोग-विषयों में लगा मन संसार के जन्म-मरण के बन्धन में डालता है। संसार के भोग-ऐश्वर्यों से मुख मोड़ लेने पर मन साधक को मुक्ति पथ पर ले जाता है। मन संसार के सभी पदार्थों को जान लेता है। जो चित्त योगाभ्यास से शुद्ध हो जाता है वही मन निराश्रय अर्थात् भोग-विषयों के सम्बन्ध से रहित होकर और मनोमनी अवस्था में परिपक्व बनकर परमात्मा के ध्यान में लीन हो सकता है। मुझ पूर्णरूप परमात्म तत्व में मन को लीन करने का अभ्यास करना चाहिये। मनोलय का कारण मैं ही हूँ।

**अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।**
**ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तरगतं मनः।।४।।**
**यन्मस्त्रिजगत्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्म कृत्।**
**तन्मनो विलयं याति तद् विष्णोः परमं पदम्।।५।।**

अनाहत नाद की जो ध्वनि है उस ध्वनि के अन्दर ज्योति अर्थात् प्रत्यक् ज्योति या परमात्मा का प्रकाश विद्यमान है। इस परमात्मप्रकाश में मन लगाया जाता है। जो मन तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण है वह मन परमात्मा में लगाने से परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ पद में लीन हो जाता है।

**अमनस्क अभ्यास से ब्रह्मावस्थान सिद्धि**

**तल्लयाच्छुद्धाद्वैतसिद्धि र्भेदाभावात्। एतदेव परमतत्त्वम्।।६।। स तज्ज्ञो बालोन्मत्तपिशाचवज्जडवृत्त्या लोकमाचरेत्।।७।। एवमनस्काभ्यासेनैव नित्यतृप्तिरल्पमूत्रपुरीषमितभोजन दृढाङ्गाजाड्यनिद्रादृग्वायुचलनाभाव ब्रह्मदर्शनात्ज्ञात सुखस्वरूप सिद्धिर्भवति।।८।।**

जो मन द्वैत भाव का कारण है उसके लय हो जाने पर आत्मा और परमात्मा के बीच भेद नष्ट हो जाता है, शुद्धद्वैत भावना परिपक्व हो जाती है। यही परमतत्त्व की प्राप्ति है। शुद्धाद्वैत भावना में लीन योगी परमतत्त्व को जान लेता है। इस मनोन्मनी अवस्था को छिपाने के लिये योगी को बच्चे की भांति, पागल की तरह या पिशाच जैसा आचरण करना चाहिये। अमनस्क अवस्था के अभ्यास से योगी निर्विकल्पसमाधि में मग्न रहता है। उसके मन में किसी प्रकार की अतृप्ति या कामना नहीं रहती इसलिये वह सदा तृप्त अवस्था में या सदा सन्तुष्ट अवस्था में रहता है। समाधि भंग होने पर भी वह केवल कुम्भक प्राणायाम से शरीर का मल-मूत्र कम कर देता है। वह बहुत कम भोजन करता है। फिर भी योग की महिमा से उसके शरीर के हाथ-पैर आदि सभी अंग शक्तिसम्पन्न रहते हैं। वह जाड्यनिद्रा अर्थात् तमोमयी नींद की अवस्था में नहीं रहता अर्थात् उसे साधारण व्यक्ति की तरह नींद की आवश्यकता नहीं रहती और अजाड्यनिद्रा में अर्थात् निर्विकल्प समाधि में मग्न रहता है। निर्विकल्पसमाधि में मग्न योगी की दृष्टि अपने लक्ष्य ब्रह्म पर स्थिर रहती है और श्वास-प्रश्वास बहुत सूक्ष्म या विरल हो जाता है। समाधिस्थ योगी को अवाङ्मानसगोचर सुखस्वरूप ब्रह्ममात्र में स्थिति की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस सिद्धि और ब्रह्मसाक्षात्कार का सुख साधारण मनुष्यों की कल्पना में भी नहीं आ सकता और इस सुख का वाणी से वर्णन भी नहीं किया जा सकता।

**एवं चिरसमाधिजनित ब्रह्मामृतपानपरायणोऽसौ संन्यासी परमहंस अवधूतो भवति। तद्दर्शनेन सकलं जगत् पवित्रं भवति। तत् सेवापरोऽज्ञोऽपि मुक्तो भवति। तत्कुलमेकोत्तरशतं तारयति। तन्मातृपितृजायाऽपत्यवर्गं च मुक्तं भवतीत्युपनिषत्।।९।।**

निर्विकल्पसमाधि में बहुत समय तक मग्न रहने वाला योगी ब्रह्मामृतरस का पान करता है। ऐसा संन्यासी योगी परमहंस अवधूत हो जाता है। ऐसे योगी के दर्शन से सारा जगत पवित्र हो जाता है। ऐसे योगी की सेवा करने वाला अज्ञानी व्यक्ति भी मुक्त हो जाता है। योगी अपने कुल की एक सौ एक अर्थात् अनेक पीढ़ियों को भी भवसागर के पार उतार देता है। उसके माता-पिता, पत्नी और सन्तान भी मुक्त हो जाती हैं।

**।।पञ्चम ब्राह्मण समाप्त।।**

**।।मण्डलब्राह्मणोपनिषद् समाप्त।।**

१३

# महावाक्योपनिषद्

**ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम..... इति शान्तिः!!**

**यन्महावाक्यसिद्धान्त महाविद्याकलेवरम्।**
**विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे।।**

### अपरोक्षानुभवोपदेशाधिकारी

**अथ होवाच भगवान् ब्रह्माऽपरोक्षानुभवपरोपनिषदं व्याख्यास्यामः।।१।। गुह्याद्गुह्यतरमेषा न प्राकृतायोपदेष्टव्या। सात्विकायान्तर्मुखाय परिशुश्रूषवे।।२।।**

महावाक्य उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। किसी उत्तम अधिकारी को न पाकर ब्रह्मा ने इस अपरोक्ष अनुभव सिद्ध उपनिषद् को प्रकट किया। उपनिषद ज्ञान अत्यन्त गोपनीय है। इसे साधारण व्यक्ति को नहीं बताना चाहिये। सात्विक वृत्ति वाले अन्तर्मुख और गुरु सेवापरायण व्यक्ति को यह ज्ञान देना चाहिये।

### विद्या-अविद्या का स्वरूप और कार्य

**अथ संसृतिबन्धमोक्षयोर्विद्याऽविद्ये चक्षुषी उपसंहृत्य विज्ञाय अविद्यालोकाण्डस्तमोदृक्।।३।। तमो हि शारीरप्रपञ्चमाब्रह्मस्थावरान्तमनन्ताखिलाजाण्डभूतम्। निखिलनिगमोदित सकामकर्मव्यवहारो लोकः।।४।।**

इस जगत को सत्य या वास्तविक मानने वाला व्यक्ति प्रवृत्ति मार्ग पर चलता है और जगत को मिथ्या मानने वाला निवृत्ति मार्ग पर।

प्रवृत्ति मार्ग जन्म-मरण के बन्धन का कारण है और निवृत्तिमार्ग मोक्ष का।

बन्धन का कारण अविद्याचक्षु है। मोक्ष का कारण विद्याचक्षु है। विद्याचक्षु संसार के प्रति उदासीन कराती है अत: मोक्ष का कारण है। अविद्याचक्षु इस जगत की सत्ता को मानती है, इसलिये बन्धन का कारण है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सत्य नहीं है यह ज्ञान हो जाने पर साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

यद्यपि तीनों कालों में अविद्याचक्षु का अस्तित्व नहीं होता फिर भी अविद्याचक्षु के कारण यह ब्रह्माण्ड सच्चा और वास्तविक दिखता है। अविद्याचक्षु की यह तमोदृष्टि अर्थात् अज्ञान अन्धकार वाली या तमोगुण वाली दृष्टि ब्रह्म साक्षात्कार में रुकावट बनी रहती है। यह तमोदृष्टि शरीर प्रपञ्च कहलाती है, क्योंकि ज्ञान हो जाने पर या प्रलयकाल आने पर यह जगत-प्रपञ्च जीर्ण-शीर्ण या नष्ट हो जाता है। अविद्याचक्षु का यह तामसिक अज्ञान ब्रह्म से लेकर स्थावर वस्तुओं तक अनन्त और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का कारण है। इसी अज्ञान के कारण मनुष्य शास्त्रों में बताये गये यज्ञ, तप, दान आदि सकाम कर्म करते हैं।

### हंसविद्या के अभ्यास से परमात्मा के दर्शन

**नैषोऽन्धकारोऽयमात्मा। विद्या हि काण्डान्तरादित्यो ज्योतिर्मण्डलं ग्राह्यं नापरम्।।५।। असावादित्यो ब्रह्मेत्यजपयोपहितं हंसः सोऽहम्। प्राणापानाभ्यां प्रतिलोमानुलोमाभ्यां समुपलभ्यैवं सा चिरं लब्ध्वा त्रिवृदात्मनि ब्रह्मण्यभिध्यायमाने सच्चिदानन्दः परमात्माऽऽविर्भवति।।६।।**

अनात्मप्रपंच या जगत की सत्ता नष्ट हो जाने पर आत्मा अन्धकार पूर्ण नहीं रहता, क्योंकि आत्मा स्वयं प्रत्यक् प्रकाश या ईश्वरीय प्रकाश का ही अंश है। कुत्सित अविद्या या काण्ड से विद्या या निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान ढका हुआ है। सूर्य; ब्रह्म की चिन्मात्र ज्योति का प्रतीक है अत: सूर्य की ज्योति से निर्गुण ब्रह्म का ही ज्ञान ग्रहण करना चाहिये सगुण ब्रह्म का नहीं। क्योंकि सगुण ब्रह्म के ज्ञान से ब्रह्म साक्षात्कार देर से होता है। सूर्य ही ब्रह्म का प्रतीक है। यह सूर्य नाड़ी के द्वारा प्राणी के शरीर में प्रवेश करता है। श्वास-प्रश्वास के द्वारा तथा अनुलोम-विलोम प्राणायाम के द्वारा प्राण और अपान वायुओं से हंस-हंस का अजपाजप बिना किसी प्रयत्न के होता रहता है। नाक से श्वास निकलने पर 'ह' जैसा शब्द होता है और श्वास भरने पर

'स' जैसा। इस प्रकार हमारे श्वास-प्रश्वास के साथ 'हंस' 'हंस' की ध्वनि अपने आप होती रहती है। यह अजपा-गायत्री या अजपा जाप कहलाता है। दिन-रात के चौबीस घण्टों में हम श्वास-प्रश्वास के साथ २१६०० बार अजपा जाप करते हैं। इस अजपा जाप से बहुत समय बाद सम्यक् ज्ञान या तत्त्व ज्ञान होता है। तत्त्व ज्ञान हो जाने पर व्यष्टि-समष्टि और नाम-रूप आदि के भेद नष्ट हो जाते हैं तब निर्गुण ब्रह्ममात्र ही शेष रह जाता है। सत्व, रज और तम, प्रकृति के इन तीन गुणों से ढकी आत्मा में निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते रहने से सच्चिदानन्द परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

**तत्त्वज्ञान की वृत्ति का स्वरूप**

**सहस्रभानुमच्छुरिता पूरितत्वादलिप्या पारावार पूर इव। नैषा समाधिः। नैषा योगसिद्धिः। नैषा मनोलयः। ब्रह्मैक्यं तत्।।७।। आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे। सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः। नामानि कृत्वाऽभिवदन्यास्ते।।८।। धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रः प्रविद्वानप्रदिशश्चतस्रः। तमेवं विद्वान् अमृत इह भवति। नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।।९।। यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवाः। तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्ते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।१०।।**

ब्रह्ममात्र में समाप्त होने वाली तत्त्वज्ञान की वृत्ति एक साथ उदित हजारों सूर्यों की ज्योति के समान प्रत्यक् ब्रह्म के प्रकाश से व्याप्त होती है। पारावारपूर तरंगहीन समुद्र की भांति ब्रह्ममात्र रसरूप से परिपूर्ण होने के कारण तत्त्वज्ञान की यह वृत्ति लीन या नष्ट नहीं होती क्योंकि यह वृत्ति ब्रह्मरूप ही है। तत्त्वज्ञान की यह वृत्ति समाधि नहीं है। न ही योगसिद्धि है और न ही यह वृत्ति मनोलय है। तत्त्वज्ञान की यह वृत्ति तो ब्रह्म के साथ एकता ही है। तत्त्वज्ञान की यह वृत्ति अन्धकार से परे चमकती हुई उदय और अस्त से रहित चिदादित्यस्वरूप सच्चिदानन्दरूप से परिपूर्ण शेष रह जाती है। विद्वान् पुरुष अपने से भिन्न अविद्या और इसके दिखाई देने वाले नाम-रूप आदि कार्यों को मिथ्या जानकर समझ जाता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ सत् नहीं है तथा जो अभिन्न की भांति विद्यमान है वही केवल ब्रह्म शेष रहता है। ब्रह्मा ने बहुत पहिले ही यह बात बतलाई थी। पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं-प्रदिशाओं में विख्यात यश वाले इन्द्र आदि देवता भी यह जानते हैं कि निष्पाप और रजोगुण रहित ब्रह्मवित्

विद्वान ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। परमात्मा का यह ज्ञान होते ही ब्रह्मवित् अमर परमात्मपद प्राप्त कर लेता है। श्रुति भी कहती है कि **''ज्ञानसमकालमेव मुक्तः कैवल्यं याति''** अर्थात् ब्रह्मज्ञान होते ही मुक्त पुरुष कैवल्य प्राप्त कर लेता है। मनुष्य अज्ञान के कारण बन्धन में पड़ा रहता है और ज्ञान होने पर मुक्त हो जाता है। ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त मोक्ष का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इन्द्र आदि देवता भी जानते हैं कि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी वास्तविक नहीं है। इसलिये उन्होंने ज्ञान यज्ञ के द्वारा ब्रह्म प्राप्ति के लिये यज्ञ किया। हम ब्रह्म के ही अंश है मन में यह भावना दृढ़ हो जाने पर वे जीवन्मुक्त होकर कृतार्थ हो गये। जीवन्मुक्त पद प्राप्त इन देवों के जीवन में घमण्ड न करना, सरल व्यवहार रखना, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि गुण प्रधान धर्म बन गये। जिस स्वर्ग लोक में जीवन्मुक्त साध्य देव हैं वहीं पर ब्रह्मज्ञानी और महिमाशाली देव भी अपना प्रकाश फैला रहे हैं।

### प्रणवहंस ज्योति ध्यान

**सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः।**
**आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावदोम्।।११।।**

जो परमज्योति है वह मैं चिदर्क हूँ अर्थात् चैतन्ययुक्त सूर्य के समान तेजस्वी हूँ। अर्कज्योति मैं शिव हूँ। शिवार्कज्योति मैं शुक्र हूँ अर्थात् प्रत्यगभिन्नपरमात्मा सर्वज्योति स्वरूप हूँ। प्रत्यक् प्रकाश से अभिन्न पर प्रकाश स्वरूप मैं प्रणव जप के द्वारा निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करता हूँ।

### हंसज्योति विद्या का फल

**य एतदथर्वशिरोऽधीते। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। तत् सायं प्रातः प्रयुञ्जानः पापोऽपापो भवति। मध्यन्दिनमादित्याभिमुखोऽधीयानः पञ्चमहापातकोपपातकात् प्रमुच्यते। सर्ववेदपारायणं पुण्यं लभते।**

**श्री महाविष्णुसायुज्यमवाप्नोति इत्युपनिषत्।।१२।।**

जो एकाग्र मन से हंसज्योति विद्या का सवेरे अध्ययन करता है तो उसके रात में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। शाम के समय अध्ययन करने

पर दिन के पाप नष्ट हो जाते हैं। शाम और सवेरे अध्ययन करने पर पापी भी पापमुक्त हो जाता है। दोपहर के सूर्य के सामने बैठकर अध्ययन करने वाला पाँच महापापों और छोटे-मोटे पापों से छुटकारा पा जाता है। सभी वेदों का पारायण करने से पुण्य मिलता है। उसे श्रीमहाविष्णु का सायुज्य या साथ प्राप्त होता है।

**।।महावाक्योपनिषद् समाप्त।।**

१४

# योगकुण्डल्युपनिषद्

**ओ३म् सह नाववतु.......इति शान्तिः।**

**योगकुण्डल्युपनिषद्योगसिद्धिहृदासनम्।**
**निर्विशेषब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमिति चिन्तये।।**

योगकुण्डली उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध है। योगसिद्धि चाहने वाले साधकों के लिये यह उपनिषद् बहुत उपयोगी है। यह उपनिषद् निर्विशेष ब्रह्म तत्त्व स्वमात्र को बताती है।

## प्रथम अध्याय

**हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः।**
**तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तद्वावपि विनश्यतः।।१।।**

वासना और प्राणों की गति इन दो कारणों से चित्त चंचल रहता है। इनमें से एक के भी नष्ट हो जाने पर वासना और प्राणों पर अधिकार हो जाता है।

**तयोरादौ समीरस्य जयं कुर्यान्नरः सदा।**
**मिताहारश्चासनं च शक्तिचालस्तृतीयकः।।२।।**

मनुष्य को वासना और श्वास-प्रश्वास इन दोनों में से सबसे पहिले प्राणवायु को वश में करना चाहिये। इसके लिये मिताहार, आसनों और शक्तिचालन मुद्रा का नियमित अभ्यास करना चाहिये।

**मिताहार**

**एतेषां लक्षणं वक्ष्ये शृणु गौतम सादरम्।**
**सुस्निग्ध मधुराहारश्चतुर्थांशावशेषकः।।३।।**

**भुज्यते शिव सम्प्रीत्यै मिताहारः स उच्यते।**

हे गौतम! मैं मिताहार, आसन और शक्ति चालन मुद्रा के लक्षण बतलाता हूँ। तुम इन्हें ध्यान से सुनो।

घी-दूध वाले और मीठे पदार्थ योगी को आधे पेट खाने चाहियें। पेट का चौथाई भाग पानी के लिये और चौथा भाग वायु के लिये खाली छोड़ देना चाहिये। हमें ईश्वर और जीवात्मा की प्रसन्नता के लिये भोजन करना चाहिये, स्वाद के लिये नहीं।

**पद्म और वज्रासन**

**आसनं द्विविधं प्रोक्तं पद्मं वज्रासनं तथा।।४।।**
**ऊर्वोरूपरि चेद्धत्ते उभे पादतले यथा।**
**पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपापप्रणाशनम्।।५।।**

योगाभ्यास के लिये पद्मासन और वज्रासन उपयोगी हैं। दोनों पैरों को जांघों पर रखकर सीधे बैठना पद्मासन कहलाता है। इसके अभ्यास से शरीर के सारे पाप या रोग नष्ट हो जाते हैं।

**वामाङ्घ्रिमूलं कन्दाधः अन्यं तदुपरि क्षिपेत्।**
**समग्रीवशिरःकायो वज्रासनमितीरितम्।।६।।**

बांयी जांघ के सिरे को कन्द के नीचे लाकर इसके ऊपर दूसरी जांघ रखकर सिर, गर्दन और शरीर को सीधा रखकर बैठने से वज्रासन होता है।

शक्तिचालन के दो उपाय

**कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तां तु संचालयेद् बुधः।**
**स्वस्थानादाभ्रुवोर्मध्यं शक्तिचालनमुच्यते।।७।।**

कुण्डलिनी को ही शक्ति कहते हैं। ज्ञानी साधक को इसे जगाना चाहिये। मूलाधार चक्र से लेकर भ्रूमध्य तक अर्थात् आज्ञाचक्र तक के चक्रों को भेदना शक्तिचालन कहलाता है।

**तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्वत्यास्तु चालनम्।**
**प्राणरोधमथाभ्यासादृज्वी कुण्डलिनी भवेत्।।८।।**

शक्तिचालन के दो मुख्य उपाय हैं। सरस्वती नाड़ी को चलाना और प्राणायाम का अभ्यास। इन दोनों उपायों का निरन्तर अभ्यास करने से सर्पाकार कुण्डलिनी जागकर सीधी हो जाती है।

**सरस्वतीचालन**

**तयोरादौ सरस्वत्याश्चालनं कथयामि ते।**
**अरुन्धत्यैव कथिता पुराविद्भिः सरस्वती।।९।।**
**यस्याः संचालनेनैव स्वयं चलति कुण्डली।**

मैं पहिले तुम्हें सरस्वती चालन की विधि बताता हूँ। अरुन्धती नाड़ी को ही सरस्वती नाड़ी कहते हैं। इस नाड़ी के चलाने से कुण्डलिनी स्वयं जाग जाती है।

**इडायां वहति प्राणे बद्ध्वा पद्मासनं दृढम्।।१०।।**
**द्वादशाङ्गुलदैर्ध्यं च अम्बरं चतुरङ्गुलम्।**
**विस्तीर्य तेन तन्नाडीं वेष्टयित्वा ततः सुधीः।।११।।**

जब श्वास इडा अर्थात् बांये स्वर में चल रहा हो तो योगी को पद्मासन लगाकर निश्चल बैठना चाहिये। बारह अंगुल लम्बे और चार अंगुल चौड़े वस्त्र को अरुन्धती नाड़ी के चारों ओर लपेटना चाहिये।

**अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु हस्ताभ्यां धारयेद्दृढम्।**
**स्वशक्त्या चालयेद् वामे दक्षिणेन पुनः पुनः।।१२।।**

अंगूठे और अंगूठे से अगली अंगुलि तर्जनी से और दोनों हाथों से नाक के स्वर पकड़ने चाहियें। फिर अपनी शक्ति लगाकर श्वास को दांये स्वर से बांये सुर में बार-बार चलाने का अभ्यास करना चाहिये।

इस प्रकरण में सरस्वती चालन की विधि स्पष्ट नहीं है। घेरण्ड संहिता के मुद्रा कथन प्रकरण में शक्तिचालन मुद्रा के वर्णन में कहा गया है कि नाभि पर कपड़ा लपेटना चाहिये। नाक के दोनों सुरों से प्राणवायु भरकर प्राणवायु को बलपूर्वक अपान वायु में मिला देना चाहिये। अश्विनी मुद्रा से गुदा को तबतक सिकोड़े रखना चाहिये जबतक प्राण और अपान वायु सुषुम्ना में न चली जाय। हठयोग प्रदीपिका के मुद्रा विधान प्रकरण के

अनुसार शक्तिचालन की विधि इस प्रकार बताई गई है:-

वज्रासन में बैठकर दोनों पैरों को एड़ियों से कुछ ऊपर दोनों हाथों से कस कर पकड़ना चाहिये। फिर कन्दस्थान को जोर से दबाना चाहिये। मनुष्य शरीर में, शरीर के बीच से नौ अंगुल ऊपर कन्द होता है। कन्द नाभि के समीप होता है।

**मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयाच्चालयेत् सुधीः।**
**ऊर्ध्वमाकर्षयेत् किंचित् सुषुम्नां कुण्डलीगता।।१३।।**

साधक को दो मुहूर्त तक सरस्वती चालन का अभ्यास करना चाहिये। इस अभ्यास में कुण्डली को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराने के लिये मूलाधार को ऊपर खींचना चाहिये।

**तेन कुण्डलिनी तस्याः सुषुम्नाया मुखं व्रजेत्।**
**जहाति तस्मात् प्राणोऽयं सुषुम्नां व्रजति स्वतः।।१४।।**

यह अभ्यास करने से कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना के मुख में चली जाती है। सुषुम्ना के मुख पर सोई हुई कुण्डलिनी के सुषुम्ना में प्रविष्ट होने पर प्राणवायु स्वयं सुषुम्ना नाड़ी में चली जाती है।

**तुन्दे तु ताणं कुर्याच्च कण्ठसंकोचनेकृते।**
**सरस्वत्याश्चालनेन वक्षसश्चोदूर्ध्वगो मरुत्।।१५।।**

पेट में उड्डीयान बन्ध लगाकर और जालन्धर बन्ध से गला बन्द करके सरस्वती चालन का अभ्यास करने से फेफड़ों की प्राणवायु ऊपर जाने लगती है। सरस्वती चालन के अभ्यास में मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध और जालन्धर बन्ध ये तीनों बन्ध लगाये जाते हैं।

**सूर्येण रेचयेद् वायुं सरस्वत्यास्तु चालने।**
**कण्ठसंकोचनं कृत्वा वक्षःसश्चोर्ध्वगो मरुत्।।१६।।**

सरस्वती चालन के अभ्यास में प्राणायाम करते हुए सूर्य नाड़ी से अर्थात् दांये स्वर से प्राणवायु निकालनी चाहिये। जालन्धर बन्ध लगाने से फेफड़ों में भरी वायु ऊपर जाने लगती है।

हठयोग के कुछ ग्रन्थों में इडा, पिंगला आदि दस प्राणवहा नाड़ियों

के अतिरिक्त पाँच और नाड़ियों को भी अर्थात् पन्द्रह नाड़ियों को प्राणवाहिनी नाड़ियाँ माना गया है। इनके नाम है— शूरा, सरस्वती, वारुणी, विश्वोदरी और चित्रा। शूरा नाड़ी नाक से भ्रूमध्य तक जाती है। सरस्वती नाड़ी जीभ के अगले सिरे तक है। सरस्वती नाड़ी के द्वारा जीभ बोलती है और ज्ञान को प्रकट करती है। इसलिये अच्छे वक्ताओं और विद्वानों के लिये कहा जाता है कि उनकी जिह्वा पर सरस्वती स्वयं विराजमान है।

प्राणवहा पन्द्रह नाड़ियों में भी इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ प्रधान हैं। इन तीन नाड़ियों का क्रियात्मक योग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन तीनों में सुषुम्ना सबसे मुख्य और श्रेष्ठ है। यह नाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म है। सुषुम्ना, गुदा के पास से मेरुदण्ड के भीतर होती हुई मस्तिष्क में चली गई है। गुदा के पास से ही इडा बांयी ओर से और पिंगला दांयी ओर से नाक के मूल तक अर्थात् भ्रूमध्य तक चली गयी है। भ्रूमध्य में इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीनों नाड़ियाँ आपस में मिलती हैं। सुषुम्ना को सरस्वती, इडा को गंगा और पिंगला को यमुना भी कहते हैं। गुदा के समीप जहाँ से ये तीनों नाड़ियाँ अलग-अलग चलती हैं, उस स्थान को **'मुक्त त्रिवेणी'** और भ्रूमध्य में जहाँ ये तीनों नाड़ियाँ मिलती हैं उस स्थान को **'युक्तत्रिवेणी'** कहते हैं।

**तस्मात् संचालयेन्नित्यं शब्दगर्भां सरस्वतीम्।**
**यस्याः सञ्चालनेनैव योगी रोगैः प्रमुच्यते।।१७।।**

**गुल्मं जलोदरप्लीहा ये चान्ये तुन्दमध्यगाः।**
**सर्वे तु शक्तिचालेन रोगा नश्यन्ति निश्चयम्।।१८।।**

योगी को शब्दगर्भा सरस्वती चालन का अभ्यास करना चाहिये। सरस्वती चालन से योगी के रोग नष्ट हो जाते हैं। पेट की गांठ, जलोदर, तिल्ली बढ़ना आदि पेट के जितने भी रोग है वे सब शक्तिचालन से निश्चय ही समाप्त हो जाते हैं।

### प्राणायाम के भेद

**प्राणरोधमथेदानीं प्रवक्ष्यामि समासतः।**
**प्राणश्च देहगो वायुरायामः कुम्भकः स्मृतः।।१९।।**

अब मैं संक्षेप में प्राणायाम का वर्णन करूँगा। हमारे शरीर में चलने वाला वायु प्राण वायु कहलाता है। कुम्भक या इसे रोकने का अभ्यास प्राणायाम होता है।

**स एव द्विविधः प्रोक्तः सहितः केवलस्तथा।**
**यावत् केवल सिद्धिः स्यात् तावत् सहितमभ्यसेत्।।२०।।**

**कुम्भक प्राणायाम** दो प्रकार का होता है **सहित कुम्भक** और **केवल कुम्भक**। जबतक केवल कुम्भक प्राणायाम सिद्ध नहीं होता तब तक सहित कुम्भक का अभ्यास करे।

**सूर्योज्जायी शीतली च भस्त्री चैव चतुर्थिका।**
**भेदैरेव समं कुम्भो यः स्यात् सहितकुम्भकः।।२१।।**

सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली और भस्त्रिका ये चार प्रकार के प्राणायाम हैं। इन प्राणायामों में रेचक, पूरक के साथ जो कुम्भक अर्थात् प्राणवायु को रोकने का अभ्यास किया जाता है वह सहित कुम्भक प्राणायाम है।

**पवित्रे निर्जने देशे शर्करादिविवर्जिते।**
**धनुः प्रमाणपर्यन्ते शीताग्निजलवर्जिते।।२२।।**
**पवित्रे नात्युच्चनीचे ह्यासने सुखदे सुखे।**
**बद्धपद्मासनं कृत्वा सरस्वत्यास्तुचालनम्।।२३।।**

साफ-सुथरे, रेत, कंकर, पत्थर आदि से रहित एकान्त स्थान में प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। योगाभ्यास का स्थान एक धनुष जितना होना चाहिये। वहाँ पर सर्दी-गर्मी या सीलन नहीं होनी चाहिये। सुख से बैठने का आसन बहुत ऊँचा या बहुत नीचा नहीं होना चाहिये। ऐसे आसन पर पद्मासन लगाकर सरस्वती चालन का अभ्यास करना चाहिये।

## सूर्य भेदी प्राणायाम

**दक्षनाड्या समाकृष्य बहिष्ठं पवनं शनैः।**
**यथेष्टं पूरयेद् वायुं रेचयेदिडया ततः।।२४।।**

नाक के दांये सुर से बाहर की वायु धीरे-धीरे खींचनी चाहिये। इस प्रकार फेफड़ों में काफी वायु भरकर इसे बांये सुर से धीरे-धीरे झटके के

बिना निकाल देना चाहिये।

**कपालशोधने वाऽपि रेचयेत् पवनं शनैः।**
**चतुष्कं वातदोषं तु कृमिदोषं निहन्ति च।।२५।।**
**पुनः पुनरिदं कार्यं सूर्य भेदमुदाहृतम्।**

कपाल भाति में भी फेफड़ों में भरा वायु धीरे-धीरे निकालना चाहिये। यह प्राणायाम चार प्रकार के वातदोषों को और पेट के कीड़ों को नष्ट कर देता है। यह सूर्य भेदी प्राणायाम बार-बार करना चाहिये।

**उज्जायी कुम्भक**

**मुखं संयम्य नाडिभ्यामाकृष्य पवनं शनैः।।२६।।**
**यथा लगति कण्ठात्तु हृदयावधि सस्वनम्।**
**पूर्ववत् कुम्भयेत् प्राणं रेचयेदिडया ततः।।२७।।**

मुँह बन्द करके दांये-बांये दोनों सुरों से धीरे-धीरे वायु भरनी चाहिये। श्वास भरते समय गले को सिकोड़कर शब्द करते हुए वायु को मुँह से गले में और गले से हृदय तक ले जाना चाहिये। वायु को मुख, गले और हृदय में थोड़ी देर तक रोकना चाहिये। श्वास भरकर थोड़ी देर श्वास रोककर बांये सुर से वायु निकाल देनी चाहिये।

**शीर्षोदितानलहरं गलश्लेष्महरं परम्।**
**सर्वरोगहरं पुण्यं देहानलविवर्धनम्।।२८।।**
**नाडीजलोदरं धातुगतदोषविनाशनम्।**
**गच्छतस्तिष्ठत कार्यमुज्जाय्याख्यं तु कुम्भकम्।।२९।।**

उज्जायी कुम्भक प्राणायाम करने से रक्तचाप के बढ़ने से सिर का दर्द दूर हो जाता है। गले में कफ के कारण हुए खांसी-जुकाम आदि ठीक हो जाते हैं। शरीर के सारे रोग नष्ट हो जाते हैं और शरीर की गर्मी बढ़ जाती है। शरीर की नाड़ियों के दोष, जलोदर रोग और शरीर की धातुओं में उत्पन्न सभी विकार उज्जायी प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं। यह प्राणायाम बैठकर या चलते-फिरते भी किया जा सकता है।

**शीतली कुम्भक**

**जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुम्भकादनु।**
**शनैस्तु घ्राणरन्ध्राभ्यां रोचयेदनिलं सुधीः।।३०।।**

जीभ को दोनों ओठों से बाहर निकालकर और इसे पक्षी की चोंच जैसा नोकीला और पतला करके वायु खींचनी चाहिये। इस प्रकार पूरक करके थोड़ी देर तक श्वास रोककर नाक के दोनों सुरों से वायु को धीरे-धीरे निकालना (रेचक) चाहिये।

**गुल्मप्लीहादिकान्दोषान्क्षयं पित्तं ज्वरं तृषाम्।**
**विषाणि शीतली नाम कुम्भकोऽयं निहन्ति च।।३१।।**

पेट की गांठ (रसौली), जिगर-तिल्ली के रोग, तपेदिक, बुखार, पित्त-विकार, भूख-प्यास और सांप आदि विषैले जन्तुओं के विष शीतली कुम्भक प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं।

**भस्त्रिका कुम्भक**

**ततः पद्मासनं बद्ध्वा समग्रीवोदरः सुधीः।**
**मुखं संयम्य यत्नेन प्राणं घ्राणेन रेचयेत्।।३२।।**

पद्मासन लगाकर गर्दन और पीठ एक सीध में रखकर मुंह बन्द करके नाक के एक सुर से श्वास भरकर दूसरे सुर से श्वास निकाल दे।

**यथा लगति कण्ठात्तु कपाले सस्वनं ततः।**
**वेगेन पूरयेत् किंचित् हृत्पद्मावधि मारुतम्।।३३।।**

रेचक करते समय श्वास इस प्रकार निकालना चाहिये जिससे हृदय, गले और सिर तक रेचक का प्रभाव अनुभव हो। रेचक के बाद श्वास को फिर हृदय तक भरना चाहिये।

**पुनर्विरिचयेत् तद्वत् पूरयेच्च पुनः पुनः।**
**यथैव लोहकाराणां भस्त्रा वेगेन चाल्यते।।३४।।**

जैसे लुहार धौंकनी को जल्दी-जल्दी चलाता है वैसे ही शब्द करते हुए नाक से पूरक कर रेचक करना चाहिये।

**तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत् पवनं धिया।**
**यदा श्रमो भवेत् देहे तदा सूर्येण पूरयेत्।।३५।।**

अपने शरीर के प्राणवायु का भस्त्रिका प्राणायाम की तरह समझदारी के साथ रेचक-पूरक करना चाहिये। जब शरीर भस्त्रिका प्राणायाम से थक जाये तब दांये सुर से पूरक करना चाहिये।

**यथोदरं भवेत् पूर्णं पवनेन तथा लघु।**
**धारयन्नासिका मध्यं तर्जनीभ्यां दृढम्।।३६।।**

दांये सुर से श्वास वेग से भरना चाहिये जिससे पेट वायु से जल्दी ही भर जाये। पूरक के बाद अंगूठे से दांया सुर और अनामिका और कनिष्ठिका (छोटी अंगुलियों) से बांया सुर अच्छी तरह बन्द करके कुम्भक करना चाहिये। नाक बन्द करने के लिये मध्यमा (बीच की अंगुली) और तर्जनी (अंगूठे के बाद की अंगुली) इस्तेमाल नहीं करनी चाहिये।

**कुम्भकं पूर्ववत् कृत्वा रेचयेदिडयानिलम्।**
**कण्ठोत्थितानलहरं शरीराग्निविवर्धनम्।।३७।।**

पहिले की तरह कुम्भक करके इडा नाड़ी से अर्थात् बांये सुर से श्वास धीरे-धीरे निकालना चाहिये। यह प्राणायाम गले की गर्मी दूर करता है और शरीर की गर्मी बढ़ाता है।

**कुण्डलीबोधकं पुण्यं पापघ्नं शुभदं सुखम्।**
**ब्रह्मनाडीमुखान्तस्थकफाद्यर्गलनाशनम्।।३८।।**

भस्त्रिका कुम्भक प्राणायाम के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जल्दी ही जग जाती है। यह प्राणायाम पुण्य प्रदान करता है पापों को नष्ट करता है, शरीर के लिये शुभ और सुखप्रद है। इसके अभ्यास से सुषुम्ना नाड़ी के मुख पर जमा कफ आदि मल नष्ट हो जाते हैं।

**गुणत्रयसमुद्भूत ग्रन्थित्रय विभेदकम्।**
**विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकं त्विदम्।।३९।।**

सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से सुषुम्ना नाड़ी में जो तीन गांठे हैं उन्हें भस्त्रिका प्राणायाम नष्ट कर देता है। इन तीन ग्रन्थियों को ब्रह्म ग्रन्थि,

विष्णु ग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि कहा जाता है। इसलिये इन तीन ग्रन्थियों को तोड़ने के लिये भस्त्रिका प्राणायाम विशेषरूप से करना चाहिये।

**तीन बन्ध**

**चतुर्णामपि भेदानां कुम्भके समुपस्थिते।**
**बन्धत्रयमिदं कार्यं योगिभिर्वीतकल्मषैः।।४०।।**

चारों प्रकार के कुम्भक प्राणायामों में निपुण योगियों को तीन बन्ध लगाने चाहियें।

**प्रथमो मूलबन्धस्तु द्वितीयोड्डीयाणाभिधः।**
**जालन्धरस्तृतीयस्तु तेषां लक्षणमुच्यते।।४१।।**

पहिला बन्ध मूलबन्ध है। दूसरा बन्ध उड्डियाण है और तीसरा जालन्धर बन्ध है। इन तीनों के लक्षण बताये जाते हैं।

**मूलबन्ध**

**अधोगतिमपानं वै ऊर्ध्वगं कुरुते बलात्।**
**आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूलबन्धोऽयमुच्यते।।४२।।**

मूलाधार अर्थात् गुदा-प्रदेश को सिकोड़ने से नीचे जाने वाला अपान वायु मूलबन्ध की शक्ति से ऊपर उठने लगता है। योगी इस अभ्यास को मूलबन्ध कहते हैं।

**अपाने चोर्ध्वगे याते सम्प्राप्ते वह्निमण्डले।**
**ततोऽनलशिखा दीर्घा वर्धते वायुना हता।।४३।।**

मूलबन्ध लगाने से नीचे जाने वाली अपान वायु के ऊपर उठने पर नाभि के नीचे त्रिकोण में स्थित अग्नि (जठराग्नि) अपान वायु से प्रदीप्त हो जाती है।

**ततो यातौ वह्न्यपानौ प्राणमुष्णस्वरूपकम्।**
**तेनात्यन्तप्रदीप्तेन ज्वलनो देहजस्तथा।।४४।।**

अपान वायु से देह के इस त्रिकोण की अग्नि प्रदीप्त होने पर अपान वायु और अग्नि ऊपर उठकर प्राणवायु से मिल जाते हैं। प्राणवायु से मिलकर शरीर की अग्नि और अधिक प्रदीप्त हो जाती है।

**तेन कुण्डली सुप्ता संतप्ता सम्प्रबुध्यते।**
**दण्डाहतभुजङ्गीव निश्वस्य ऋजुतां व्रजेत्।।४५।।**

शरीर की इस प्रदीप्त अग्नि के ताप से सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जागकर उसी प्रकार सीधी हो जाती है जैसे डण्डे की मार से सर्पिणी फुफकार मारकर सीधी हो जाती है।

**बिलप्रवेशतो यत्र ब्रह्मनाड्यन्तरं व्रजेत्।**
**तस्मान्नित्यं मूलबन्धः कर्तव्यो योगिभिः सदा।।४६।।**

डण्डे की मार से सीधी हुई सर्पिणी जैसे अपने बिल में घुस जाती है उसी प्रकार जागी हुई कुण्डलिनी सीधी होकर सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है। अतः योगियों को मूलबन्ध का अभ्यास सदा करना चाहिये।

### उड्डीयाण बन्ध

**कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तूड्डीयाणकः।**
**बन्धो येन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः।।४७।।**

कुम्भक के अन्त में और रेचक के प्रारम्भ में उड्डीयाण बन्ध लगाना चाहिये। इस बन्ध से प्राण उड़कर सुषुम्ना में चला जाता है।

**तस्मादुड्डीयाणाख्योऽयं योगिभिः समुदाहृतः।**
**सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद्दृढम्।।४८।।**

इसीलिये योगी इस बन्ध को उड्डीयाण कहते हैं। वज्रासन में बैठकर दोनों पैरों को एड़ी के पास हाथों से कसकर पकड़ लेना चाहिये।

**गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत्।**
**पश्चिमं ताणमुदरे धारयेद् हृदये गले।।४९।।**

श्वास निकाल कर पेट को पीठ की ओर खींचना चाहिये और नाभि के पास कन्द पर दबाव डालना चाहिये। यह खिंचाव हृदय और गले तक होना चाहिये।

**शनैः शनैर्यदा प्राणस्तुन्दसन्धिं निगच्छति।**
**तुन्ददोषं विनिर्धूय कर्तव्यं सततं शनैः।।५०।।**

उड्डीयाण बन्ध के अभ्यास से जब प्राणवायु पेट और फेफड़ों के बीच

के स्थान पर या सन्धि पर जाने लगता है तब पेट के दोष दूर हो जाते हैं इसलिये उड्डीयाण बन्ध का अभ्यास धीरे-धीरे लगातार करना चाहिये।

## जालन्धर बन्ध

**पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः।**
**कण्ठसंकोचरूपोऽसौ वायुमार्गनिरोधकः।।५१।।**

पूरक अर्थात् श्वास भरने के बाद जालन्धर बन्ध लगाना चाहिये। यह बन्ध ठोडी को कण्ठकूप या गले के छेद में दबाकर लगाया जाता है। जालन्धर बन्ध लगाने से श्वास-प्रश्वास का रास्ता बन्द हो जाता है।

**अधस्तात् कुञ्चनेनाशु कण्ठसंकोचने कृते।**
**मध्ये पश्चिमताणेन स्यात् प्राणो ब्रह्मनाडिगः।।५२।।**

नीचे मूलाधार में मूलबन्ध लगाने से, गले में जालन्धर बन्ध लगाने से और बीच में उड्डीयाण बन्ध लगाने से अर्थात् ये तीनों बन्ध कुम्भक प्राणायाम में एक साथ लगाने से प्राणवायु सुषुम्ना में प्रविष्ट होने लगता है।

**पूर्वोक्तेन क्रमेणैव सम्यगासनमास्थितः।**
**चालनं तु सरस्वत्याः कृत्वा प्राणं निरोधयेत्।।५३।।**

ऊपर बताये हुए क्रम से ठीक आसन में बैठकर सरस्वती चालन करके प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

## कुम्भक अभ्यास में संख्या नियम

**प्रथमे दिवसे कार्यं कुम्भकानां चतुष्टयम्।**
**प्रत्येकं दशसंख्याकं द्वितीये पञ्चभिस्तथा।।५४।।**

पहिले दिन सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली और भस्त्रा ये चारों कुम्भक प्राणायाम दस-दस बार करने चाहियें। दूसरे दिन इन चारों प्राणायामों की संख्या पाँच-पाँच बढ़ा देनी चाहिये।

**विंशत्यलं तृतीयेऽह्नि पञ्चवृद्ध्या दिने दिने।**
**कर्तव्यः कुम्भको नित्यं बन्धत्रयसमन्वितः।।५५।।**

तीसरे दिन पाँच और बढ़ाकर ये चारों प्राणायाम बीस-बीस बार तक प्रतिदिन करने चाहियें। प्राणायामों के साथ तीनों बन्ध भी लगाने चाहियें।

**योगाभ्यास के विघ्न और इनका त्याग**

**दिवासुप्तिर्निशायां तु जागरादतिमैथुनात्।**
**बहुसंक्रमणं नित्यं रोधान्मूत्रपुरीषयोः।।५६।।**

दिन में सोना, रात में जागना, अत्यधिक मैथुन, मल-मूत्र रोकने की आदत, और बहुत दूर तक चलना।

**विषमाशनदोषाश्च प्रयासप्राणचिन्तनात्।**
**शीघ्रमुत्पद्यते रोगः स्तम्भयेद्यदि संयमी।।५७।।**

ठीक प्रकार का भोजन न करने से तथा जबर्दस्ती प्राणवायु रोकने से प्राणायाम के अभ्यास में रोग जल्दी हो जाते हैं।

**योगाभ्यासेन मे रोग उत्पन्न इति कथ्यते।**
**ततोऽभ्यासं त्यजेदेवं प्रथमं विघ्नमुच्यते।।५८।।**

योगाभ्यास करने से मुझे रोग हो गया यह कहकर साधक अभ्यास करना छोड़ देता है। यह योगाभ्यास का पहिला विघ्न होता है।

**द्वितीयं संशयाख्यं च तृतीयं च प्रमत्तता।**
**आलस्याख्यं चतुर्थं च निद्रारूपं तु पञ्चमम्।।५९।।**

दूसरा विघ्न सन्देह, तीसरा लापरवाही, चौथा आलस्य और पांचवा नींद।

**षष्ठं तु विरतिर्भ्रान्तिः सप्तमं परिकीर्तितम्।**
**विषयं चाष्टमं चैव अनाख्यं नवमं स्मृतम्।।६०।।**

छठा विघ्न विरति अर्थात् योगाभ्यास के प्रति उदासीनता, सातवां विघ्न भ्रान्ति अर्थात् योग से सम्बद्ध बातों को ठीक से न समझना, आठवां विषयभोग तथा नवां अनाख्य है। अनाख्य शब्द का तात्पर्य यहाँ क्या है यह विचारणीय है। इसी प्रकार विरति के बारे में भी सन्देह होना स्वाभाविक है, क्योंकि पातंजल योग दर्शन समाधि पाद के तीसवें सूत्र में जो नौ योग विघ्न

बताये गये हैं उनमें एक विघ्न अविरति है न कि विरति। अविरति का अर्थ व्यासभाष्य में "**चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्द्धः**" कहा गया है। सरल शब्दों में इसका अर्थ विषयभोग की तृष्णा या लगाव है।

**अलब्धिर्योगतत्त्वस्य दशमं प्रोच्यते बुधैः।**
**इत्येतत् विघ्नदशकं विचारेण त्यजेद् बुधः।।६१।।**

चित्त का समाधि में न पहुँच सकना दसवां योगविघ्न है। इन दस विघ्नों पर अच्छी तरह सोचकर इन्हें छोड़ देना चाहिये। पातंजल योगदर्शन में अलब्धि को **'अलब्धभूमि'** कहा गया है।

**योगाभ्यास से कुण्डलिनी बोध**

**प्राणाभ्यासस्ततः कार्यो नित्यं सत्वस्थया धिया।**
**सुषुम्ना लीयते चित्तं तथा वायुः प्रधावति।।६२।।**

सात्विकगुण वाली बुद्धि से प्राणायाम का अभ्यास नित्य करना चाहिये। प्राणायाम के अभ्यास से प्राणवायु सुषुम्ना में चलने लगता है और मन भी सुषुम्ना में लीन हो जाता है।

**शुष्के मले तु योगी च स्याद् गतिश्चलिता ततः।**
**अधोगतिमपानं वै ऊर्ध्वगं कुरुते बलात्।।६३।।**

शरीर और इन्द्रियों के दोष तथा मल केवल कुम्भक के अभ्यास से दूर हो जाने पर प्राण वायु सुषुम्ना में चलने लगता है। नीचे की ओर जाने वाली अपान वायु जब मूलबन्ध लगाने से ऊपर जाने लगती है।

**आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूलबन्धोऽयमुच्यते।**
**अपानश्चोर्ध्वगो भूत्वा वह्निना सह गच्छति।।६४।।**

गुदा प्रदेश को सिकोड़ कर मूलबन्ध लगाया जाता है। मूलाधार में मूलबन्ध के अभ्यास से अपान वायु उठकर जठराग्नि के साथ मिल जाती है।

**प्राणस्थानं ततो वह्निः प्राणापानौ च सत्वरम्।**
**मिलित्वा कुण्डलीं याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृतिः।।६५।।**

अपान वायु से युक्त अग्नि हृदय में पहुँचती है। वहाँ पर प्राण वायु से

मिल जाती है। प्राण और अपान वायु से युक्त यह अग्नि मूलाधार में कुण्डल मारकर सोई हुई कुण्डली के पास जाती है।

**तेनाग्निना च संतप्ता पवनेनैव चालिता।**
**प्रसार्य स्वशरीरं तु सुषुम्नावदनान्तरे।।६६।।**

इस अग्नि के ताप से और प्राण अपान वायु के वेग से कुण्डलिनी जाग जाती है और अपना शरीर सीधा करके सुषुम्ना के मुख में प्रविष्ट होती है।

**तीन ग्रन्थियों के भेद से कुण्डलिनी का सहस्रार में प्रवेश**

**ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्वा रजोगुणसमुद्भवम्।**
**सुषुम्नावदने शीघ्रं विद्युल्लेखेव संस्फुरेत्।।६७।।**

अब कुण्डलिनी शक्ति रजोगुण से उत्पन्न ब्रह्मग्रन्थि को भेद कर सुषुम्ना के मुख में बिजली की तरह चमकती है। हृदय के पास अनाहत चक्र में शरीर का विशेष जोड़ ब्रह्मग्रन्थि कहलाता है।

**विष्णुग्रन्थिं प्रयात्युच्चैः सत्वरं हृदिसंस्थिता।**
**ऊर्ध्वं गच्छति यच्चास्ते रुद्रग्रन्थिं तदुद्भवम्।।६८।।**

हृदय में स्थित कुण्डलिनी यहाँ से उठकर विष्णुग्रन्थि अर्थात् कण्ठ के विशुद्ध चक्र की ग्रन्थि को भेद देती है। कण्ठ की विष्णुग्रन्थि को भेदकर कुण्डलिनी आज्ञाचक्र के मूल में या भ्रूमध्य में उत्पन्न रुद्रग्रन्थि में पहुँच जाती है।

**भ्रुवोर्मध्यं तु संभिद्य याति शीतांशुमण्डलम्।**
**अनाहताख्यं यच्चक्रं दलैः षोडशभिर्युतम्।।६९।।**

कुण्डलिनी भ्रूमध्य की रुद्रग्रन्थि को भेदकर चन्द्र मण्डल में या सोमचक्र में पहुँचती है। अनाहत नाम वाला यह सोमचक्र सोलह पंखुड़ियों वाला है।

**तत्र शीतांशु संजातं द्रवं शोषयति स्वयम्।**
**चलिते प्राणवेगेन रक्तं पित्तं रवेर्ग्रहात्।।७०।।**

जब प्राणवायु हृदय में चन्द्रमा से उत्पन्न द्रव को सोख लेता है तब प्राण वायु के वेग से रक्त आदि में तेजी से गति होने लगती है और सूर्य रक्त तथा पित्त को सोख डालता है।

**यातेन्दुचक्रं यत्रास्ते शुद्धश्लेष्माद्रवात्मकम्।**
**तत्र सिक्तं ग्रसत्युष्णं कथं शीतस्वभावकम्।।७१।।**

अब प्राणवायु के चन्द्रचक्र में पहुँचने पर प्राणवायु इस चक्र के शुद्ध श्लेष्मा जैसे द्रव को सोख लेता है। चन्द्र चक्र; आज्ञाचक्र और सहस्रार चक्र के बीच में है। सहस्रार की पीयूष ग्रन्थि से जो अमृत रस टपकता है उसे यहाँ पर शुद्ध श्लेष्मा द्रव कहा गया है। अग्नि मिली प्राणवायु की गर्मी से यह रस शीतल नहीं रहता।

**तथैव रभसा शुक्लं चन्द्ररूपं हि तप्यते।**
**ऊर्ध्वं प्रवहति क्षुब्धा तदैवं भ्रमतेतराम्।।७२।।**

प्राणवायु की गर्मी से शुक्ल चन्द्र चक्र गर्म हो जाता है और इससे अमृतधारा बहने लगती है तथा चंचल कुण्डलिनी ऊपर जाने लगती है।

**तस्यास्वादनवशात् चित्तं बहिष्ठं विषयेषु यत्।**
**तदेव परमं भुक्त्वा स्वस्थः स्वात्मरतो युवा।।७३।।**

इस अमृतधारा का स्वाद पाकर विषय भोगों में लगा चित्त इस सर्वश्रेष्ठ अमृतरस का पान करके आत्मस्वरूप में मग्न हो जाता है।

**प्रकृत्यष्टकरूपं च स्थानं गच्छति कुण्डली।**
**क्रोडीकृत्य शिवं याति क्रोडीकृत्य विलीयते।।७४।।**

प्रकृति के भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ तत्त्वों को छोड़कर कुण्डली सहस्रार में पहुँच जाती है और दृष्टि, मन, प्राण आदि को समेट कर सहस्रार में लीन हो जाती है।

**इत्यधोर्ध्वरजः शुक्लं शिवे तदनु मारुतः।**
**प्राणापानौ समौ याति सदा जातौ तथैव च।।७५।।**

जब कुण्डलिनी; दृष्टि, मन, प्राण आदि को समेटकर सहस्रार में लीन हो जाती है तब ऊपर स्थित सौर गुण युक्त जीवतत्त्व रज और चन्द्रगुण युक्त शुक्ल ऐश्वरतत्त्व अपने से भिन्न अशिव या अमंगलकारी तत्वों का ग्रास हो जाने पर परमात्मा में लीन हो जाते हैं। इसके बाद प्राण भी लीन हो जाता है। सहज प्राणादि का लय कैसे होता है? इस शंका के उत्तर में कहा है जैसे दिन-रात सन्धिकाल में समान या बराबर हो जाते हैं

उसी प्रकार तुर्यस्वरूपावस्था में या निर्विकल्पक अवस्था में प्राण और अपान सम होकर तथा अपनी ऊर्ध्वगति और अधोगति को त्याग कर निर्व्यापार या चेष्टारहित हो जाते हैं। यही प्राणदि की विलयावस्था होती है।

**भूतेऽल्पे चाप्यनल्पे वा वाचके त्वतिवर्धते।**
**धावयत्यखिला वाता अग्निमूषाहिरण्यवत्।।७६।।**

फिर सूक्ष्म भूतों में फैला हुआ प्राणवायु और सूक्ष्म संस्कार रूप बचे मन और वाणी योगी के शरीर में काम करती हैं। कुठाली में पिघले सोने की तरह योगी की प्राणवायुएँ उसके शरीर में सिर से पैर तक फैल जाती हैं।

### समाधि में चिन्मात्र का अनुभव

**आधिभौतिकदेहं तु आधिदैविकविग्रहे।**
**देहोऽतिविमलतां याति चातिवाहिकतामियात्।।७७।।**

समाधि में निमग्न योगी पाँच महाभूतों से बना अपना आधिभौतिक शरीर; आधिदैविक शरीर में लीन कर देता है अर्थात् परमात्मभाव में लीन कर देता है। समाधिस्थ योगी अपने मलिन देहभाव को छोड़कर विमल ब्रह्मभाव से युक्त हो जाता है और योगी का चित्त ब्रह्मभाव से अर्थात् अतिवाहिकता से परिपूर्ण हो जाता है। अतिवाहिकता वृत्ति या विमल ब्रह्मभाव योगी को अपने चारों ओर अनुभव होता है।

**जाड्यभावविनिर्मुक्तममलं चिन्मयात्मकम्।**
**तस्यातिवाहिकं मुख्यं सर्वेषां तु मदात्मकाम्।।७८।।**

इस अवस्था में शरीर का जड़ भाव या अज्ञान नष्ट हो जाता है उसका मन निर्मल और चिन्मय भाव से परिपूर्ण रहता है। उसके मन की मेरे-तेरे की भावना नष्ट हो जाती है और उसके मन में अतिवाहिकता वृत्ति या ब्रह्मभाव ही सबसे प्रधान हो जाता है।

**जायाभवविनिर्मुक्तिः कालरूपस्य विभ्रमः।**
**इति तं स्व स्वरूपा हि मती रज्जुभुजङ्गवत्।।७९।।**

समाधिस्थ योगी जन्म-मरण की भावना से और काल के भय की

आशंका या सन्देह से छुटकारा पा जाता है। उसकी बुद्धि सभी प्रकार के भ्रमों, सन्देहों और आशंकाओं को छोड़कर अपने वास्तविक रूप में या स्वरूप में उसी प्रकार स्थिर हो जाती है जैसे रस्सी में साँप का भ्रम दूर हो जाने पर मन आश्वस्त हो जाता है।

**मृषैवोदेति सकलं मृषैव प्रविलीयते।**
**रौप्यबुद्धिः शुक्तिकायां स्त्रीपुंसोर्भ्रमतो यथा।।८०।।**

इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश का भाव उसी तरह झूठा है जैसे सीपी में चांदी की भ्रान्ति या आत्मा का स्त्री-पुरुष का भ्रम।

**पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि।**
**स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः।।८१।।**

इस स्थिति में पिण्ड अर्थात् देह और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बीच एकता अनुभव होने लगती है। सूक्ष्म शरीर और आत्मा के बीच, निद्रा और अस्पष्ट स्थिति के बीच और स्वयं प्रकाशमान आत्मा तथा चिदात्मा के बीच भेद समाप्त हो जाता है।

### समाधि योग

**शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाशुभा।**
**मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दवत्।।८२।।**
**मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमन्विता।**

कुण्डलिनी नाम की शक्ति कमलनाल के तन्तु जैसी बहुत सूक्ष्म है। यह शक्ति मूलाधार से सहस्रार तक फैली हुई सुषुम्ना नाड़ी के सिरे को दबाकर मूलाधार में सोती रहती है। कुण्डलिनी अपने मुख से कमल के बीज की तरह मूलकन्द को ग्रस लेती है।

**पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः।।८३।।**
**वायुमूर्ध्वगतं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः।**
**वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।।८४।।**

साधक पद्मासन में बैठकर सावधान मन से अपनी गुदा को सिकोड़ कर अर्थात् मूलबन्ध लगाकर और कुम्भक प्राणायाम करके अपान वायु को

ऊपर उठाता है। अपान वायु के झोंके से स्वाधिष्ठान चक्र की अग्नि प्रदीप्त हो उठती है।

**ज्वलनाघातपवनाघातरुन्निद्रितोऽहिराट्।**
**ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः।।८५।।**

शरीर की प्रदीप्त अग्नि के ताप और अपान वायु के झोंको से सांप की तरह कुण्डली मार कर सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है और सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर हृदय के पास अनाहत चक्र की ब्रह्मग्रन्थि को भेद कर ऊपर जाने लगती है और कण्ठ या विशुद्ध चक्र की ग्रन्थि विष्णुग्रन्थि को भेदती है।

**रुद्रग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्।**
**सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।।८६।।**
**सैवावस्था परा ज्ञेया सैव निवृत्तिकारिणी।।८७।।**

ऊपर उठती हुई कुण्डलिनी आज्ञाचक्र की ग्रन्थि रुद्रग्रन्थि को भेदकर छहों चक्रों को भी भेद देती है और सहस्रार में पहुँच कर शिव के साथ आनन्दमग्न हो जाती है। कुण्डलिनी शक्ति का निर्गुण ब्रह्म के साथ मिलन या ऐक्यभाव ही मोक्षदायिनी और संसार के बन्धनों से मुक्त कराने वाली परावस्था है।

**।।प्रथम अध्याय समाप्त।।**

# द्वितीय अध्याय

### खेचरी विद्या

**अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि विद्यां खेचरिसंज्ञिकाम्।**
**यथा विज्ञातवानस्या लोकेऽस्मिन्नजरामरः।।१।।**

अब मैं खेचरी विद्या को बतलाता हूँ। इस विद्या को जानकर मनुष्य इस लोक में अजर-अमर हो जाता है।

**मृत्युव्याधिजराग्रस्तो दृष्ट्वा विद्यामिमां मुने।**
**बुद्धिं दृढतरां कृत्वा खेचरीं तु समभ्यसेत्।।२।।**

मृत्यु, रोग और बुढ़ापे से पीड़ित व्यक्ति को खेचरी मुद्रा का अभ्यास दृढनिश्चय के साथ करना चाहिये।

**जरामृत्युगदघ्नो यः खेचरीं वेत्ति भूतले।**
**ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव तदभ्यासप्रयोगतः।।३।।**

जो व्यक्ति शास्त्र पढ़कर और गुरु से खेचरी की क्रियात्मक विधि सीखकर खेचरी का नियमित अभ्यास करता है वह बुढापे, मृत्यु और रोगों से छूट जाता है।

**तं मुने सर्वभावेन गुरुं मत्वा समाश्रयेत्।**
**दुर्लभा खेचरी विद्या तदभ्यासोऽपि दुर्लभः।।४।।**

इसलिये साधक को पूरी निष्ठा के साथ सद्गुरु का सहारा लेना चाहिये। खेचरी विद्या बड़ी कठिनाई से जानी जाती है और इसका अभ्यास भी बहुत कठिन है।

**अभ्यासं मेलनं चैव युगपन्नैव सिध्यति।**
**अभ्यासमात्र निरता न विन्दते ह मेलनम्।।५।।**

खेचरी विद्या का अभ्यास और इसका उपयोग एक साथ सिद्ध नहीं होता। केवल अभ्यास में लगे रहने से खेचरी का उपयोग नहीं हो पाता।

**अभ्यासं लभते ब्रह्मञ्जन्मजन्मान्तरे क्वचित्।**
**मेलनं तत्तु जन्मनां शतान्तेऽपि न लभ्यते।।६।।**

कोई-कोई साधक कई जन्मों के बाद खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना सीखता है किन्तु इसका उपयोग करना सौ जन्मों में भी नहीं आता।

**अभ्यासं बहुजन्मान्ते कृत्वा तद्भावसाधितम्।**
**मेलनं लभते कश्चिद्योगी जन्मान्तरे क्वचित्।।७।।**

परमात्मभाव से खेचरीमुद्रा का अभ्यास कई जन्मों तक करने के बाद किसी-किसी योगी को अनेक जन्मों के बाद इस विद्या का उपयोग करना आ पाता है।

**यदा तु मेलनं योगी लभते गुरुवक्त्रतः।**
**तदा तत् सिद्धिमाप्नोति यदुक्ता शास्त्रसंततौ।।८।।**

जब योगी को गुरुमुख से इसका उपयोग करने का उपाय पता चल जाता है तब उसे शास्त्रों में कही गई सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

**ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव मेलनं लभते यदा।**
**तदा शिवत्वमाप्नोति निर्मुक्तः सर्वसंसृतेः।।९।।**

जब योगी शास्त्रों से और गुरु से खेचरी के उपयोग का उपाय जान लेता है तब वह शिवस्वरूप हो जाता है और संसार के सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

**शास्त्रं विनापि संबोद्धुं गुरवोऽपि न शक्नुयुः।**
**तस्मात् सुदुर्लभतरं लभ्यं शास्त्रमिदं मुने।।१०।।**

गुरु भी शास्त्रों के बिना खेचरी विद्या को नहीं जान पाते। अतः खेचरी विद्या बतलाने वाले दुर्लभ ग्रन्थ प्राप्त करने चाहियें।

**यावन्न लभ्यते शास्त्रं तावद्गां पर्यटेत् यतिः।**
**यदा संलभ्यते शास्त्रं तदा सिद्धिः करे स्थिता।।११।।**

जबतक ग्रन्थ न मिलें तब तक योगी को भूमण्डल में शास्त्र ढूंढने चाहियें। शास्त्र मिल जाने पर सिद्धि प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती।

**न शास्त्रेण विना सिद्धिर्दृष्टा चैव जगत् त्रये।**
**तस्मान्मेलनदातारं शास्त्रदातारमच्युत।।१२।।**
**तदभ्यासप्रदातारं शिवं मत्वा समाश्रयेत्।**
**लब्ध्वा शास्त्रमिदं मह्यमन्येषां न प्रकाशयेत्।।१३।।**

शास्त्रों के अध्ययन के बिना तीनों लोकों में भी किसी को सफलता नहीं मिलती। इसलिये हठयोग के ग्रन्थों का तात्पर्य समझाने वाले और खेचरी विद्या का उपयोग सिखाने वाले गुरु का परमात्मा के रूप में सहारा लेना चाहिये। मेरे इस शास्त्र ज्ञान को समझकर यह ज्ञान किसी और को नहीं बताना चाहिये।

**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं विजानता।**
**यत्रास्ते च गुरुर्ब्रह्मन्दिव्ययोगप्रदायकः।।१४।।**
**तत्र गत्वा च तेनोक्त विद्यां संगृह्य खेचरीम्।**

**तेनोक्तः सम्यगभ्यासं कुर्यादादावतन्द्रितः।।१५।।**

इसलिये प्रयत्नपूर्वक इस खेचरी विद्या को गुप्त रखना चाहिये। जहाँ कहीं भी इस दिव्ययोग का उपदेश देने वाले गुरु हों साधक को वहाँ जाकर खेचरी विद्या का अभ्यास मन लगाकर करना चाहिये।

**खेचरी मन्त्र**

**अनया विद्यया योगी खेचरी सिद्धिभाग्भवेत्।**
**खेचर्या खेचरीं युञ्जन् खेचरी बीजपूरया।।१६।।**
**खेचराधिपतिः भूत्वा खेचरेषु सदा वसेत्।**

खेचरी विद्या जानकर योगी खेचरी को सिद्ध कर लेता है। जो साधक खेचरी बीज सहित खेचरी का अभ्यास करता है वह आकाश का स्वामी बनकर आकाशवासियों के बीच रहता है।

**खेचरावसथं वह्निमम्बुमण्डलभूषितम्।।१७।।**
**आख्यातं खेचरी बीजं तेन योगः प्रसिद्ध्यति।**

खेचर का वाचक 'ह' है। खेचरों का आवसथ अर्थात् धारणा शक्ति का प्रतीक 'ई' है और अग्नि का वाचक 'र' है तथा अम्बुमण्डल या पानी की बूंद अनुस्वार है। इस प्रकार ह+ई+र+म् (अनुस्वार) अर्थात् 'ह्रीं' खेचरी साधना सफल होती है।

**सोमांशनवकं वर्णं प्रतिलोमेन चोद्धरेत्।।१८।।**
**तस्मात् त्र्यंशकमाख्यातमक्षरं चन्द्ररूपकम्।**
**तस्मादप्यष्टमं वर्णं विलोमेन परं मुने।।१९।।**
**तथा तत्परमं विद्धि तदादिरपि पञ्चमी।**
**इन्दोश्च बहुभिन्ने च कूटोऽयं परिकीर्तितः।।२०।।**

सोमांश या चन्द्र बीज का अक्षर या वर्ण 'स' है। 'स' से उल्टी गिनती करने पर (प्रतिलोम) नवां अक्षर 'भ' है। 'स' से फिर उल्टा गिनने पर आठवां अक्षर 'म' है। 'म' से उल्टा गिनने पर पाँचवा अक्षर 'प' है। फिर चन्द्र बीज 'स' है। ये सब वर्ण अनुस्वार सहित हैं और इस खेचरी

मन्त्र का अन्तिम अक्षर 'क्षं' है। इन सातों वर्णों को मिलाकर ह्रीं, भं, सं, पं, सं, क्षं खेचरी मन्त्र होता है।

**गुरूपदेशलभ्यं च सर्वयोगप्रसिद्धिदम्।**
**यत्तस्य देहजा माया निरुद्धकरणाश्रया।।२१।।**

खेचरी मन्त्र का उपदेश सद्गुरु से ही मिलता है और यह योग से प्राप्त सभी सफलताएँ प्रदान करता है।

जिस योगी की देह से उत्पन्न माया उसकी इन्द्रियों के सहारे देह में रहती है।

**स्वप्नेऽपि न लभेत्तस्य नित्यं द्वादश जप्यतः।**
**य इमां पञ्चलक्षाणि जपेदपि सुनियन्त्रितः।।२२।।**
**तस्य श्री खेचरी सिद्धि स्वयमेव प्रवर्तते।**
**नश्यन्ति सर्वविघ्नानि प्रसीदन्ति च देवताः।।२३।।**

वह योगी इस खेचरी बीज को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं कर सकता।

जो योगी इस खेचरी मन्त्र का बारह दिनों तक प्रतिदिन पाँच लाख जप करता है उसे बिना किसी प्रयत्न के खेचरी सिद्धि हो जाती है। उसकी सारी विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं और देवता उससे प्रसन्न हो जाते हैं।

**वलीपलितनाशश्च भविष्यति न संशयः।**
**एवं लब्ध्वा महाविद्यामभ्यासं कारयेत्ततः।।२४।।**

यह खेचरी महाविद्या प्राप्त करके जो इसका निरन्तर अभ्यास करता है उसके शरीर की झुर्रियाँ और सिर के सफ़ेद बाल निश्चय से नष्ट हो जाते हैं।

**अन्यथा क्लिश्यते ब्रह्मन्न सिद्धिः खेचरीपथे।**
**यदभ्यासविधौ विद्यां न लभेद्यः सुधामयीम्।।२५।।**

जो साधक अभ्यास की इस विधि से अमृतमयी खेचरीविद्या को प्राप्त नहीं कर पाता वह दुख पाता है।

**ततः संमेलकादौ च लब्ध्वा विद्यां सदा जपेत्।**
**नान्यथा रहितो ब्रह्मन्न किंचित् सिद्धिभाग्भवेत्।।२६।।**

खेचरी विद्या का उपयोग करने की विधि और खेचरी के बीज मन्त्र

का जप योगी को सदा करना चाहिये। खेचरी विद्या से रहित योगी को कोई भी सिद्धि नहीं मिलती।

**यदिदं लभ्यते शास्त्रं तदा विद्यां समाश्रयेत्।**
**ततस्तदोदितां सिद्धिमाशु तों लभते मुनिः।।२७।।**

शास्त्रों का ज्ञान पाकर साधक को खेचरी विद्या सीखनी चाहिये। शास्त्र ज्ञान पाकर खेचरी विद्या की सिद्धियाँ जल्दी मिल जाती हैं।

**खेचरी का अभ्यासक्रम**

**तालुमूलं समुत्कृष्य सप्तवासरमात्मवित्।**
**स्वगुरूक्तप्रकारेण मलं सर्वं विशोधयेत्।।२८।।**

अपने गुरु द्वारा बताई गई विधि के अनुसार योगी को तालु के अन्तिम छोर या तालुमूल को उठाकर सात दिन तक गले और नाक आदि का सारा कफ निकाल देना चाहिये।

**स्नुहीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं स्निग्धनिर्मलम्।**
**समादाय ततस्तेन रोममात्रं समुच्छिनेत्।।२९।।**

स्नुहीपत्र (सेहुण्ड के पत्ते) जैसे बहुत तेज, चिकने और साफ-सुथरे ब्लेड जैसे आपरेशन करने के औजार से जीभ के नीचे के तन्तु को काटा जाता है। नीचे के दांतों और जीभ की जड़ में जिस पतले तन्तु से जीभ जुड़ी हुई है उसे पहिले दिन बहुत थोड़ा सा काटा जाता है।

**हित्वा सैन्धवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रकर्षयेत्।**
**पुनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समुच्छिनेत्।।३०।।**

जीभ की जड़ का तन्तु काटने के बाद सेंधा नमक और हरड़ का चूरा घाव पर लगाना चाहिये। सात दिन बाद इस तन्तु को थोड़ा सा फिर काटना चाहिये।

**एवं क्रमेण षण्मासं नित्योद्युक्तः समाचरेत्।**
**षाण्मासात् रसनामूलं शिराबन्धं प्रणश्यति।।३१।।**

जीभ की जड़ का तन्तु काटने की प्रक्रिया नियमित रूप से छह

महीनों तक करनी चाहिये। छह मास बाद जीभ की जड़ की नाड़ी पूरी कट जाती है।

**अथ वागीश्वरीधाम शिरो वस्त्रेण वेष्टयेत्।**
**शनैरुत्कर्षयेद्योगी कालवेलाविधानतः।।३२।।**

इसके बाद योगी को जीभ के अगले भाग को कपड़े से पकड़ कर समय-समय पर धीरे-धीरे खींचना चाहिये।

**पुनः षण्मासमात्रेण नित्यं संघर्षणात् मुने।**
**भ्रूमध्यावधि चाप्येति तिर्यक् कर्णबिलावधिः।।३३।।**

छह महीने तक प्रतिदिन जीभ को खींचने से जीभ उलट कर छोटी जीभ के पीछे जाकर भ्रूमध्य तक जाने लगती है। तिरछी जीभ दोनों कानों के छेद तक चली जाती है।

**अधश्च चुबुकं मूलं प्रयाति क्रमचारिता।**
**पुनः संवत्सराणां तु तृतीयादेव लीलया।।३४।।**

तीन वर्ष तक जीभ को खींचते रहने से जीभ ठोडी के नीचे तक पहुँचने लगती है।

**केशान्तमूर्ध्वं क्रमति तिर्यक्शाखाऽवधिर्मुने।**
**अधस्तात् कण्ठकूपान्तं पुनर्वर्षत्रयेण तु।।३५।।**

फिर तीन वर्ष तक जीभ खींचने का अभ्यास करते रहने से जीभ सिर की चोटी तक जाने लगती है और नीचे कण्ठकूप तक।

**ब्रह्मरन्ध्रं समावृत्य तिष्ठेदेवं न संशयः।**
**तिर्यक् चूलितलं याति अधः कण्ठबिलावधि।।३६।।**

अभ्यास करते-करते जीभ ब्रह्मरन्ध्र या कोमल तालु तक चली जाती है और वहीं लगी रहती है। तिरछी जीभ सिर के बालों की जड़ तक और नीचे गले के छेद तक चली जाती है।

**शनैः शनैर्मस्तकाच्च महावज्रकपाटभित्।**
**पूर्वं बीजयुता विद्या ह्याख्याता याति दुर्लभा।।३७।।**

जीभ लम्बी करने का अभ्यास करते रहने से जीभ ब्रह्मरन्ध्र का

द्वार खोल देती है। जब खेचरी विद्या बीजमन्त्र के साथ प्राप्त करने में कठिनाई हो।

**तस्याः षडङ्गं कुर्वीत तया षट्स्वरभिन्नया।**
**कुर्यादेवं करन्यासं सर्वसिद्ध्यादि हेतवे।।३८।।**

तब योगी को खेचरी विद्या के छह अंग वाली करन्यासविधि ह्रीं, भं, सं आदि के साथ करनी चाहिये जिससे उसे सभी सिद्धियाँ आदि प्राप्त हो सकें।

**शनैरेवं कर्तव्यमभ्यासं युगपन्न हि।**
**युगपत् वर्तते यस्य शरीरं विलयं व्रजेत्।।३९।।**

यह अभ्यास एक साथ न करके धीरे-धीरे क्रमश: करना चाहिये। जो योगी यह अभ्यास एक साथ शुरु कर देता है उसका देहान्त हो जाता है।

**तस्माच्छनैः शनैः कार्यमभ्यासं मुनिपुङ्गव।**
**यदा च बाह्यमार्गेण जिह्वा ब्रह्मबिलं व्रजेत्।।४०।।**

हे मुनिश्रेष्ठ! इसलिये खेचरी विद्या का अभ्यास धीरे-धीरे करना चाहिये। जब जीभ बाहर से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचने लगे, तब।

**तदा ब्रह्मार्गलं ब्रह्मन् दुर्भेद्यं त्रिदशैरपि।**
**अङ्गुल्यग्रेण संघृष्य जिह्वामात्रं निवेशयेत्।।४१।।**

अंगुली के अगले सिरे से कोमल तालु को दबाकर इसमें जीभ थोड़ी सी घुसा देनी चाहिये। यह ब्रह्मद्वार देवता भी नहीं तोड़ सकते।

**एवं वर्षत्रयं कृत्वा ब्रह्मद्वारं प्रविश्यति।**
**ब्रह्मद्वारे प्रविष्टे तु सम्यङ्मथनमाचरेत्।।४२।।**

तीन वर्ष तक यह अभ्यास करने पर जीभ ब्रह्मद्वार में प्रविष्ट हो जाती है। जीभ के ब्रह्मद्वार में प्रवेश करने पर मथन-क्रिया करनी चाहिये।

**मथनेन विना केचित् साधयन्ति विपश्चितः।**
**खेचरीमन्त्रसिद्धस्य सिध्यते मथनं विना।।४३।।**
**जपं च मथनं चैव कृत्वा शीघ्रं फलं लभेत्।**

मन्त्रजप और मथन करके योगी को जल्दी ही सफलता मिलती है। कुछ योगी मथन के बिना ही जीभ को ब्रह्मद्वार में प्रविष्ट करा सकते हैं। जो खेचरीमन्त्र को सिद्ध कर लेता है वह मथन के बिना ही जीभ को ब्रह्मद्वारा में प्रविष्ट करा सकता है।

**स्वर्णजां रौप्यजां वाऽपि लोहजां वा शलाकिकाम्।।४४।।**
**नियोज्य नासिकारन्ध्रं दुग्धसिक्तेन तन्तुना।**
**प्राणान्निरुध्य हृदये सुखमासनमात्मनः।।४५।।**

सोने की, चांदी की या लोहे की पतली डण्डी को नाक के छेद में डालकर या दूध में भीगी सूत्रनेति को नाक में डालकर नेति करनी चाहिये। नेति करके योगी कुम्भक प्राणायाम करे।

**शनैः सुमथनं कुर्याद् भ्रूमध्ये न्यस्तचक्षुषि।**
**षण्मासान्मथनावस्था भावेनैव प्रजायते।।४६।।**

आसन पर सुखपूर्वक बैठकर और मन; हृदय में तथा आँखें; भ्रूमध्य में लगाकर धीरे-धीरे मथन क्रिया करे। छह महीने तक यह अभ्यास करते रहने से भावना से ही मथनावस्था आ जाती है।

**यथा सुषुप्तिर्बालानां यथा भावस्तथा भवेत्।**
**न सदा मथनं शस्तं मासे मासे समाचरेत्।।४७।।**

जैसे बच्चों को स्वाभाविक रूप से ही गहरी नींद आ जाती है वैसे ही भावना करने से मथनावस्था आ जाती है। मथन का अभ्यास सदा नहीं करना चाहिये। एक महीने के बाद मथन का अभ्यास करना चाहिये।

**सदा रसनया योगी मार्गं न परिसंक्रमेत्।**
**एवं द्वादशवर्षान्ते संसिद्धिर्भवति ध्रुवा।।४८।।**

योगी को प्राणमार्ग या बाहर से ब्रह्मरन्ध्र में जीभ सदा प्रविष्ट नहीं करानी चाहिये। खेचरी विद्या का बारह वर्ष तक विधिपूर्वक अभ्यास करने से निश्चय ही सफलता मिलती है।

**शरीरे सकलं विश्वं पश्यत्यात्माविभेदतः।**
**ब्रह्माण्डोऽयं महामार्गो राजदन्तोर्ध्वकुण्डली।।४९।।**

योगी अपने शरीर में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दर्शन कर लेता है। यह दर्शन विराट्, सूत्र, बीज और तुरीयात्मभाव के रूप में क्रमशः होता है। सहस्रार में चढ़ती हुई कुण्डली और सहस्रार में लगी जीभ के महामार्ग से योगी ब्रह्माण्ड का दर्शन कर लेता है।

**।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।**

# तृतीय अध्याय

**मेलनमन्त्र अमावस्या आदि के भेद से दृष्टिभेद**

**मेलनमनुः। ह्रीं भं सं पं फं सं क्षम्।**

**पद्मज उवाच –**

**अमावस्या च प्रतिपत्पौर्णमासी च शंकर।**
**अस्याः का वर्ण्यते संज्ञा एतदाख्याहि तत्त्वतः।।१।।**

ब्रह्मा ने पूछा हे शंकर! अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा इन तीन लक्ष्यों का वास्तविक स्वरूप बताने की कृपा कीजिये।

बाह्य लक्ष्य, मध्य लक्ष्य और अन्तर्लक्ष्य पर मन और आँखों के साथ ध्यान लगाया जाता है। प्रतिपदा, अमावस्या और पूर्णिमा के भेद से ध्यान दृष्टि तीन प्रकार की होती है। इसकी व्याख्या इस प्रकार है:–

**प्रतिपद्दिनतोऽकाले अमावस्या तथैव च।**
**पौर्णमास्यां स्थिरीकुर्यात् स च पन्था हि नान्यथा।।२।।**

आँखें पूरी बन्द करके ध्यान लगाना अमादृष्टि से ध्यान लगाना कहलाता है। अधखुली आँखों से ध्यान लगाना प्रतिपदा दृष्टि कहलाता है और पूरी खुली आँखों से ध्यान लगाना पूर्णिमा दृष्टि कहलाता है। लक्ष्य पर पूर्णिमा दृष्टि से ध्यान लगाना अच्छा माना जाता है। ध्यान करते हुए जब खुली आँखें थक जायें तो अधखुली आँखों से या पूरी बन्द आँखों से ध्यान करते रहना चाहिये। आँखों की थकान दूर हो जाने पर फिर पूर्णिमा दृष्टि से ध्यान करना चाहिये। प्राणायाम के साथ ध्यान लगाने की अपेक्षा यही उपाय अच्छा है। शास्त्रों में भी कहा है–

**कदाचित् पूर्णिमादृष्ट्या कदाचित् प्रतिपद्दृशा।**
**अमादृष्ट्या कदाचिच्च निर्विघ्नेनावलोकयेत्।।**

कभी पूर्णिमा दृष्टि से, कभी प्रतिपदा दृष्टि से और कभी अमादृष्टि से निर्विघ्न मन से ध्यान लगाना चाहिये।

## पूर्णिमादृष्टि विधि

**कामेन विषयाकाङ्क्षी विषयात्काममोहितः।**
**द्वावेव संत्यजेन्नित्यं निरञ्जनमुपाश्रयेत्।।३।।**
**अपरं संत्यजेत्सर्वं यदीच्छेदात्मनो हितम्।**

काम या कामनाओं के वश में पड़कर मनुष्य विषय-भोगों की ओर दौड़ने लगता है। ऐश्वर्य-भोगों में पड़ने से वह कामवासना से पागल हो जाता है। इसलिये साधक को कामनाओं और विषय-भोगों इन दोनों को ही छोड़कर निर्गुण, शोक-मोहरहित चैतन्य तत्त्व में ही पूर्णिमादृष्टि से ध्यान लगाना चाहिये।

अपना कल्याण चाहने वाले साधक को सभी कुछ त्याग देना चाहिये।

**शक्तिमध्ये मनः कृत्वा मनः शक्तेश्च मध्यगम्।।४।।**
**मनसा मन आलोक्य तत्त्यजेत् परमं पदम्।**
**मन एव हि बिन्दुश्च उत्पत्ति स्थितिकारणम्।।५।।**

पूर्णमादृष्टि सहित मन को कुण्डलिनी शक्ति में लगाकर और मन को कुण्डलिनी शक्ति में लीन करके 'मैं ब्रह्म ही हूँ' मन की यह भावना बनाकर मन द्वारा देखने की वृत्ति को भी त्याग देना चाहिये। यह स्थिति ही परम पद की या कैवल्य प्राप्ति की अवस्था है। मन और बिन्दु अर्थात् ईश्वर; इस जगत् प्रपंच की उत्पत्ति और स्थिति के कारण हैं।

**मनसोत्पद्यते बिन्दुर्यथा क्षीरं घृतात्मकम्।**
**न च बन्धनमध्यस्थं तद्वै कारण मानसम्।।६।।**

मन से ही बिन्दु अर्थात् ईश्वर की कल्पना की जाती है जैसे दूध में घी रहता है वैसे ही मन में ईश्वर सदा विद्यमान है। मन अपने संकल्प-विकल्पों के कारण बन्धन में पड़ता है किन्तु ईश्वर मन के इन बन्धनों से अलग है। मन के नष्ट हो जाने पर ईश्वर निर्गुण ब्रह्ममात्र में ब[illegible] [illegible]ता है।

**चन्द्रार्कमध्यमा शक्तिर्यत्रस्था तत्र बन्धनम्।**
**ज्ञात्वा सुषुम्नां तद् भेदं कृत्वा वायुं च मध्यगम्।।७।।**

चन्द्र अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र और सूर्य अर्थात् मूलाधार के बीच में जहाँ कुण्डलिनी शक्ति रहती है वही बन्धन का स्थान है। सुषुम्ना को जानकर

और ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि को भेदकर प्राणवायु को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराना चाहिये।

**स्थित्वासौ बैन्दवस्थाने घ्राणरन्ध्रे निरोधयेत्।**
**वायुं बिन्दुं समाख्यातं सत्वं प्रकृतिमेव च।।८।।**
**षट्चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत् सुखमण्डलम्।**

बिन्दुस्थान अर्थात् भ्रूमध्य में मैं ईश्वर हूँ इस भावना से ध्यान करना चाहिये और ध्यान के समय नाक के छिद्रों को बन्द कर लेना चाहिये अर्थात् केवल कुम्भक प्राणायाम करना चाहिये। प्राणवायु और बिन्दु को बता दिया। सत्व और प्रकृति को तथा छह चक्रों को जानकर योगानन्द में मग्न रहे।

**मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरं तृतीयकम्।।९।।**
**अनाहतं विशुद्धं च आज्ञाचक्रं च षष्ठकम्।**

मूलाधार, स्वधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा ये छह चक्र शरीर में हैं।

**आधारं गुदमित्युक्तं स्वाधिष्ठानं तु लैङ्गिकम्।।१०।।**
**मणिपूरं नाभिदेशं हृदयस्थमनाहतम्।**
**विशुद्धिः कण्ठमूले च आज्ञाचक्रं च मस्तकम्।।११।।**
**षट्चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत् सुखमण्डले।**

मूलाधार चक्र गुदा के पास है। स्वाधिष्ठान चक्र लिंग या मूत्रेन्द्रिय के पास है। मणिपूर चक्र नाभि में है। अनाहत चक्र हृदय में है। कण्ठ में विशुद्धि चक्र है और भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र है।

शरीर के इन छह चक्रों को जानकर योगी आनन्द निमग्न रहता है।

**प्रविशेद् वायुमाकृष्य तथैवोर्ध्वं नियोजयेत्।।१२।।**
**एवं समभ्यसेद् वायुं स ब्रह्माण्डमयो भवेत्।**
**वायुं बिन्दुं तथा चक्रं चित्तं चैव समभ्यसेत्।।१३।।**

पूरक द्वारा प्राणवायु को फेफड़ों में भरकर प्राणवायु को कुम्भक प्राणायाम द्वारा रोककर मन को आज्ञाचक्र में लगाकर ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने से साधक ब्रह्माण्डमय अर्थात् विराट् रूप हो जाता है। चित्त और प्राणवायु को मिलाकर अर्थात् कुम्भक प्राणायाम

करके और मन एकाग्र करके बिन्दु अर्थात् ईश्वर का ध्यान करते हुए मन को शरीर के छह चक्रों पर केन्द्रित कर योगाभ्यास करना चाहिये।

**योगाभ्यास के बिना अपनी आत्मा का ज्ञान नहीं**

**समाधिमेकेन सममममृतं यान्ति योगिनः।**
**यथाऽग्निर्दारुमध्यस्थो नोत्तिष्ठेत् मथनं विना।।१४।।**

निर्विकल्प योग से प्राप्त अद्वैत भावना की वृत्ति वाली या सभी को समान समझने की भावना से युक्त समाधि के द्वारा योगी ब्रह्मामृत का पान करते हैं। जैसे लकड़ियों में छिपी हुई आग लकड़ियों को आपस में रगड़े बिना प्रकट नहीं होती है।

**विना चाम्यासयोगेन ज्ञानदीपस्तथा न हि।**
**घटमध्यगतो दीपो बाह्ये नैव प्रकाशते।।१५।।**
**भिन्ने तस्मिन् घटे चैव दीपज्वाला च भासते।**
**स्वकायं घटमित्युक्तं यथा दीपो हि तत्पदम्।।१६।।**

वैसे ही योगाभ्यास के बिना ज्ञान का दीप प्रकाशित नहीं होता। घड़े के अन्दर जलते हुए दीपक का प्रकाश बाहर नहीं दिखाई देता किन्तु घड़ा फूटने पर यह प्रकाश दिखने लगता है। हमारा शरीर ही घड़ा है और दीपक, ब्रह्मपद।

**गुरु वाक्यसमाभिन्ने ब्रह्मज्ञानं स्फुटी भवेत्।**
**कर्णधारं गुरुं प्राप्य कृत्वा सूक्ष्मं तरन्ति च।।१७।।**
**अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्।**

गुरु का उपदेश प्राप्त होते ही हमारे अज्ञान का परदा नष्ट हो जाता है और ब्रह्मज्ञान प्रकट हो जाता है। कर्णधार या मल्लाह के रूप में गुरु को प्राप्त कर योगी अपने कर्माशय को क्षीण करके योगाभ्यास और दृढ़निश्चय की शक्ति से भवसागर को पार कर लेते हैं।

**वाग्वृत्ति का अधिष्ठान ब्रह्म**

**परायामंकुरीभूय पश्यन्त्यांद्विदलीकृता।।१८।।**
**मध्यमायां मुकुलितायां वैखर्यां विकसीकृता।**

**पूर्वं यथोदिता या वाग्विलोमेनास्तगा भवेत्।।१९।।**
**तस्या वाचः परो देवः कूटस्थो वाक्प्रबोधकः।**
**सोऽहमस्मीति निश्चित्य यः सदा वर्तते पुमान्।।२०।।**
**शब्दैरुच्चावचैर्नीचैर्भाषितोऽपि न लिप्यते।**

शब्द या वाग्वृत्ति की सबसे पहिली अवस्था 'परा' कहलाती है। हठयोग के ग्रन्थों के अनुसार 'परा' वाणी मूलाधार में अंकुरित होती है। शब्द की यह वृत्ति या विचारधारा ऊपर उठती हुई अनाहत चक्र में आकर 'पश्यन्ती' का या दो पत्तों का रूप ले लेती है। अनाहत चक्र से ऊपर जाने पर कण्ठ के विशुद्धि चक्र में मुकुलित होकर 'मध्यमा' बन जाती और गले से मुख में या जीभ पर आने पर विकसित होकर 'वैखरी' या स्पष्ट शब्द का या वाणी का स्वरूप ले लेती है।

जब साधक मौन रहकर ध्यान में बैठता है तब शब्द वैखरी अवस्था से मध्यमा में, मध्यमा अवस्था से पश्यन्ती अवस्था में और पश्यन्ती से परा में अस्त हो जाता है। 'पश्यन्ती' अवस्था का शब्द स्वप्रकाशमान चिदानन्दमय है। वही आत्मज्ञान, इष्ट देवता के साक्षात्कार अथवा शब्द चैतन्य का सर्वोत्कृष्ट फल है। इसके बाद अव्यक्त भाव अपने आप उदित होता है। वही शब्द की तुरीय या चौथी अवस्था है। इसलिये जो साधक 'सोऽहम्' की भावना दृढ़ हो जाने पर लोक व्यवहार करता है तब उस पर मान, अपमान आदि बातों का कोई असर नहीं पड़ता और वह शान्त रहता है।

## मन्त्रयोग या जप योग

महामहोपाध्याय कविराज गोपीनाथ के अनुसार योगशास्त्र में 'मन्त्रयोग' यद्यपि विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, फिर भी यदि मन्त्रयोग का मुख्य अर्थ मन्त्र के आश्रय से जीवात्मा और परमात्मा का सम्मिलन मान लें, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। शब्दात्मक मन्त्र, चेतन होने पर उसी की सहायता से जीव क्रमशः ऊपर जाते-जाते शब्द से अतीत परमानन्द धाम तक पहुँच सकता है।

शब्द की वैखरी अवस्था से क्रमशः मध्यमा अवस्था को भेदकर पश्यन्ती में प्रवेश करना ही मन्त्रयोग का प्रधान उद्देश्य है। पश्यन्ती शब्द स्वप्रकाशमान चिदानन्दमय है अर्थात् चिदात्मक पुरुष की वही अक्षय और अमर षोडशी

कला है। वही आत्मज्ञान, इष्ट देवता के साक्षात्कार अथवा शब्द चैतन्य का प्रकृष्ट फल है। इस अवस्था में पहुँचने पर जीव कृतकृत्य हो सकता है। इसके बाद अव्यक्त भाव अपने आप उदित होता है। वही शब्द की तुरीय या चौथी अवस्था है।

**परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी वाणी**

शब्दोच्चारण की क्रिया सबसे पहिले मन में कोई वृत्ति या विचार उठने पर प्रारम्भ होती है। शब्द की इस अवस्था को 'परावाणी' कहते हैं। जब यह विचार सूक्ष्म बन जाता है तब नेत्र इसे देखने लगते हैं। विचार से उत्पन्न शब्द की यह अवस्था 'पश्यन्ती वाणी' कहलाती है। जब पश्यन्ती वाणी के सूक्ष्म शब्द कण्ठ में अर्धवाक् की स्थिति में आकर जिह्वा तक पहुँचते हैं तब वे 'मध्यमा वाणी' कहलाते हैं। जिह्वा से स्पष्ट शब्दोच्चारण को "वैखरीवाणी" कहा जाता है। वैखरी वाणी का मूल स्थान 'परावाणी' है। पहले मन में वृत्ति उठती है फिर इस वृत्ति के समान विचार उत्पन्न होता है। विचार प्रकट करने का मूल स्थान 'परावाणी' है।

"मन्त्रों का उच्चारण पहिले मध्यमा में करे और पीछे वैखरी से राम का नाम ले"। समर्थ स्वामी रामदास की उक्ति के अनुसार मध्यमा में अर्थात् कण्ठ में अस्पष्ट उच्चारण करे और फिर स्पष्ट शब्द बोले।

मस्तिष्क में स्थित सहस्रार के नीचे १६ पंखुड़ियों का 'सोमचक्र या चन्द्र चक्र' है। इसके नीचे १२ दलों का 'मनश्चक्र' है। इस स्थान से विचार उत्पन्न होते हैं। मनश्चक्र की मनोवहा या आज्ञावहा नलिका है। इसी प्रकार सुनने, देखने, बोलने, सूंघने तथा स्पर्श करने की नाड़ियाँ भी सहस्रार चक्र के पास मनोवहा नाड़ी के ऊपर हैं। हमारी ज्ञानेन्द्रियों के स्थान मस्तिष्क में स्थित सहस्रार चक्र में ही हैं। किसी भूली हुई बात को याद करने के लिये हम आँखें बन्द करके सिर पर हाथ रखकर सोचते हैं और भूली हुई बात याद आ जाती है। हमारी विचार तरंगें सहस्रार से ही निकलती हैं, इसलिये परा, पश्यन्ती वाणियों के स्थान मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र नहीं, अपितु सहस्रार के समीप हैं।

**ब्रह्माण्ड का अधिष्ठान ब्रह्म**

**विश्वश्च तैजसश्चैव प्राज्ञश्चेति च ते त्रयः।।२१।।**

**विराड्हिरण्यगर्भश्च ईश्वरश्चेति ते त्रयः।**
**ब्रह्माण्डं चैव पिण्डाण्डं लोका भूरादयः क्रमात्।।२२।।**
**स्वस्वोपाधिलयादेव लीयन्ते प्रत्यगात्मनि।**
**अण्डं ज्ञानिग्ना तप्तं लीयते कारणैः सह।।२३।।**
**परमात्मनि लीनं तत्परं ब्रह्मैव जायते।**

विश्व, तैजस, और प्राज्ञ ये तीन; विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीन; पिण्ड, ब्रह्माण्ड और पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्व:, मह:, जन, तप और सत्य ये सभी लोक तथा महाकाल, अम्बरीष, रौरव, महारौरव, कालसूत्र और अन्धतामिस्त्र ये नरक लोक; महातल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल और पाताल नाम के सात पाताल ये सब अपनी उपाधि या कारण के क्रमश: लय हो जाने पर प्रत्यक् चैतन्य या परमात्मा में लीन हो जाते हैं और ब्रह्म ही के अंश बन जाते हैं। यह सारा जगत् प्रपंच हमारी अज्ञान दृष्टि की कल्पना के कारण प्रतीत हो रहा है, वास्तविक नहीं है। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वास्तविक दृष्टि से ब्रह्म ही हो जाता है।

### निष्प्रतियोगिक ब्रह्म

**ततः स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम्।।२४।।**
**अनाख्यमनविभक्तं सत्किंचिदवशिष्यते।**

ज्ञान दृष्टि से जगत् प्रपंच के नष्ट हो जाने पर और यथार्थ या वास्तविक सत्ता का या ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर निर्गुण और निरवयव आकाश की भांति भूत, भौतिक, तेज और तमस् का आवरण न रहने के कारण तेज और तमस् से रहित प्रशान्त, गम्भीर, अवर्णनीय और रूप-रंग रहित सत् मात्र ही बच रहता है।

### ब्रह्मसिद्धि का उपाय ध्यान

**ध्यात्वा मध्यस्थमात्मानं कलशान्तरदीपवत्।।२५।।**
**अंगुष्ठमात्रमात्मानमधूम ज्योति रूपकम्।**
**प्रकाशयन्तमन्तस्थं ध्यायेत् कूटस्थमव्ययम्।।२६।।**

कलश के अन्दर प्रकाशमान दीपक के समान अपने शरीर में विराजमान धूम्ररहित ज्योति के समान अन्तःकरण में देदीप्यमान, अपरिवर्तनीय और शाश्वत अंगुष्ठमात्र परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

**विज्ञानात्मा तथा देहे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितः।**
**मायया मोहितः पश्चाद् बहुजन्मान्तरे पुनः।।२७।।**
**सत्कर्मपरिपाकात्तु स्वविकारं चिकीर्षति।**
**कोऽहं कथमयं दोषः संसाराख्य उपागतः।।२८।।**

विज्ञानरूप आत्मा; माया से मोहित होकर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति की अवस्थाओं में भटकता रहता है। अनेक जन्मों के बाद और अपने पुण्य कर्मों के परिणाम स्वरूप वह अपने वास्तविक स्वरूप को जानना चाहता है और सोचने लगता है कि मैं कौन हूँ और किस कारण इस जन्म-मरण वाले संसार दोष में फंस गया हूँ?

**जाग्रत्स्वप्ने व्यवहरन्त्सुषुप्तौ क्व गतिर्मम।**
**इति चिन्तापरो भूत्वा स्वभासा च विशेषतः।।२९।।**
**अज्ञानात्तु चिदाभासो बहिस्तापेन तापितः।**
**दग्धं भवत्येव तदा तूल पिण्डमिवाग्निना।।३०।।**

जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं में व्यवहार करते हुए सुषुप्ति अवस्था में मेरी क्या गति होगी? इस तरह की चिन्ताओं में फंसे हुए आत्मा का अपने तेज से और बाहर संसार में विद्यमान अज्ञान की अग्नि के ताप से अपने शरीर को चैतन्य समझने का भ्रम उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे अग्नि से रूई जलकर नष्ट हो जाती है।

**दहरस्थः प्रत्यगात्मा नष्टे ज्ञाने ततः परम्।**
**विततो व्याप्य विज्ञानं दहत्येव क्षणेन तु।।३१।।**

इसके बाद चिदाभास अर्थात् शरीर को चैतन्य समझ लेने का भ्रम नष्ट हो जाने पर हृदय में विराजमान परमात्मा सारे शरीर को प्रकशित कर विज्ञानमय कोष को जला डालता है।

**मनोमय ज्ञानमयान्त्सम्यग्दग्ध्वा क्रमेण तु।**
**घटस्थदीपवच्छश्वदन्तरेव प्रकाशते।।३२।।**
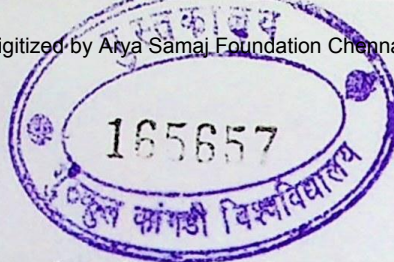
विज्ञानमय और मनोमय कोषों के क्रमश: भलीभांति नष्ट होने पर घड़े में रखे दीपक की तरह शश्वत ब्रह्म अन्त:करण में प्रकाशित होता है।

**जीवन्मुक्ति विदेहमुक्ति**

**ध्यायन्नास्ते मुनिश्चैवमासुप्तेरामृतेस्तु यः।**
**जीवन्मुक्तः स विज्ञेयः स धन्यः कृतकृत्यवान्।।३३।।**

जो मुनि सोने के समय से लेकर और मृत्यु के समय तक इसी प्रकार ध्यानमग्न रहता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है और उसका जीवन धन्य हो जाता है।

**जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते।**
**विशत्यदेहमुक्तित्वं पवनोऽस्पन्दतामिव।।३४।।**

अपने शरीर का देहभिमान नष्ट हो जाने पर योगी जीवन्मुक्त अवस्था को त्याग कर निश्चलवायु वाले आकाश की भांति विदेहमुक्त हो जाता है। जीवन्मुक्त अवस्था के बाद जब जाग्रत अवस्था; सुषुप्ति अवस्था के समान लगने लगती है तब योगी विदेहमुक्त हो जाता है। इस अवस्था में चित्त का स्वरूप नष्ट हो जाता है। जीवन्मुक्त योगी संसार में रहकर कार्य कर सकता है। वास्तव में जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त योगियों की आभ्यन्तर स्थिति में कोई भेद नहीं है।

**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।**
**अनाद्यमनन्तं महतः परं ध्रुवं तदेव शिष्यत्यमलं निरामयम्।।३५।।**

वह ब्रह्म; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से रहित है। नित्य और अविनाशी है। अनादि है, अनन्त है। प्रकृति से परे हैं। ध्रुव है। किसी भी प्रकार के दोष और रोग आदि से भी दूर है। योगी के अन्त:करण में ब्रह्म का यही स्वरूप शेष रह जाता है।

**इत्युपनिषत्। ओ३म् सहनाववत्विति शान्तिः।।**

**।।योगकुण्डल्युपनिषद्समाप्त।।**

में रखे

**जीवन्**

ध्यानम
जाता

तब
जाता
जीवन्मु

अविन
प्रकार
का य
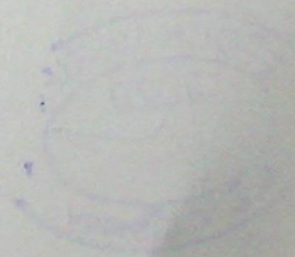
पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

## लेखक परिचय

गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के पूर्व कुलपति, विलक्षण प्रशासक, विधिवेत्ता **आचार्य सुभाष विद्यालंकार** सिद्धयोगियों के पथ प्रदर्शन में पिछले 50 वर्षों से योगाभ्यास कर रहे हैं।

अपने अनुभवों के आधार पर उन्होंने योग विद्या से सम्बन्धित 'गोरक्षपद्धति, घेरण्ड संहिता और हठयोग प्रदीपिका, योगशब्दकोश, योग उपनिषद: तथा योग एवं मानसिक स्वास्थ्य' सहित दशाधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

नब्बे वर्ष की आयु में भी आप निरन्तर अध्ययन, लेखन तथा योगाभ्यास करते हुये सक्रिय हैं।

ISBN : 978-81-7702-441-8

प्रतिभा प्रकाशन
(प्राच्यविद्या प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)

7259/23 अजेन्द्र मार्केट,
प्रेमनगर, शक्तिनगर, दिल्ली- 110007

E-mail : pratibhabooks@ymail.com
Visit us : www.pratibhabooks.com